कमीज १ टोक

चादर १

पायजामा २

१ नपाकिन ३

एक सूट कपड़ा

१ पेन्ट

१ waistKote

२ झाडन

१ तकिया [illegible] २थान

१ कोट काला

रघुवंश काव्य

कालिदास कृत।

जिसका

अनुवाद भाषा राजा लक्ष्मणसिंह साहब प्रथम समय के डिप्टीकलक्टर व मजिस्ट्रेट मुल्क मग़रबी व शिमाली ने विद्यार्थियों के उपकार के लिये हिंदी बोली में उलथा किया॥

यह पोथी पहलीबार छपीथी जिसको हाथोंहाथ विद्यार्थियों और दूसरे प्रेमीजनों ने मोल लेलिया और बराबर उसकी प्रत्येक ओरसे मांग हैं विद्यार्थियों को इस पुस्तक के पढ़ने से जो बोध बरसों में होता है वह महीनों में होजाता है इसकी उत्तमता यह है कि थोड़ीही गुरुकी कृपासे बहुत जल्द बोध होजाताहै॥

संसार के उपकार और संस्कृत विद्या सीखनेवालों की सहायता के लिये ग्रंथकर्ता की आज्ञानुसार

दूसरीबार ६००

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा अगस्त सन् १९०६ ई०॥



श्रीरघुवंशकाव्य

महाकविकालिदासकृत

राजालक्ष्मणसिंह सितारैहिन्द के भाषानुवाद सहित

ॐम्

श्रीरघुवंशः

कालिदासकृतः

नमोगणेशाय

प्रथमःसर्गः—दिलीपस्य सन्तानार्थं वशिष्ठाश्रमेगमनम्

१—वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतःपितरौ वन्दे पार्व्वतीपरमेश्वरौ ॥

२—क्व सूर्य्यप्रभवोवंशः क्वचाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

३—मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥

४—अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्व्वसूरिभिः ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥

ॐम्

श्रीरघुवंश

राजालक्ष्मणसिंहकृत

गणेशजीको नमस्कार

पहलासर्ग—सन्तानके निमित्त राजा दिलीपका वशिष्ठके आश्रमकोजाना

१—वाणी और अर्थ की सिद्धिके निमित्त मैं वन्दना करता हूं वाणी और अर्थ की नाईं मिले हुये जगत् के माता पिता शिव पार्वती को ॥

२—कहां वह वंश जिसका पिता सूर्य्य है और कहां थोड़े व्यवहारवाली (मेरी) बुद्धि, मैं अज्ञानता से कठिन समुद्र को फूस की नाव से उतरना चाहता हूं ॥

३—कवियों के यश का अभिलाषी मैं मन्दबुद्धि हँसी को-पहुंचूंगा, जैसे लम्बे मनुष्य के हाथ लगने योग्य फल की ओर लोभ से ऊंची बांह करनेवाला बौना ॥

४—अथवा अगले पण्डितों के वाग्द्वार कियेहुये इस वंश में मेरी गति ऐसीहै जैसी हीरेकी छेदी मणि में डोरेकी ॥

---

(४) ॥ वाग्द्वार वाणी का द्वार अर्थात् वर्णन ॥

५—सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्म्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥

६—यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्च्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ॥

७—त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥

८—शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥

९—रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैःकर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ॥

१०—तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नःसंलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिःश्यामिकापिवा ॥

११—वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ॥

१२—तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः ।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव ॥

५—सो मैं जन्मही से शुद्धों का, फल के उदयतक कर्म करनेवालों का, समुद्रतक पृथ्वी के स्वामियों का, स्वर्ग तक रथ मार्गवालों का,

६—विधिपूर्वक अग्नि में आहुति देनेवालों का, कामना-पूर्वकयाचक को सन्मान देनेवालों का, अपराध अनुसार दण्ड देनेवालों का, उचित समय पर जगनेवालों का,

७—दान निमित्त धन इकट्ठा करनेवालों का, सत्य निमित्त थोड़ा बोलनेवालों का, यशनिमित्त विजय चाहनेवालों का, सन्तान निमित्त गृहस्थ करनेवालों का,

८—बालपन में विद्या सीखनेवालों का, युवा अवस्था में भोग के अभिलाषियों का, बुढ़ापे में मुनिवृत्ति होनेवालों का, अन्त में योग करके तन त्यागनेवालों का,

९—[ऐसे] राघवों का वंश, वाणी का वैभव थोड़ा पाकरभी कान में आएहुए उनके गुणों का चपलता की ओर प्रेरा हुआ बखानता हूं ॥

१०—उसके सुनने को सत्य असत्य की विवेचना करनेवाले सन्तलोग योग्य हैं, सोने की शुद्धता और श्यामता अग्निही में देखी जाती है ॥

११—वैवस्वत नाम मनु पण्डितों का पूज्य राजाओं में प्रथम हुआ, जैसे छन्दों में ॐकार ॥

१२—तिसके शुद्ध वंश में दिलीप नाम अति शुद्धिमान् राजेन्द्र जन्मा, मानो दूध के समुद्र में चन्द्रमा ॥

---

(५) पांचवें से आठवें श्लोकतक रघुवंशियोंके गुणकहे हैं ॥

१३—व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः ।
आत्मकर्म्मक्षमं देहं क्षात्रोधर्म्मइवाश्रितः ॥

१४—सर्व्वातिरिक्तसारेण सर्व्वतेजोऽभिभाविना ।
स्थितःसर्व्वोन्नतेनोर्व्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना ॥

१५—आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः ।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः ॥

१६—भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम् ।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः ॥

१७—रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम् ।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः ॥

१८—प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥
१९—सेनापरिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम् ।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्व्वी धनुषि चातता ॥

---

(१४) सर्व्वातिरिक्तसारेण = सर्व्वेभ्यः भूतेभ्यः अधिकबलेन ॥ सर्व्वतेजोभिभावी = सर्व्वाणि भूतानि तेजसा अभिभवति इति ॥ आत्मना = देहेन ॥

(१६) यादस = जलजन्तु ॥

(१७) नियन्तुः = शिक्षकस्य सारथेश्च ॥

(१८) बलिम् = षष्ठांशरूपं करं ॥

१३—चौड़ी छातीवाला, बैल के से कन्धोंवाला, सालवृक्षसा लम्बा, बड़ी भुजाओंवाला, अपने काम के योग्य देह धारण कियेहुये, मानो क्षत्रियों का (मूर्त्तिमान) धर्म ॥

१४—सब से अधिक बलवान्, सब तेजों को तिरस्कार करने वाले, सब से ऊंचे शरीर से पृथ्वी को सुमेरु की नाईं दबा कर बैठा ॥

१५—आकारसदृश बुद्धिवाला, बुद्धिसदृश शास्त्र अभ्यास वाला, शास्त्रअभ्यास सदृश उद्योगवाला, उद्योगसदृश उदयवाला, ॥

१६—भयानक और मृदुल राजगुणों से वह आसरतुओं को दूर रखनेवाला और निकट बुलानेवाला भी था, जैसे जन्तुओं और रत्नों से समुद्र ॥

१७—रथके पहिये की भांति चलनेवाली उस शिक्षक (अथवा रथहांकनेवाले) की प्रजा मनुतक के खूँदेहुये मार्ग से लकीर भर भी बाहर न चली ॥

१८—प्रजाओं के भलेही के निमित्त उसने उन से कर लिया जैसे सहस्र गुना बरसानेही को सूर्य जल लेता है ॥

१९—उस सेना सामग्रीवाले के अर्थसाधन दोही थे, शास्त्र में पैनी बुद्धि और धनुष में चढ़ीहुई प्रत्यञ्चा ॥

---

(१३) तेरहवें से १५ वें श्लोक तक दिलीप के गुण कहे हैं ॥

(१६) जैसे मगर इत्यादि के डर से लोग समुद्रसे दूररहते हैं परन्तु रत्न मिलने के लालच से उसके पास भी जाते हैं ऐसेही दिलीप का स्वभाव कड़ा और कोमल था और यहीगुण राजाओं में चाहिये ॥

(१९) उसकी सेना केवल शोभाकी सामग्री थी काम तौ बुद्धि और धनुषही से सिद्ध होते थे ॥

२०—तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेंगितस्यच ।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तनाइव ॥

२१—जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्म्ममनातुरः ।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत् ॥

२२—ज्ञाने मौनं क्षमाशक्तौ त्यागेश्लाघाविपर्य्ययः ।
गुणागुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवाइव ॥

२३—अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः ।
तस्य धर्मरतेरासीत् वृद्धत्वं जरसा विना ॥

२४—प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥

२५—स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान् परिणेतुः प्रसूतये ।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म्मएव मनीषिणः ॥

२६—दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवम् ।
सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ॥

२०—उस भेद गुप्त रखनेवाले और बाहर भीतर के भावों के चिह्न (हर्ष शोकादि) छुपानेवाले के काम फलों से अनुमान होते थे, जैसे पूर्वले संस्कार ॥

२१—उसने विना डरे अपने शरीर की रक्षा की, विना रोगी हुए धर्म को भजा, विना लोभी हुए धन को लिया, विना आसक्त हुए सुख को भोगा ॥

२२—ज्ञान में मौन, सामर्थ में क्षमा, दान में बड़ाई की अनपेक्षा; ये गुण उसके सम्बन्ध से सहोदर से थे ॥

२३—उस विषयों के न खैंचे हुए को, विद्याओं के पार देखनेवाले को, धर्म में रुचि रखनेवाले को, बुढ़ापा विना बुढ़ापे के था ॥

२४—नीति सिखाने से, रक्षा करने से, और पालने से भी, वह प्रजाओं का पिता था, उनके मा बाप केवल जन्म का हेतु हुए ॥

२५—उस अपराधियों को मर्यादा निमित्त दण्ड देनेवाले के सन्तान निमित्त व्याह करनेवाले बुद्धिवान् के, अर्थ और काम भी धर्म्मही थे ॥

२६—उस ने यज्ञ निमित्त पृथ्वी को दुहा, इन्द्र ने धान्य निमित्त आकाशको, भलाई की उल्टापल्टी करके दोनों ने दोनों लोकों को पाला ॥

---

२० तात्पर्य यह कि मते की बातों को गुप्त रखता था ॥

२२ परस्पर विरुद्ध ज्ञान मौनादि गुण उस में मिले थे ॥

२६ यज्ञों से वर्षा होती है और वर्षा से अन्न होता है फिर अन्न से यज्ञ किया जाता है यही उल्टा पल्टी है ॥

२७—न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः ।
व्यावृत्ता यत् परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता ॥

२८—द्वेष्योऽपि सम्मतः शिष्टस्तस्यार्त्तस्य यथौषधम् ।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासीदंगुलीवोरगक्षता ॥

२९—तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना ।
तथाहि सर्व्वे तस्यासन् परार्थैकफला गुणाः ॥

३०—स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम् ।
अनन्यशासनामुर्व्वीं शशासैकपुरीमिव ॥

३१—तस्य दाक्षिण्यरूढ़ेन नाम्ना मगधवंशजा ।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा ॥

३२—कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि ।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः ॥

३३—तस्यामात्मानुरूपायाम् आत्मजन्मसमुत्सुकः ।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः ॥

३४—सन्तानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ।
तेन धूर्जगतो गुर्व्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥

---

२७ श्रुतौ=वाचकशब्दे अथवा करणे ॥

३३ आत्मजन्मा=पुत्रः ॥

२७—कहते हैं कि उस रक्षक के यश को और राजा लोग न पहुँचे क्योंकि चोरी पराये धन से निकल कर नाम में (अथवा) कान में रह गई थी ॥

२८—सज्जन वैरी भी उसको प्यारा था, जैसे रोगी को औषधि, और दुष्ट प्यारा भी त्याज्य था, जैसे सांप की काटी हुई अंगुली ॥

२९—उसको विधाता ने निश्चय महाभूतों (पंचतत्त्व के मूलों) की समाधि से बनाया था इसी से उस के सब गुण केवल पराये अर्थरूपी फल देनेवाले हुए ॥

३०—उसने समुद्र तट के परकोटेवाली, सागरों की खाईं वाली, विना दूसरे के राज्यवाली, पृथ्वी को मर्यादा में रक्खा, मानो एक नगरी को ॥

३१—चतुराई की प्रसिद्धता से सुदक्षिणा नाम करके मगधवंश की बेटी उसकी पत्नी थी, जैसे यज्ञ की (पत्नी) दक्षिणा ॥

३२—उस पृथ्वीपति ने बड़े रनवास में भी अपने को उसी मनस्विनी से और लक्ष्मी से स्त्रीवन्त माना ॥

३३—अपनी उस मनभावती में पुत्रजन्म के अभिलाषी ने विलम्बित फलोंवाले मनोरथोंसहितकुछकाल बिताया ॥

३४—सन्तान की विधि के निमित्त उसने अपनी भुजा से उतारा हुआ पृथ्वी का भारी बोझ मन्त्रियोंपर डाला ॥

---

२८ त्याज्य = छोड़ने योग्य ॥

३३ विलम्बितफल—जिन फलों के आने में देर लगी ॥

३४ सन्तान की विधिसे तात्पर्य सन्तान प्राप्त होने के उपाय से है ॥

३५—अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया ।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् ॥
३६—स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव ॥
३७—माभूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ ।
अनुभावविशेषात् तु सेनापरिवृताविव ॥
३८—सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्य्यासगन्धिभिः ।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः ॥

३९—मनोऽभिरामाःशृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः ।
षड्जसंवादिनीः केकाद्विधाभिन्नाः शिखण्डिभिः ॥
४०—परस्पराक्षिसादृश्यम् अदूरोज्झितवर्त्मसु ।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु ॥

४१—श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिः अस्तम्भां तोरणस्रजम् ।
सारसैःकलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ ॥

---

३६ ऐरावतः——अभ्रमातंगः ॥
३९ केका——मयूरवाणी ॥
४१ वितन्वद्भिः——कुर्वद्भिः ॥

३५–फिर विधाता को पूजकर वे दोनों पवित्र स्त्री पुरुष पुत्र की कामनासहित गुरु वसिष्ठ के आश्रम को चले॥

३६–अच्छे गम्भीर शब्दवाले एकही रथ पर बैठे हुऐ, जैसे वर्षा के बादल पर बिजली और ऐरावत॥

३७–"आश्रम को पीड़ा नहो" इसलिये थोड़े सेवकों वाले परन्तु प्रताप की विशेषता से मानो सेना से घिरेहुए॥

३८–स्पर्श से सुख देनेवाली, शाल के गोंद की सुगंधिवाली, फूलों का पराग उड़ानेवाली, वनके वृक्षों की पंक्तियों को थोड़ा थोड़ा हिलानेवाली,पवनों से सेवा होते हुए॥

३९–रथ के पहिये की ध्वनि से मुख उठाए हुए मोरोंसे दो प्रकार के मनोहर षड्ज शब्द सुनते हुए॥

४०–समीप (पहुंचने पर) मार्ग छोड़नेवाले,रथ में दृष्टि बांधनेवाले मृगों के जोड़ों में एक दूसरे की आंख की सादृश्यता देखते हुए॥

४१–पंक्ति बांधकर चलने से विना खम्भ के बन्धनवारों की माला बने हुए, अच्छा शब्द करनेवाले सारसों करके कभी कभी मुख उठाये हुए,॥

---

३६ ऐरावत उस बादल को कहते हैं जो दूसरे बादल के ऊपर हो और उसकी स्त्री बिजली कहलाती है॥ ३६ से ४६ तक श्लोकों में राजा रानी की शोभा कही है॥

३९ नाक कंठ हृदय तालु जीभ दांत इन से निकलने वाले शब्द षड्ज कहलाते हैं॥

४१ सारस पंक्ति बांधकर उड़ते हैं इससे विना खम्भ के बन्धनवार से दीखते हैं॥

४२—पवनस्यानुकूलत्वात् प्रार्थनासिद्धिशंसिनः।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैः अस्पृष्टालकवेष्टनौ॥
४३—सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम्।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम्॥
४४—ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम्।
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तौ अर्घ्यानुपदमाशिषः॥
४५—हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्।
नामधेयानिपृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्॥
४६—काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोःशुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव॥

४७—तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन् प्रियदर्शनः।
अपिलङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः॥
४८—स दुष्प्रापयशाः प्रापत् आश्रमं श्रान्तवाहनः।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः॥
४९—वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
पूर्य्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः॥

---

४५ हैयङ्गवीनम् = सद्योघृतम्॥
४९ अदृश्याग्निः = दर्शनायोग्याग्निः॥

४२—मनोरथ की सफलता जतानेवाली पवन की अनुकूलता से घोड़ोंकी उठाई धूलसे पगड़ी और केश न छुए हुए,

४३—सरोवरोंमें लहरके झकोरोंसे शीतल कमलों की सुगंधि को अपनी श्वासकी, होड करनेवाली को, सूंघते हुए; ॥

४४—यज्ञ खम्भ के चिह्नोंवाले अपने दिए हुए गांवों में ब्राह्मणों के सफल आशीर्वाद अर्घ से पीछे लेते हुए ॥

४५—गाय का सद मक्खन लेकर सामने आए हुए बूढ़े घोसों से मार्ग के वनवृक्षों के नाम पूछते हुए, ॥

४६—क्या शोभा उन दोनों सुघड़ भेष चलते हुओं की थी मानो योग पाकर शीत से छूटे हुए चित्रा और चन्द्रमा की ॥

४७—रानी को वह वह (वस्तु) दिखाते हुए बुध की उपमा वाले सुघड़ राजा ने गए मार्ग को भी न जाना ॥

४८—उसदुर्लभ यशवालेने, थके वाहनोंवाले ने, रानीके साथी ने, सांझ समय उस संयमी महर्षी का आश्रम पाया ॥

४९—(कैसा वह आश्रम था कि) वनों से लौटते हुए, समिध और कुश और फल लाते हुए, अदृश्य अग्नि के आदर किए हुए, तपस्वियों से भरा हुआ ॥

---

४६ हिमऋतु बीतने पर चैतके महीने में जब चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में आता है चांदनी बहुत निर्मल होती है ॥

४९ अग्निहोत्र की अग्नि छुपा कर रक्खी जाती है इसीसे अदृश्य कहलाती है ॥ दूसरा अर्थ यह है कि वनसे लौटते हुए तपस्वियों को आदर के लिये पूजाकी अग्नि अदृश्य रूप से लेने जाती है ॥ ४९ से ५३ श्लोक तक आश्रम की शोभा वर्णन कीहै ॥

५०—आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः ।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः ॥

५१—सेकान्ते मुनिकन्याभिः तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् ।
विश्वासाय विहङ्गानाम् आलवालाम्बुपायिनाम् ॥
५२—आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासुनिषादिभिः ।
मृगैर्वर्त्तितरोमन्थमुटजाङ्गणभूमिषु ॥

५३—अभ्युत्थिताग्निपिशुनैः अतिथीनाश्रमोन्मुखान् ।
पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः ॥

५४—अथ यन्तारमादिश्य धुर्य्यान् विश्रामयेति सः ।
तामवारोहयत् पत्नीं रथादवततार च ॥
५५—तस्मै सभ्याः सभार्य्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः ।
अर्हणामर्हते चक्रुः मुनयो नयचक्षुषे ॥

५६—विधेःसायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ॥
५७—तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी ।
तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः ॥

५८—तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ॥

५०—पत्तों की कुटी का द्वार रोकनेवाले, ऋषिपत्नियों की सन्तान की भांति धान्य में भाग पानेवाले, मृगों से पूरा हुआ, ॥

५१—थांवलों का जल पीनेवाले पक्षियों के विश्वास निमित्त उसी क्षण मुनिकन्याओंकेसींचकरछोड़हुए पौधोंवाला, ॥

५२—पत्र कुटियों के आंगन की भूमियों में, घाम मिटने के दिनों न्यारे रक्खी हुइयों में, बैठने वाले हरिणों के डाले हुए जुगालोंवाला, ॥

५३—प्रज्वलित अग्नि के बतानेवाले, पवन के उठाए हुए, आहुति की गंधि मिले हुए धुओंसे आश्रम की ओर आते हुए अतिथों को पवित्र करनेवाला ॥

५४—तब "घोड़ोंको विश्राम दो" यह आज्ञा सारथी को देकर उसने रथ से उस रानी को उतारा और आप उतरा ॥

५५—उस नीति की आंखोंवाले को, स्त्रीसहित को, पूज्यमान रक्षक को, सभा में बैठनेवाले जितेन्द्रिय मुनियों ने सत्कार किया ॥

५६—सन्ध्याविधि के अन्त में उसने तप का धनी पीछे बैठी हुई अरुन्धतीसहित देखा, मानो स्वाहासहित अग्नि ॥

५७—उन दोनों के चरण राजा ने और मगध देशवाली रानी ने छुए और गुरू और गुरानी ने उनको प्रसन्नता से आशीर्वाद दिया ॥

५८—उस राज्य आश्रम के मुनी से, अतिथि सत्कार द्वारा रथ के झोकों की थकावट मिटे हुए से, मुनिने राज्य में कुशल पूछी ॥

५९—अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः।
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचम् आददे वदतांवरः॥

६०—उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वंगेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणाञ्च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्॥

६१—तव मन्त्रकृतो मन्त्रैः दूरात् प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः॥
६२—हविरावर्ज्जितं होतः! त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवति शस्यानाम् अवग्रहविशोषिणाम्॥
६३—पुरुषायुषजीविन्यः निरातंका निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम्॥
६४—त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना।
सानुबन्धाः कथं न स्युः सम्पदो मे निरापदः॥

६५—किन्तु वध्वां तवैतस्याम् अदृष्टसदृशप्रजम्।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी॥

---

६० सप्तांगानि=स्वाम्यमात्यपुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ तथा सुहृत्॥
६३ ईतयः=अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषिकाः शलभाः शुकाः। अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥

५६—तब उस अथर्व (वेद) के निधि के सामने वह बोलने वालों में श्रेष्ठ, वैरियों के पुर जीतनेवाला राजा, प्रयोजन की बात कहने लगा ॥

६०—"मेरे राज्य के सातों अंगों में कुशल क्यों न हो जिसकी दैवी और मानुषी आपदाओं के तुम हरने वाले हो" ॥

६१—"तुम मंत्रकार के मंत्रों से, वैरी को दूर पर मारनेवालों से, दीखते हुए बेझे के छेदनेवाले मेरे बाण व्यर्थ से हैं" ॥

६२—"हे यज्ञ करनेवाले तुम्हारी विधिपूर्वक अग्निमें दी हुई आहुति अकाल में सूखतेहुए धानों की वर्षा होतीहै" ॥

६३—"पुरुष की आयु तक जीनेवाली, निर्भय, ईतियों से बची हुई, जो मेरी प्रजा है सो इसका हेतु तुम्हारा ब्रह्मतेज है" ॥

६४—"तुम ब्रह्मपुत्र गुरु के इस प्रकार सुध लिए हुए मुझ निरापदा की सम्पदा सदा एकसी (अर्थात् अटूट) क्यों न होगी" ॥

६५—"परन्तु तुम्हारी इस वधू में अपनी अनुहार की सन्तान न देखे हुए मुझको रत्न उपजानेवाली पृथ्वी द्वीपों समेत भी नहीं भाती है" ॥

---

६० राज्य के सात अंग ये गिने जाते हैं राजा मन्त्री शुभचिंतक भंडार गढ़ देश सेना ॥

६१ तात्पर्य यह है कि मेरे बाण तो दीखते बैझेही को मारते हैं तुम्हारे मन्त्र विना दीखते को भी मार सके हैं इसलिये मेरे बाण व्यर्थ से हैं ॥

६३ छः प्रकार की आपत्ति ईति कहलाती हैं अर्थात् अति वर्षा सूखा चूहा टीड़ी तोता वैरी की चढ़ाई ॥

६६—नूनं मत्तःपरंवंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः॥

६७—मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्ज्जितं मया।
पयः पूर्व्वैः स्वनिःश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते॥

६८—सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः॥

६९—लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्।
सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्म्मणे॥

७०—तया हीनं विधातर्मां कथं पश्यन्न दूयसे।
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद् बन्ध्यमाश्रमवृक्षकम्॥

७१—असह्यपीडं भगवन्! ऋणमन्त्यमवेहि मे।
अरुन्तुदमिवालानम् अनिर्वाणस्य दन्तिनः॥

---

७१ अरुन्तुद=मर्म्मस्पृक्॥

६६—"निश्चय है कि मेरे पीछे पिंड का लोप देखनेवाले मेरे पुरखे, स्वधा इकट्ठी करने में लगेहुए, श्राद्ध में इच्छा-पूर्वक भोजन नहीं करते हैं" ॥

६७—"निश्चय है कि मेरे पीछे जल मिलना दुर्लभ मान कर मेरे पुरखे मेरे दिए हुए (जल) को अपनीही श्वासों से कुछ तत्ता पीते हैं" ॥

६८—"मैं यज्ञ करके शुद्ध अन्तःकरण, सन्तान न होने से अन्धा, प्रकाशवान् और अप्रकाशवान् हूं जैसे लोका-लोक पर्वत" ॥

६९—"तप और दान का पुण्य परलोक में सुखकारी होता है, शुद्ध वंश की सन्तानही इस लोक और परलोक में कल्याण देती है" ॥

७०—"तिससे (अर्थात् सन्तान से) मुझ हीन को देखकर हे विधाता क्यों तुम दुःखी न होगे, जैसे प्यार से अपने सींचे हुए आश्रम के पौधे को निष्फल देख कर" ॥

७१—"हे भगवन्! मेरी पितृऋण पीड़ा को असह्य जानो, जैसे बँधे हुए हाथी को मर्म छेदनेवाला खम्भ" ॥

---

६६ जैसे अकाल के लक्षण देखकर मनुष्य आगे के लिये खाने पीने की वस्तु इकट्ठी करता है ॥

६७ शोच के मारे बड़ी श्वास लेनेसे मुंहके सामने जल कुछ तत्ता होजाता है ॥

६८ लोकालोक पर्वत के भीतर चन्द्र सूर्य इत्यादि सब ग्रह चलते रहते हैं इससे प्रकाश रहता है और बाहर निरा अँधेरा है ॥

७१ असह्य=जो सहा न जाय ॥

७२—तस्मान्मुच्ये यथा तात! संविधातुं तथार्हसि।
इक्ष्वाकूणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः॥

७३—इति विज्ञापितो राज्ञा ध्यानस्तिमितलोचनः।
क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः॥

७४—सोऽपश्यत् प्रणिधानेन सन्ततेः स्तम्भकारणम्।
भावितात्मा भुवो भर्त्तुः अथैनं प्रत्यबोधयत्॥

७५—पुरा शक्रमुपस्थाय तवोर्वींप्रति यास्यतः।
आसीत् कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि॥

७६—धर्म्मलोपभयाद्राज्ञीम् ऋतुस्नातामिमां स्मरन्।
प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधुनाचरः॥

७७—अवजानासि मां यस्मात् अतस्ते न भविष्यति।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा॥

७८—स शापो न त्वया राजन्! न च सारथिना श्रुतः।
नदत्याकाशगंगायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे॥

७९—ईप्सितं तदवज्ञानाद् विद्धि सार्गलमात्मनः।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः॥

७२–"उस से जिस भांति मैं छूटूं सो हे तात! तुम करने को योग्य हो॥ कठिन बातों में इक्ष्वाकुवंशियों की सिद्धि तुम्हारेही आधीन है"॥

७३–इस प्रकार राजा का निवेदन किया हुआ ध्यान में आंख मूंदा हुआ ऋषि क्षणमात्र चुपचाप रहा, मानो सोई हुई मछलियोंवाला ताल॥

७४–उस शुद्धात्मा ने पृथ्वीपति की सन्तान रुकने का कारण ध्यान करके देखा फिर उसको जताने लगा॥

७५–"आगे इन्द्रकी सेवा करके पृथ्वी की ओर लौटतेहुये तेरे मार्ग में सुरभी कल्पवृक्षकी छाया में बैठी थी"॥

७६–"धर्म लोप के डर से ऋतुस्नान की हुई इस रानी को सुध करते हुये तैंने उस प्रदक्षिणा योग्य को सन्मान न किया"॥

७७–"मुझ को तू अवज्ञा करता है इसलिये मेरी सन्तान को आराधन किये विना तेरी सन्तति न होगी, इस प्रकार उसने तुझे शाप दिया"॥

७८–"हे राजा उस शाप को आकाशगंगा के प्रवाह में खुले दिग्गजों का शब्द होते हुये न तैंने सुना और न सारथी ने"॥

७९–"अपने मनोरथ को तू उसकी अवज्ञा से रुका हुआ जान॥ पूज्य की पूजा का उल्लंघन कल्याणों को रोकताही है"॥

८०—हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः।
भुजङ्गपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति॥
८१—सुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः।
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा॥

८२—इति वादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम्।
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात्॥

८३—ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं सन्ध्येव शशिनं नवम्॥

८४—भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी मेध्येनावभृथादपि।
प्रस्रवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्त्तिना॥

८५—रजःकणैःखुरोद्धूतैःस्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात्।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिम् आदधाना महीक्षितः॥
८६—तां पुण्यदर्शनां दृष्ट्वा निमित्तज्ञस्तपोनिधिः।
याज्यमाशंसितावन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत्॥

८७—अदूरवर्त्तिनीं सिद्धिं राजन्! विगणयात्मनः।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्त्तित एव यत्॥

---

८३ आभुग्नं--ईषद्वक्रं॥

८०—"सो(सुरभी)तौ बड़े यज्ञवाले वरुणको हविषदेने के निमित्त इनदिनों सांपों से रुकेहुएद्वारवाले पाताल में है" ॥

८१—"उस गऊ की बेटी को उसी की ठौर मानकर तुम शुद्ध मन से रानी समेत आराधन करो, प्रसन्न होने पर वह निश्चय कामना सिद्ध करनेवाली है" ॥

८२—"उस होता के इतने कहतेही उसकी आहुति साधने वाली नन्दिनी नाम अनिन्दित गऊ बन से लौट कर आई, ॥

८३—"कोंपल समान कोमल और लाल रंगवाली, माथे पर स्वेत बालों का कुछ बांका टीका धारणकिए हुए, जैसे नए चन्द्रमा को सन्ध्या, ॥

८४—"कुंड समानऐन वाली, यज्ञ के जलसे भी पवित्र दूध से, बछड़े के देखने पर उतरे हुए से, कुछ एक तत्ते से, धरती को छिड़कती हुई, ॥

८५—"खुरों से उठेहुए समीपता के कारण शरीर को छूतेहुए रज के कणों से राजा को तीर्थस्नानकी शुद्धि देतीहुई ॥

८६—"उस पवित्र दर्शनी को देखकर शकुन जाननेवाला, तप का धनी, सफल मनोरथ के प्रार्थी यजमान से फिर बोला ॥

८७—"हे राजा अपनी सिद्धि निकट आई हुई गिनों क्योंकि नाम लेतेही यह कल्यानी सामने आई है" ॥

---

८० घी दूध दही इत्यादि यज्ञ की सामग्री को हविष कहते हैं ॥

८२ होता—यज्ञ करनेवाला ॥

८३ से ८५ श्लोक तक गऊ की शोभा कहिये ॥

८८—वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि ॥

८९—प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः ॥
९०—वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामातपोवनात्।
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि ॥

९१—इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्य्यापरोभव।
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम् ॥

९२—तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान् सपरिग्रहः।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः ॥

९३—अथ प्रदोषे दोषज्ञः संवेशाय विशाम्पतिम्।
सूनुः सूनृतवाक् स्रष्टुः विससर्जोदितश्रियम् ॥
९४—सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः।
कल्पवित् कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम् ॥

९३—दोषज्ञः = विद्वान् ॥
सूनृतवाक् = सत्यप्रियवाक् ॥

८८—"तुम बन के कन्दमूलादि खाते हुए इस गाय को निरन्तर इस के पीछेचलनेवाले बनकर प्रसन्न करने को योग्य हो, जैसे अभ्यास से विद्या को" ॥

८९—इसके चलने पर तुम चलो ठैरने पर ठैरो बैठने पर बैठो पानी पीने पर पानी पियो" ॥

९०—"और भक्तिमती बधूभी शुद्ध मन होकर इस पूजीहुई के पीछे तपोबन के अन्त तक प्रातःकाल जाय और सांझ को सन्मुख मिले" ॥

९१—इस प्रकार इसकी प्रसन्नता तक तुम शुश्रूषा करते रहो, तुम्हारा कल्याणहो, पिता समान पुत्रवालों में तुम मुख्य ठैरो" ॥

९२—"ऐसाही हो"(यह कह कर) उस प्रीतिमान सपत्नीक सुशील देश काल जाननेवाले शिष्य ने गुरू की आज्ञा ग्रहण की ॥

९३—फिर रात में ब्रह्मा के उस सत्य और मीठा बोलनेवाले विद्वान् बेटेने श्रीमानपृथ्वीपतिको सोनेकी आज्ञा दी ॥

९४—नियमके कारण व्रतव्यवहारजाननेवाले मुनि ने तप की सिद्धिमें भी उसकोवनवासहीकी सामग्री बतलाई॥

---

९१ जिन के बेटे बाप सरीखे हैं उन में तुम मुख्य हो ॥

९४ मुनी को अपने तपकी शक्ति से सामर्थ थी कि राजा के ठैरने को राजाओं का सा स्थान देता परन्तु तपस्या के नियमों को बिचार कर उसने पत्तों की झोपड़ी में राजा को ठैराया ॥

९५—निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालाम्।
अध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां।
संविष्टः कुशशयने निशां निनाय॥

इति प्रथमः सर्गः॥

६५—कुलपति की दिखलाई हुई पत्रकुटी में जाकर उस पतिव्रता के साथी ने, कुशासन पर सोते हुए ने उसके चेलों के पढ़ने से जाने हुए प्रभातवाली रात्री बिताई॥

प्रथम सर्ग समाप्त हुआ॥

---

६५ वेद का पढ़ना पिछली रात कहा है॥ कुलपति=मुनियों के कुल का नायक जिसने ग्यारह सहस्र विद्यार्थियों को भोजन देकर वेद पढ़ाया हो॥

Debi Datt

द्वितीयः सर्गः

नन्दिन्या दिलीपाय वरदानम्

१—अथ प्रजानामधिपः प्रभाते ।
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां ।
यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥

२—तस्याः खुरन्यासपवित्रपांशुं ।
अपांशुलानांधुरिकीर्त्तनीया ।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी ।
श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥

३—निवर्त्य राजा दयितां दयालुः ।
तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां ।
जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥

४—व्रताय तेनानुचरेण धेनोः ।
न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः ।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा ।
स्ववीर्य्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ॥

५—आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां ।
कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैःस्वैरगतैःसतस्याः ।
सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥

दूसरा सर्ग

नन्दिनी का दिलीप को वरदान देना

१—प्रजाओं के स्वामी यश के धनीने प्रातःकाल रानी की दी हुई गंध और माला धारन करती हुई, दूध पीकर बंधे हुए बछड़ेवाली, मुनि की गाय बन को खोली ॥

२—राजा की धर्मपत्नी, पतिव्रताओं के आगे कीर्तन योग्य, उसके खुर पड़ने से पवित्र धूलवाले मार्ग में पीछे पीछे चली, जैसे श्रुति के अर्थ के (पीछे) स्मृति ॥

३—रानी को लौटाकर दयावान् राजाने, यशों से सुशोभित ने, उस चार समुद्ररूपी थनोंवाली सुरभी की बेटी को रक्षा किया, मानो गऊ रूप में पृथ्वी को ॥

४—उस व्रतनिमित्त गऊ के पीछे चलनेवाले ने सेवकों की रही सही भीड़ भी छोड़ी॥ उसके शरीर की रखवाली और किसी से नथी, मनुकी सन्तान अपनेही पराक्रम से रक्षित है ॥

५—घास के स्वादीले ग्रासों से खुजलाने से मक्खी मच्छड़ हांकने से बिना रोकटोक मन मानी फिरने देने से, वह राजराजेश्वर उसकी सेवा में तत्पर हुआ ॥

६—स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां।
निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां।
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥
७—स न्यस्तचिह्नामपि राज्यलक्ष्मीं।
तेजोविशेषानुमितां दधानः।
आसीदनाविष्कृतदानराजिः।
अन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः ॥
८—लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैः।
अधिज्यधन्वा विचचार दावम्।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोः।
वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् ॥
९—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य।
पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य।
उदीरयामासुरिवोन्मदानाम्।
आलोकशब्दं वयसां विरावैः ॥

---

७ दानराजी = मदरेखा ॥
८ विनेष्यन् = शिक्षयन् ॥

६ — ठैरी को ठैरे हुए ने चलती को चलते हुए ने बैठी को आसन बांधे हुए धीरने पानी पीती को पानी पीते हुए ने, राजा ने उसको सेवन किया, मानो परछांई ने ॥

७ — वह (चमर छत्रादि) चिह्न भी छोड़ी हुई, तेज की विशेषता से अनुमान होनेवाली राजलक्ष्मी को धारण किए था, जैसे अप्रगट मदरेखा को अन्तरमद हाथी ॥

८ — लताबेलों से गुंथे हुए केशों सहित वह चढ़े हुए धनुष वाला बन में बिचरा, मानो मुनि की यज्ञधेनु की रखवाली के मिस से बन के दुष्टजीवों को शिक्षा देता हुआ ॥

९ — उस सेवकों के छोड़े हुए का, वरुण की उपमावाले का जयकारा दोनों ओर के वृक्षों ने उन्मत्त पक्षियों के चुहचाहट से कराया ॥

---

७ अभिप्राय यह है कि यद्यपि दिलीप के पास उस समय राजलक्ष्मी के चिह्न चमर छत्र न थे तौ भी उसके प्रतापही से राजलक्ष्मी जानी जाती थी जैसे किसी हाथी के शिर से मद का चूना प्रगट भी न हुआहो तौ भी उसके भीतर मद होना जाना जाता है ॥

१०—मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं।
तमर्च्यमारादभिवर्त्तमानम्॥
अवाकिरन् बाललताःप्रसूनैः।
आचारलाजैरिव पौरकन्याः॥
११—धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावम्।
आख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः॥
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां।
प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः॥
१२—स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः।
कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्॥
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैः।
उद्गीयमानं वनदेवताभिः॥
१३—पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणाम्।
अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी॥
तमातपक्लान्तमनातपत्रम्।
आचारपूतं पवनः सिषेवे॥

---

१० मरुत्सखाभं=मरुत्सखा अग्निः तस्य आभा इव आभा यस्य॥

११ आपादितवंशकृत्यम्=सम्पादितं शुषिरस्य कार्य्यम् यस्मिन् तत्॥

१३ अनोकहः=ओकः स्थानं न जहाति न त्यजतीति अनोकहः अर्थात् वृक्षः॥

१०—और पवन की हिलाई हुई नई लताओं ने उस समीप आते हुए आदर योग्य को, अग्नि समान तेजस्वी को, फूलों से छाया मानो पुर की कन्याओं ने उपचार की खीलों से ॥

११—उस धनुष धरे हुए के भी शरीर को, निधड़क अन्तःकरण के जताए हुए दयाभाववाले को, देखती हुई हरणियों ने आंखों के बड़ेपन का फल पाया ॥

१२—उसने पवन भरे हुए रन्ध्रोंवाले शब्दायमान बांसों से, मुरली का काम देते हुओं से, कुंजों में बन देवताओंका ऊंचे स्वर से गाया हुआ अपना यश सुना ॥

१३—पहाड़ के झिरनों के तुषार से मिली हुई, वृक्षों के हिलते हुए फूलों से सुगन्धित, पवन ने उस घाम के सताए हुए को, विना छत्रवाले को, आचार शुद्ध को सेवन किया ॥

---

१० रीत है कि जब राजा नगर में आवे पुर की कन्या उस पर खीलें बरसाती हैं और जब राजा नगर से बाहर जाय यही उपचार पुर की बूढ़ी स्त्री करती हैं ॥

११ धनुष धारण किए हुए भी वह दयावान दिखलाई दिया ॥

१२ पोले बांसों के छिद्रों में पवन की ध्वनि हुई सोई मानो बन देवताओं ने दिलीप का यश गाया ॥

१४—शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निः।
आसीद् विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे।
तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने॥

१५—सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि।
कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा।
प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः॥

१६—तां देवता पित्रतिथिक्रियार्थाम्।
अन्वग् ययौ मध्यमलोकपालः।
बभौ च सा तेन सतां मतेन।
श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना॥

१७—स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथा-।
न्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि।
श्यामायमानानि वनानि पश्यन्॥

१८—आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्।
गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः।
उभावलञ्चक्रतुरञ्चिताभ्यां।
तपोवनावृत्तिपथं गताभ्याम्॥

---

१५ पतङ्गः=सूर्य्यः॥

१४—बनमें उस रक्षक के फिरने पर बरषा के विना भी दावानल बुझी, फलफूलों की अधिक वृद्धि हुई, पशुओं में निबल को सबल ने न सताया ॥

१५—चलने से दिशाओं को पवित्र करके दिन के अन्त में नई कोंपल समान लाल रङ्गवाली सूर्य की प्रभा और मुनि की गऊ (दोनों) स्थान को लौटीं ॥

१६—उस देवताओं और पितृियों और अतिथों के कार्य साधनेवाली के पीछे मध्यम लोक (पृथ्वी) का राजा चला और उस अच्छों के माने हुए के साथ वह सुशोभित हुई, मानो विधि के साथ साक्षात् श्रद्धा ॥

१७—वह उथले कुण्डों से निकलते हुए सूअरों के झुंडोंवाले, बसेरे के वृक्षों की ओर आते हुए मोरोंवाले, मृगों के बैठने की हरी घासवाले, श्याम बनों को देखता हुआ चला ॥

१८—एकही बार ब्याई हुई गायने ऐन का बोझ संभालने के यत्न से (और) राजा ने शरीर के भारीपन से, दोनों ने मनोहर चालों से तपोबन के आने जाने का मार्ग शोभित किया ॥

१९—वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तम्।
आवर्त्तमानं वनिता वनान्तात्।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिः॥
उपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्॥

२०—पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन।
प्रत्युद्गता पार्थिवधर्म्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुः।
दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या॥

२१—प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां।
सुदक्षिणासाक्षतपात्रहस्ता।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः।
शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः॥

२२—वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्य्यां।
प्रत्यग्रहीत् सेति ननन्दतुस्तौ।
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां।
प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि॥

२३—गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ।
समाप्य सान्ध्यञ्च विधिं दिलीपः।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं।
भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम्॥

१९—उस वसिष्ठ की गाय के पीछे चलते हुए को, वन से लौटतेहुए को मूंदते में अलसाते पलकोंवाली रानी ने उपासी सी आंखों से पिया (अर्थात् चाव से देखा)॥

२०—मार्ग में राजा की आगे की हुई और रानी की आगे से ली हुई वह गाय उन दोनों के बीच में शोभायमान हुई मानो दिन और रात के बीच में सन्ध्या॥

२१—उस गऊ को प्रदक्षिणा और प्रणाम करके अक्षत सहित पात्र हाथमें लिये हुए सुदक्षिणाने उसका चौड़ा मस्तक पूजा, मानो मनोकामना की सिद्धि का द्वार॥

२२—उसने बछड़े के हेज में भी ठैर कर पूजा ली इससे वे दोनों प्रसन्न हुए, क्योंकि भक्तिवालों में ऐसों की प्रसन्नता के चिह्न निश्चय फल का हेतु होते हैं॥

२३—स्त्री सहित गुरू के चरनों को बन्दना करके और सन्ध्या विधि को समाप्त करके भुजाओं से वैरियों के उखाड़ने वाले दिलीप ने दुहने के अन्त में बैठी हुई गऊ को फिर भी सेवन किया॥

---

२२ हेज—प्यार

२४—तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपाम् ।
अन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः ।
क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश ।
सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥
२५—इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं ।
समं महिष्या महनीयकीर्त्तेः ।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य ।
दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥
२६—अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं ।
जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः ।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं ।
गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥
२७—सा दुष्प्रधर्षा मनसापि हिंस्रैः ।
इत्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन ।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण ।
प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष ॥
२८—तदीयमाक्रन्दितमार्त्तसाधोः ।
गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् ।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां ।
निवर्त्तयामास नृपस्य दृष्टिम् ॥

२४—उस पूजा और दीपक सामने रक्खी हुई को सेवा करके वह रक्षक स्त्री समेत क्रम से सोई हुई के पीछे सोया और जगी हुई के पीछे उठ खड़ा हुआ ॥

२५—इस भांति सन्तान निमित्त रानी सहित व्रत धारण करते हुए उस बड़े कीर्तिमान् के, दीनों का उद्धार करनेवाले के, तिगुने सात (अर्थात् २१) दिन बीत गए ॥

२६—औरवें दिन अपने सेवक का भाव जानने की इच्छा करती हुई मुनि की होमधेनु ने गंगाद्वार पर बढ़ी हुई घासवाली हिमाचल की गुफा में प्रवेश किया ॥

२७—इसलिये कि " हिंसकों को यह मन से भी दुर्लभ है" पहाड़ की शोभा में दृष्टि लगाए हुए राजा के अनदेखे झपटते हुए सिंह ने वह (गाय) बल से पकड़ी ॥

२८—गुफा में रुके हुए भारी शब्दवाले उसके डकराने ने दुःखियों के रक्षक राजा की पर्वत में लगीहुई दृष्टि हटाई, मानो रस्सी में लेकर ॥

---

२७ राजा की दृष्टि पहाड़ की शोभा देखने में लगी इसलिये उसने नाहर गाय पर झपटता हुआ न देखा ॥

२९—स पाटलायां गवि तस्थिवांसं।
धनुर्धरः केशरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां।
लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्॥
३०—ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी।
वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गात्।
उद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारिः॥
३१—वामेतरस्तस्य करः प्रहर्त्तुः।
नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे।
सक्तांगुलिः सायकपुङ्ख एव।
चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे॥
३२—बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः।
अभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः।
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तः।
भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्य्यः॥
३३—तमार्य्यगृह्यंनिगृहीतधेनुः।
मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्।
विस्मापयन् विस्मितमात्मवृत्तौ।
सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः॥

---

३२ अभ्यर्णम्=अदूरम्॥

२९—उस धनुषधारी ने लाल गाय पर बैठा हुआ केहरी देखा, मानो गेरू के पहाड़ की कुक्षा में फूला हुआ लोध्र का वृक्ष ॥

३०—तब मारने योग्य सिंह के मारने को सिंह कीसी चाल वाले राजा ने, (दुःखियों के) शरण देनेवाले ने, वैरियों को बल से उखाड़नेवाले ने, रोष में आकर निषंग से बाण निकालना चाहा ॥

३१—उस प्रहार करते हुए का दाहना हाथ बाण की पूंछ ही में, नखों की कान्ति से शोभायमान कंकपंखवाली में, अंगुली लगा हुआ रह गया, मानो चित्र में लिखा हुआ उद्योग ॥

३२—बांह रुकने से कोप बढ़ा हुआ राजा, सामने खड़े हुए अपराधी को छूने की सामर्थ्य न रखनेवाले अपने तेजों से अन्तःकरण में जला, जैसे मन्त्रों वा ओषधियों से कीले हुए पराक्रमवाला सांप ॥

३३—उस आर्य्यसखा को, मनुवंश की ध्वजा को, अपनी दशा पर चकित को, सिंह समान बलवान् को, गऊके पकड़नेवाले सिंह ने मनुष्य की बोली में अचम्भा बढ़ाते हुए कहा ॥

---

३० निषंग तरकश को कहते हैं ॥

३१ कंक एक पक्षी बगले की जाति का होता है ॥

३४—अलं महीपाल! तव श्रमेण ।
प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः ।
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥

३५—कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः ।
पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् ।
अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्त्तेः ।
कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ॥

३६—अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं ।
पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन ।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां ।
स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥

३७—कण्डूयमानेन कटं कदाचिद् ।
वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य ।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच ।
सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः ॥

३८—तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां ।
त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ ।
व्यापारितः शूलभृता विधाय ।
सिंहत्वमङ्कागतसत्त्ववृत्ति ॥

५७

३४—"हे राजा बस श्रम मत कर यहां तेरा फेंका हुआ अस्त्र भी वृथा होगा,(क्योंकि) वृक्ष उखाड़ने की सामर्थ्यवाला पवन का वेग पहाड़ में नहीं चलता है" ॥

३५—"कैलास समान श्वेत बैल पर चढ़नेवाले के चरण पड़ने के प्रताप से मुझ पवित्र पीठवाले को तू अष्टमूर्त्ति (महादेव) का सेवक कुम्भोदर नाम निकुम्भ का मित्र जान ॥

३६—"सामने जो देवदारु (का वृक्ष) तू देखता है सो महादेवजी का कृत्रिम पुत्र है यह स्वामिकार्त्तिक की माता के सुवर्णकुम्भस्तनों से निकले हुए पयों (दूधों वा जलों) का स्वाद जाननेवाला है" ॥

३७—"कनपटी खुजलाते हुये हाथी ने एक समय इसकी छाल रगड़ डाली तिससे पार्वतीजी ने उसका शोच किया, मानो असुरों के अस्त्रों से छिदे हुये स्वामिकार्त्तिक का" ॥

३८—"उसी दिन से वनके हाथियों के डराने के लिये मुझे महादेवजी ने गोद में आये हुये पशु की वृत्तिवाली सिंहता देकर यहां पहाड़ की कुक्षा में ठहरादिया है" ॥

---

३६ सोने का घड़ा है सोई मानो स्तन है जल है सोई दूधहै ॥

३७ गोद में आये हुये पशु की वृत्ति से तात्पर्य यहहै कि जो पशु आप से आप आजाय उसको भक्षण करले ढूढ़ने कहीं न जाय ॥

३९–तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै।
प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।
उपस्थिता शोणितपारणा मे।
सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव॥
४०–स त्वं निवर्त्तस्व विहाय लज्जां।
गुरोर्भवान् दर्शितशिष्यभक्तिः।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं।
न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति॥
४१–इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजः।
मृगाधिराजस्य वचो निशम्य।
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावात्।
आत्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार॥
४२–प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे।
तत्पूर्व्वभङ्गे वितथप्रयत्नः।
जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन।
वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः॥
४३–संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र! कामं।
हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः।
अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद।
सर्व्वं भवान् भावमतोऽभिधास्ये॥

---

४१ गिरिशः=गिरौ शेते यः स गिरिशः॥

३९—"उसी मुझ भूखे की तृप्ति के निमित्त यह काल की बांधीहुई लोहू की पारणा परमेश्वर ने भेजी है, जैसे राहु की (तृप्ति) के निमित्त चान्द्रमसी सुधा" ॥

४०—"सो तू गुरु में शिष्यभक्ति दिखलानेवाला लज्जा त्याग कर चला जा क्योंकि जो रक्षा की वस्तु शस्त्रों से रक्षा न होसके तौ शस्त्रधारियों का यश क्षीण नहीं होता है" ॥

४१—सिंहका यह गर्वित वचन सुनकर राजा ने, गिरिवासी (महादेव) के प्रभाव से रुके हुये अस्त्रवाले ने, अपने में अवज्ञा ढीली की ॥

४२—बाण चलाने में प्रथम यत्न बिगड़ा हुआ (राजा) फिर उस से बोला, जैसे त्रिलोचन (महादेव) के देखने से अपाहज होकर वज्र फेंकने की इच्छा करता हुआ इन्द्र ॥

४३—"हे सिंह ! चेष्टा रुके हुये का वचन अवश्य हँसी के योग्य होताहै तौ भी मैं कहना चाहताहूं—तू प्राणियों के सब अन्तर्भावों को जानता है इसलिये कहता हूं" ॥

---

४२ महादेव के कोप सहित देखने से इन्द्र का हाथ शिथिल होजाने की कथा महाभारत में है ॥

४४—मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानां।
सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः।
गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेः।
नश्यत् पुरस्तादनुपेक्षणीयम्॥
४५—स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं।
देहेन निर्व्वर्त्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा।
विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः॥
४६—अथान्धकारं गिरिगह्वराणां।
दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्व्वन्।
भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्त्ती।
किञ्चिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे॥
४७—एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं।
नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्।
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्॥
४८—भूतानुकम्पा तव चेदियं गौः।
एका भवेत् स्वस्तिमती त्वदन्ते।
जीवन् पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः।
प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि॥
४९—अथैकधेनोरपराधचण्डाद्।
गुरोः कृशानुप्रतिमाद्बिभेषि।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं।
गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोध्नीः॥

४४—"वह स्थावर जंगमों की सृष्टि और रक्षा और प्रलय का करता मेरा पूज्य है और अग्नि में आहुति देनेवाले गुरु का यह धन भी सामने नष्ट होता हुआ देखने के अयोग्य है" ॥

४५—सो तू मेरी देह से अपनी भूख दूर करने को प्रसन्न हो-दिन बीतने पर हेज करते हुए छोटे बछड़ेवाली महर्षि की इस गाय को छोड़ दे" ॥

४६—तब डाढ़ों की चमक से पहाड़ की गुफाके अंधेरे को टुकड़े करता हुआ वह महादेव का सेवक कुछ हँस कर फिर राजा से बोला ॥

४७—"इकछत राज्य को जगत के प्रभुत्व को नई अवस्था को और इस सुन्दर शरीर को तुच्छ के कारण बहुत को खोने की इच्छा करनेवाला तू मुझे विचार में मूढ़ जान पड़ता है" ॥

४८—"जो प्राणियों में तेरी दया है तौ तेरे मरने से यह एक गाय कुशलमती रहती है और जो तू जीता रहेगा तौ हे प्रजानाथ! प्रजा को सदा उपद्रवों से पिता की नाईं रक्षा करेगा" ॥

४६—"जो अपराध से कोपित अग्नि की मूर्ति एक गायवाले गुरु से डरता है तौ उसके क्रोध को तू घड़े के समान ऐनवाली करोड़ गऊ देकर शान्त कर सकता है" ॥

५०–तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां।
भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम्।
महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम्।
ऋद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः॥

५१–एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे।
प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन।
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः।
प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव॥

५२–निशम्य देवानुचरस्य वाचं।
मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच।
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या।
निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः॥

५३–क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः।
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः।
प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा॥

५४–कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षेः।
विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम्।
इमामनूनां सुरभेरवेहि।
रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयास्याम्॥

---

५० ऐन्द्रपदम् = स्वर्गम्॥

५०—"इसलिये तू कल्यान पंक्तियों की भोगनेवाली अपनी बड़ी बलवान देहको रख (क्योंकि) ऋद्धि सहित राज्यही को पृथ्वी से सम्बन्धरखनेवाला स्वर्ग कहते हैं" ॥

५१—यह कहकर सिंह के चुप होने पर गुफा में उठी हुई उसी की गाजसे पहाड़ ने भी मानो राजा को प्रीति सहित वही अर्थ ऊंचे स्वर से कहा ॥

५२—देवताके सेवक का वचन सुनकर नरपति ने, उसी की पकड़ी हुई भयभीत आंखोंवाली गाय को देखते हुए ने, अति दयावान ने, फिर भी कहा ॥

५३—"निश्चय नाश से तारता है, यह क्षत्री का उदग्र शब्द (तीनों) भुवनों में प्रसिद्ध है तिससे विपरीत वृत्ति पुरुष के राज्य से अथवा अकीर्त्ति करके मैले प्राणों से क्या (लाभ) है" ॥

५४—"मुनि की शान्ति और गायों के देने से क्योंकर होसक्ती है—इसको तू सुरभी के समान जान-इस में तेरा प्रहार महादेव ही के प्रताप से हुआ है" ॥

---

५० कल्यान पंक्तियों से तात्पर्य्य यह है कि अनेक प्रकार के अच्छे पदार्थों को देह भोगती है ॥

५५—सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण।
न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः।
न पारणा स्याद्विहता तवैवं।
भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः॥

५६—भवानपीदं परवानवैति।
महान् हि यत्नस्तव देवदारौ।
स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे।
विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन॥

५७—किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं।
यशःशरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां।
पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।

५८-सम्बन्धमाभाषणपूर्व्वमाहुः।
वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते।
तद्भूतनाथानुग! नार्हसि त्वं।
सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम्॥

५९—तथेति गामुक्तवते दिलीपः।
सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः।
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहम्।
उपानयत् पिण्डमिवामिषस्य॥

६०—तस्मिन् क्षणे पालयितुः प्रजानाम्।
उत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रं।
अवाङ्मुखस्योपरिपुष्पवृष्टिः।
पपात विद्याधरहस्तमुक्ता॥

५५—"सो यह मुझे अपने देहार्पण के पलटे तुझसे छुड़ानी योग्य है, इस भांति तेरी पारणा भी न रुकेगी और मुनि की क्रिया का साधन भी नष्ट न होगा" ॥

५६—"तू पराधीन भी इसको जानता है क्योंकि देवदारु में तेरा बहुत यत्न है, कि रक्षा की वस्तु को अपने नष्ट हुए विना नष्ट कराकर स्वामी के सन्मुख खड़ा नहींहुआ जा सकता" ॥

५७—"और जो मैं तेरे मत में मारेजाने के अयोग्य हूं तौ तू मेरे यश रूपी शरीर में दयालु हो- मुझ सरीके लोगों को पञ्चभूतवाले निश्चय विनाशमान शरीर में चाह नहीं होती है" ॥

५८—"सम्बन्ध को सम्भाषण पूर्व कहते हैं (अर्थात् सम्बन्ध का कारण सम्भाषण होताहै) सो हम दोनों के वन में मिलने से हुआ इसलिये हे महादेव के सेवक! मुझ सम्बन्धी की प्रार्थना को तू उल्लंघन करनेयोग्य नहींहै" ॥

५९—"ऐसाही" यह वचन कहते हुए सिंह के निमित्त दिलीप ने, बन्धन से खुली बांहवाले ने, हथ्यार डाले हुए ने, तुरन्त अपना शरीर अर्पण किया, मानो मांस का पिण्ड ॥

६०—उसी छन सिंह के बड़े कूदने की बाट देखते हुए सिर झुकाए हुए प्रजापालक के ऊपर विद्याधरों के हाथ से छूटे हुए फूलों की बरसा हुई ॥

६१—उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं।
वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन्।
ददर्श राजा जननीमिव स्वां।
गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम्॥
६२—तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो।
मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि।
ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि।
प्रभुःप्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः॥
६३—भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च।
प्रीतास्मि ते पुत्र! वरं वृणीष्व।
न केवलानां पयसां प्रसूतिम्।
अवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्॥
६४—ततः समानीय स मानितार्थी।
हस्तौ स्वहस्तार्ज्जितवीरशब्दः।
वंशस्य कर्त्तारमनन्तकीर्त्तिं।
सुदक्षिणायां तनयं ययाचे॥
६५—सन्तानकामाय तथेति कामं।
राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं।
पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश॥

६१—उत्थितम् = उत्पन्नम्॥
६५—प्रतिश्रुत्य = प्रतिज्ञाय॥

६१—"उठ बच्चे" ऐसे कहा हुआ अमृतमिला वचन सुनकर राजा ने उठतेही टपकते दूध वाली गाय अपनी माता के समान आगे देखी सिंह नहीं ॥

६२—उस अचम्भे में आए हुए को गाय ने कहा "हे साधु ! मैंने माया रचकर तेरी परीक्षा ली है, मुनि के प्रताप से मुझ में प्रहार करने को यम भी समर्थ नहीं हैं फिर और हिंसक क्या हैं" ॥

६३—"गुरु में भक्ति और मुझ में दया (करने) से मैं तुझ पर प्रसन्न हुई, हे पुत्र ! तू वरमांग, मुझ को निरा दूध देने वाली मत जान प्रसन्न होकर मैं कामना देनेवाली हूं" ॥

६४—तब उस याचकों के सत्कार करनेवाले ने, अपनी भुजा से वीरपदवी पाए हुए ने, दोनों हाथ जोड़कर वंशचलानेवाला अनन्तकीर्त्ति पुत्र सुदक्षिणा में मांगा ॥

६५—सन्तान चाहनेवाले राजा के निमित्त "निश्चय ऐसाही होगा" यह प्रतिज्ञा उस दुधार ने करके "हे पुत्र ! मेरे दूधको पत्तेके दोनेमें दुहकर पीले" यह आज्ञा उसकोदी ॥

६६—वत्सस्य होमार्थविधेश्चशेषम्।
ऋषेरनुज्ञामधिगम्य मातः!।
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं।
षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः॥
६७—इत्थं क्षितीशेन वसिष्ठधेनुः।
विज्ञापिता प्रीततरा बभूव।
तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः।
प्रत्याययावाश्रममश्रमेण॥
६८—तस्याःप्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं।
गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य।
प्रहर्षचिन्हानुमितं प्रियायै।
शशंस वाचा पुनरुक्तयेव॥
६९—स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा।
सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम्।
पपौ वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः।
शुभ्रं यशो मूर्त्तमिवातितृष्णः।
७०—प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते।
प्रास्थानिकं स्वस्त्यनं प्रयुज्य।
तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानीं।
प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः॥

७०—प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं = मंगलमार्ग आशीर्वादम्॥

६६—"बछड़े से और होम क्रिया से बचाहुआ तेरा दूध हे माता! मैं ऋषि की आज्ञा पाकर लेना चाहता हूं, जैसे रक्षा की हुई पृथ्वी का छठा भाग" ॥

६७—इस भांति राजा की प्रार्थना की हुई मुनि की गाय अधिक प्रसन्न हुई और उसी के साथ हिमालय की कुक्षा से आश्रम को विना श्रम लौटी ॥

६८—अति हर्ष के चिन्हों से अनुमान होतीहुई उसकी प्रसन्नता उस पूर्ण चन्द्रमा के सदृश मुखवाले ने, राजाओं को सीख देनेवाले ने, गुरु के निमित्त निवेदन करके प्यारी से कही, मानो पुनरुक्त वाणी करके ॥

६९—उस अनिन्दितात्मा ने, अच्छों के प्यारे ने, वसिष्ठ के आज्ञा किएहुए ने बछड़े से और यज्ञ से बचा हुआ नन्दिनीका दूध पिया, मानो अति प्यासे ने मूर्त्तिवान् उज्वल यश ॥

७०—प्रातःकाल विधिपूर्वक व्रत खोलने से पीछे मंगल मार्ग का आशीर्वाद देकर जितेन्द्री वसिष्ठ ने राजा रानी को अपनी राजधानी की ओर भेजा ॥

---

६६ अगले राजाओं का धर्म था कि खेत की उपजका छठाभाग किसान से लेते थे इसी को भेज कहते हैं ॥

६८ पुनरुक्तवाणी इस लिये हुई कि जो कहा वह देखनेही से जान लिया गया था ॥

७१—प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशम्।
अनन्तरं भर्त्तुररुन्धतीञ्च।
धेनुं सवत्साञ्च नृपः प्रतस्थे।
सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः॥
७२—श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन।
स धर्म्मपत्नीसहितः सहिष्णुः।
ययावनुद्घातसुखेन मार्गं।
स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन॥
७३—तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन।
प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम्।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिः।
नवोदयं नाथमिवौषधीनाम्॥
७४—पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकं।
प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः।
भुजे भुजङ्गेन्द्रसमानसारे।
भूयःस भूमेर्धुरमाससञ्ज॥

७१—आहुतिवाली अग्निको और गुरुके पीछे अरुन्धती को और बछड़े समेत गाय को प्रदक्षिणा करके अच्छे मङ्गलों से अधिक प्रतापवान् राजा ने प्रस्थान किया ॥

७२—कानों को प्यारी ध्वनवाले रथ पर, विना रुकावट चलने से सुखदेनेवाले पर, वह सहनशील धर्मपत्नी समेत मार्ग में चला, मानो अपने पूर्णमनोरथ सहित ॥

७३—न देखने से उस चाव बढ़ेहुए को, पुत्रकामना के व्रत से दुबले अंगवाले को, प्रजा ने अतृप्त नेत्रों से पिया, मानो नए उदय हुए चन्द्रमा को ॥

७४—उस इन्द्र समान ऐश्वर्यमान् ने, नगर निवासियों के सराहे हुए ने उठी पताकावाले पुर में प्रवेश करके सर्प राज (शेषजी) के तुल्य बलवाली भुजा पर फिर पृथ्वी का बोझ लिया ॥

---

७२ यहां रथ को मनोरथ से मिलाया है जैसे राजा का रुका हुआ मनोरथ खुलगया था ऐसेही रथ का मार्ग भी विना रुकावट हुआ ॥
७३ नेत्रों से पिया = बहुत चाव से देखा ॥

७५—अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः।
सुरसरिदिव तेजो वन्हिनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी।
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः॥

इति द्वितीयः सर्गः॥

७५—जैसे अत्रि मुनि की आंखसे निकलीहुई ज्योति (चन्द्रमा) को आकाश ने , जैसे अग्नि के फेंके हुये रुद्रतेज (स्वामिकार्तिक) को गंगाजी ने, (वैसे)लोकपालों के बड़े प्रतापों से भरे हुये गर्भ को रानी ने राजा के कुल की प्रतिष्ठा के निमित्त धारण किया ॥

दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥

---

७५ अत्रि मुनि की आंखों से चन्द्रमा उत्पन्न होनेकी कथा हरिवंश पुराण में है और स्वामिकार्तिक के जन्म की कथा रामायण में है ॥

तृतीयः सर्गः

रघोर्जन्म राज्याभिषेको वा

१—अथेप्सितं भर्तुरुपस्थितोदयं ।
सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम् ।
निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्ततेः ।
सुदक्षिणा दौर्हृदलक्षणं दधौ ॥

२—शरीरसादादसमग्रभूषणा ।
मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका ।
प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥

३—तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो ।
रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां ।
शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम् ॥

४—दिवं मरुत्वानिव भोक्ष्यते भुवं ।
दिगन्तविश्रान्तरथो हि मत्सुतः ।
अतोऽभिलाषे प्रथमं तथाविधे ।
मनो बबन्धान्यरसान् विलङ्घ्य सा ॥

तीसरा सर्ग ॥

रघु का जन्म और राज्याभिषेक

१-पति के चाहे हुये प्राप्तकाल दोहद लक्षण (अर्थात् गर्भ) को, सखी जनों की आंखों के चांदनी मुख को, इक्ष्वाकुवंश की सन्तति के मुख्य हेतु को सुदक्षिणा ने धारण किया ॥

२-शरीर की छीनता से थोड़े आभूषणोंवाली वह लोध्र समान पीले मुख सहित देखी गई मानो न्यून प्रकाश चन्द्रमा सहित थोड़ेतारोंवाली सबेरे की रात ॥

३-उस मिट्टी की सुगन्धि वाले मुख को एकान्त में सूंघकर राजा तृप्त नहीं होता था, मानों ग्रीष्म के अन्त में बादलों की बूंदों के छिड़के हुए वन के उथले कुंडों को (सूंघकर) हाथी ॥

४-" जैसे स्वर्ग को इन्द्र भोगता है ऐसे दिशाओं के अन्त पर रथ ठहरानेवाला मेराही बेटा पृथ्वीको भोगे,, इस लिये उसने पहलेही और रसों को त्याग कर उसी अभिलाष में मनलगाया (अर्थात् मिट्टी खाई) ॥

---

१ दोहद उस चाहको कहते हैं जो गर्भवती स्त्री को नई नई वस्तु खाने पीने देखने सूंघने में होती है इसी से गर्भ को दोहद लक्षण कहतेहैं ॥

५—न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं।
स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः।
प्रियासखीरुत्तरकोशलेश्वरः॥
६—उपेत्य सा दोहददुःखशीलतां।
यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम्।
न हीष्टमस्य त्रिदिवेऽपि भूपतेः।
अभूदनासाद्यमधिज्यधन्वनः॥
७—क्रमेण निस्तीर्य्य च दोहदव्यथां।
प्रचीयमानावयवा रराज सा।
पुराणपत्रापगमादनन्तरं।
लतेव सन्नद्धमनोज्ञपल्लवा॥
८—दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं।
तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम्।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः।
सुजातयोः पङ्कजकोशयोःश्रियम्॥
९—निधानगर्भामिव सागराम्बरां।
शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्।
नदीमिवान्तःसलिलां सरस्वतीं।
नृपः ससत्वां महिषीममन्यत॥

५—"लाज के कारण मुझे कुछ चाह नहीं जताती है, किन वस्तुओं में मगधदेशनी अभिलाषमती है,, ऐसे आदर युक्त उत्तरकोशल का राजा प्यारी की सखियों को बार बार पूछता था ॥

६—गर्भवती की चाह से दुखीले स्वभाव को पहुंच कर उसने जो कहा सोई लाया हुआ देखा क्योंकि उस चढ़ी हुई प्रत्यंचावाले धनुषधारी राजा की चाही वस्तु स्वर्ग में भी अलभ्य न थी ॥

७—फिर और हौले हौले दोहद बिथा को बिता कर वह पुष्ट अंगोंवाली शोभायमान हुई, जैसे पुराने पत्तों के गिरजाने से पीछे सुन्दर कोंपलों को धारण करने वाली लता ॥

८—दिनों के जाने में उसके अति भारी कुछ नील मुख दोनों कुचों ने भोरों से लपटी हुई सुन्दर कमल की दो कलियों की कान्ति को तिरस्कार किया ॥

९—जैसे गर्भ में ऋद्धि रखनेवाली पृथ्वी को, जैसे भीतर अग्नि रखनेवाली शमी को, जैसे अन्तर में जल रखनेवाली सरस्वती नदी को (ऐसे) राजाने आधानवती रानी को आदर दिया ॥

१०—प्रियानुरागस्य मनः समुन्नतेः ।
भुजार्जितानाञ्च दिगन्तसम्पदाम् ॥
यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रियाः ।
धृतेश्च धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः ॥

११—सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् ।
प्रयत्नमुक्तासनया गृहागतः ।
तयोपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया ।
ननन्द पारिप्लवनेत्रया नृपः ॥

१२—कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते ।
भिषग्भिराप्तैरथ गर्भभर्म्मणि ।
पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखीं प्रियां ।
ददर्श काले दिवमभ्रितामिव ॥

१३—ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैः ।
असूर्य्यगैः सूचितभाग्यसम्पदम् ।
असूत पुत्रं समये शचीसमा ।
त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम् ॥

१०–प्यारी के अनुराग के अनुसार, मन की उन्नति के अनुसार, अपनी भुजा से प्राप्त किये हुये पृथ्वी के वैभवों के अनुसार, और (पुत्रही होगा इस) अपने धैर्य के अनुसार उस धीरने पुंसवनादि कर्मों को क्रम से किया॥

११–लोकपालों का अंश धारण किये हुये गर्भ के बोझ से यत्न करके आसन छोड़नेवाली ने, आदर की अंजुली से थके हाथोंवाली ने, तरल आंखोंवाली ने, घरमें आये हुये राजा को प्रसन्न किया॥

१२–बालचिकित्सा में निपुण यथार्थ जतन करनेवाले वैद्यों से गर्भ पोषण होते हुये प्रसन्न पति ने जनने की आसावती प्यारी को समय पर देखा, जैसे बादलों वाले आकाश को॥

१३–फिर उचित समय पर विना सूर्य के जाने वाले पांचों उच्चस्थानी ग्रहों से भाग्य की सम्पत दिखाता हुआ पुत्र (उस) शची समान ने जना, जैसे त्रिसाधना शक्ति ने अक्षय अर्थ॥

---

१० गर्भ के दूसरे अथवा तीसरे महीने में पुंसवन क्रिया होती है चौथे में अनवलोभन और छठे अथवा आठवें में सीमन्त॥

१२ समय पर देखने से अभिप्राय यहहै कि दशवें महीने में देखा॥

१३ प्रभाव और मन्त्र और उत्साह ये तीनों त्रिसाधना शक्ति हैं॥ जो उच्च ग्रह सूरज के साथ होकर पड़ें तो अपना फल नहीं देते॥

१४—दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः।
प्रदक्षिणार्च्चिर्हविरग्निराददे।
बभूव सर्व्वं शुभशंसि तत्क्षणं।
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्॥

१५—अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा।
सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषः।
बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव॥

१६—जनाय शुद्धान्तचराय शंसते।
कुमारजन्मामृतसम्मिताक्षरम्।
अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः।
शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे॥

१७—निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा।
नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम्।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनात्।
गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि॥

१८—स जातकर्मण्यखिले तपस्विना।
तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः।
प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ॥

१४—दिशा प्रसन्न हुईं, पवन सुखकारी चले, प्रदक्षिणा की लौवाली अग्नि ने हव्य लिया, उस छन सबही शुभ दिखानेवाले हुए (क्योंकि) ऐसों का जन्म लोककी भलाई के निमित्त ही होता है॥

१५—सूतकघर के आस पास फैले हुए उस सुजन्मा के स्वाभाविक तेज ने आधीरात के दीपक सहजही मन्द ज्योति किए, मानो चित्र में लिखे हुए॥

१६—रनवास में आनेजानेवाले पुत्रजन्म के अमृत समान अक्षर सुनानेवाले मनुष्योंके निमित्त देने को राजा की तीनही वस्तु न थीं चन्द्रसमान चमकवाला छत्र और दो चमर॥

१७—विना पवन के कमल समान निश्चल नेत्रों से पुत्र का सुन्दर मुख पीने वाले राजा का बड़ा हर्ष अपने में समाने को समर्थ न हुआ, जैसे महासमुद्र का ओघ चन्द्रमा के दर्शन से॥

१८—तपोवन से आए हुए तपस्वी पुरोहितसे सब जातकर्म होने पर वह दिलीप का पुत्र अधिक शोभायमान हुआ, जैसे सान पर चढ़ा हुआ खान का हीरा॥

---

१७ नेत्रों से पीना अर्थात् बहुत प्यार से देखना॥

१९—सुखश्रवा मङ्गलतूर्य्यनिस्वनाः।
प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः।
पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि॥
२०—न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुः।
विसर्जयेद् यं सुतजन्महर्षितः।
ऋणाभिधानात् स्वयमेव केवलं।
तदा पितॄणां मुमुचे स बन्धनात्॥
२१—श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकः।
तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थवित्।
चकार नाम्ना रघुमात्मसम्भवम्॥
२२—पितुः प्रयत्नात् स समग्रसम्पदः।
शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने।
पुपोष बृद्धिं हरिदश्वदीधितेः।
अनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः॥
२३—उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा।
यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी।
ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ॥

---

२३ शरजन्मना॥ कार्त्तिकेयेन॥

१९—कानों को सुख देनेवाली मङ्गलीक बाजों की ध्वनि वाराङ्गनाओं के आनन्दमय नाचों सहित केवल मगध देशनी के पति के घरही में नहीं किन्तु देवताओं के मार्ग (आकाश) में भी छागई ॥

२०—उस रक्षक का कोई बंधुआ न था जिसको पुत्र जन्म से हर्षित होकर छोड़देता, तब वह केवल आपही पितृ ऋण नाम बन्धन से छूटा ॥

२१—"यह लड़का शास्त्र के पार पहुँचे और युद्धमें वैरियों के भी,, इसलिये अर्थ जाननेवाले राजाने (रघि) धातुका चलना अर्थ समझ कर अपने पुत्र का रघु नाम किया ॥

२२—पूरी सम्पदावाले पिता के यत्नों से उसने शरीर के सुन्दर अङ्गोंमें दिन दिन बढ़ती पाई, जैसे सूर्यकी किरण के प्रवेश से नये चन्द्रमा ने ॥

२३—जैसे कार्तिकेय से महादेव और पार्वती, जैसे जयन्त से इन्द्र और शची, तैसे उन्हीं के सदृश पुत्र से उन्हीं समान राजा और वह मगध देशवाली (रानी) हर्षित हुए ॥

२४–रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं।
बभूव यत् प्रेम परस्पराश्रयम्।
विभक्तमप्येकसुतेन तत् तयोः।
परस्परस्योपरि पर्य्यचीयत॥
२५–उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचः।
ययौ तदीयामवलम्ब्य चांगुलिम्।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया।
पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः॥
२६–तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः।
सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि।
उपान्तसम्मीलितलोचनो नृपः।
चिरात् सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ॥
२७–अमंस्त चानेन परार्ध्यजन्मना।
स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम्।
स्वमूर्त्तिभेदेन गुणाग्र्यवर्त्तिना।
पतिःप्रजानामिव सर्गमात्मनः॥
२८–स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैः।
अमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं।
नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्॥

२७—स्वमूर्तिभेदेन=अवतारविशेषेण विष्णुना॥

२४—चकवा चकवी का सा जो प्रेम मन का बांधनेवाला एक दूसरे में था सो इकलौते बेटे का बांटा हुआ भी परस्पर उनके ऊपर वृद्धिको पहुंचा ॥

२५—धाय का कहलाया हुआ पहला वचन उसने कहा और उसी की अंगुली पकड़ कर चला और प्रणाम सिखाने से झुका इससे उस बालक ने पिता का आनन्द बढ़ाया ॥

२६—त्वचा पर उस अमृत सा बरसाते हुए को गोद में लेकर शरीर के मिलने से उपजे हुए सुखों से सम्पूर्ण आंख मीचा हुआ राजा बहुत काल पीछे पुत्र स्पर्श के स्वाद को पहुंचा ॥

२७—और उस शुद्धजन्मा से मर्य्यादा पालक ने (अपने) वंश को स्थितिमन्त माना, जैसे सतोगुणी (विष्णु) अवतार से ब्रह्मा ने अपनी सृष्टि को ॥

२८—उस चूडाकर्म कियेहुए ने, उड़ती कुल्लियोंवाले अपनी अवस्था के मन्त्रीपुत्रों के साथी ने, अक्षरों को यथोचित ग्रहण करके शब्दके शास्त्र में प्रवेश किया, मानो नदी द्वार से समुद्र में ॥

---

२८ ओंनमः पढ़ने के द्वारा शब्द जानना ॥

२९—अथोपनीतं विधिवद् विपश्चितः।
विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।
अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते।
क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति॥
३०—धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः।
क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमाः।
ततार विद्याः पवनातिपातिभिः।
दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः॥
३१—त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवीम्।
अशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत्।
न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः।
क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः॥
३२—महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव।
द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव।
रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः।
पुपोष गाम्भीर्य्यमनोहरं वपुः।
३३—अथास्य गोदानविधेरनन्तरं।
विवाहदीक्षां निरवर्त्तयद्गुरुः।
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्यसत्पतिं।
तमोनुदं दक्षसुता इवाबभुः॥

---

२९ विपश्चितः = विद्वांसः॥

२९—उस विधिपूर्व्वक उपनयन किए हुए को, बाप के प्यारे, को विद्वान् गुरुओं ने सिखाया और उस में उनका परिश्रम सफल हुआ, सुपात्रही में दी हुई सीख फलती है ॥

३०—उस बड़ी बुद्धिवाले ने बुद्धि के सब गुणों से चारसमुद्र समान चार विद्याओं को क्रम से पार किया, जैसे पवन से भी अधिक बेगवान् घोड़ों से सूरज ने दिशाओं को ॥

३१—काले हरिण की पवित्र खाल ओढ़कर उसने पिताही से मन्त्र सहित अस्त्रविद्या सीखी, उसका बाप केवल चक्रवर्त्तीही नथा वह पृथ्वी में धनुषधारीभी एकही था ॥

३२—जैसे बैलपनको पहुंचतेहुए बछड़े ने, जैसे गजेन्द्रपन को पहुंचते हुए पाठेने (तैसे) बालपन से यौवन अवस्था में जाते हुए रघुने हौले हौले गम्भीरता सहित मनोहर शरीर को पाला ॥

३३—गोदान संस्कार से पीछे उसकी विवाहक्रिया पिता ने कराई, राजाओं की कन्या उस अच्छे पति को पाकर शोभायमान हुईं, जैसे दक्ष की बेटियां चन्द्रमा को (पाकर) ॥

---

३० चार विद्या यह हैं-आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती। एता बिद्याश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः ॥

३३ गोदान संस्कार प्रथम डाढ़ी मुण्डन को कहते हैं ॥

३४–युवा युगव्यायतबाहुरंसलः ।
कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः ।
वपुःप्रकर्षादजयद् गुरुं रघुः ।
तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत ॥
३५–ततः प्रजानां चिरमात्मना धृतां ।
नितान्तगुर्वीं लघयिष्यता धुरम् ।
निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ ।
नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक् ॥
३६–नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं ।
तदास्पदं श्रीर्युवराजसंज्ञितम् ।
अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी ।
नवावतारं कमलादिवोत्पलम् ॥
३७–विभावसुः सारथिनेव वायुना ।
घनव्यपायेन गभस्तिमानिव ।
बभूव तेनातितरां सुदुःसहः ।
कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः ॥
३८–नियुज्य तं होमतुरङ्गरक्षणे ।
धनुर्धरं राजसुतैरनुद्रुतम् ।
अपूर्णमेकेन शतक्रतूपमः ।
शतं क्रतूनामपविघ्नमाप सः ॥

३४—तरुण अवस्थावाले रघु ने, जुए समान बड़ी भुजावाले बलवान् ने, चौड़ी छातीवाले ने, विशालग्रीवावाले ने, शरीर की बड़ाई से पिता को जीत लिया तो भी नम्रता के कारण छोटा ही दिखलाई दिया ॥

३५—तिस पीछे अपने बहुत काल के धारण किए हुए बड़े प्रजाभार को छोटा करने के निमित्त राजा ने उसको इसलिए कि "यह स्वभाव से और संस्कार से नम्र है" युवराज पद का भोगनेवाला किया ॥

३६—राजारूपी मुख्य स्थान से (निकल कर) युवराजपदवी वाले रघुरूपी स्थान को गुणचाहनेवाली राजलक्ष्मी अंशकरके गई, जैसे (पुराने) कमल से नए उत्पलको ॥

३७—जैसे पवन सारथी से अग्नि, जैसे शरद से सूरज, जैसे कनपटी के मद से हाथी, ऐसे उस (रघु) से राजा अति दुःसह हुआ ॥

३८—उस धनुषधारी को, राजकुमारों के मुखिया को, यज्ञ के घोड़े की रक्षा में नियुक्त करके वह इन्द्र की उपमा वाला राजा यज्ञों के एक घाट सैकड़े को विना विघ्न कर गया ॥

३७—दुःसह = जिसका सहना कठिन हो ॥

३९—ततः परं तेन मखाय यज्वना।
तुरङ्गमुत्सृष्टमनर्गलं पुनः।
धनुर्भृतामग्रत एव रक्षिणां।
जहार शक्रः किल गूढविग्रहः॥
४०—विषादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं।
कुमारसैन्यं सपदि स्थितञ्च तत्।
वसिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता।
श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नन्दिनी॥
४१—तदङ्गनिस्यन्दजलेन लोचने।
प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम्।
अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनः।
बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः॥
४२—सपूर्व्वतः पर्व्वतपक्षशातनं।
ददर्श देवं नरदेवसम्भवः।
पुनः पुनः सूतनिषिद्धचापलं।
हरन्तमश्वं रथरश्मिसंयतम्॥
४३—शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभिः।
हरिं विदित्वा हरिभिश्च वाजिभिः।
अवोचदेनं गगनस्पृशा रघुः।
स्वरेण धीरेण निवर्त्तयन्निव॥

३९—तिस पीछे कहते हैं कि उस यजमान के यज्ञ निमित्त फिर छोड़े हुए घोड़े को, विना बन्धन वाले को, धनुष धारी रक्षकों के सामने ही से गुप्त अङ्ग (होकर) इन्द्र ने चुराया ॥

४०—मनोरथ भङ्ग होने के शोचमें कुमारों की सेना चकित होकर खड़ी रह गई और प्रभाव सुनी हुई वसिष्ठ की नन्दिनी गाय अपनी इच्छासे आई हुई दिखलाई दी ॥

४१—उसके अंग से निकले हुए पवित्र जल (मूत्र) को अच्छों का मुखिया दिलीप का बेटा नेत्रों में मलकर इन्द्रियों से परे के भी पदार्थों का देखनेवाला हुआ ॥

४२—उस राजकुमार ने पर्वत के पङ्ख काटनेवाला देवता (इन्द्र) पूर्व दिशा में सारथी का बारम्बार चपलता रोका हुआ, रथ की रस्सी में बंधा हुआ, घोड़ा लिये जाते देखा ॥

४३—विना पलक चलानेवाले नेत्रों के सैकड़ों से और हरे घोड़ों से रघु ने उसे इन्द्र जान कर आकाश छूनेवाले धीरे गम्भीर शब्द से पुकारा, मानो वर्जने को ॥

---

४३ कहते हैं कि इन्द्र के शरीर में सहस्र नेत्र हैं ॥

४४–मखांशभाजां प्रथमो मनीषिभिः।
त्वमेव देवेन्द्र ! सदा निगद्यसे।
अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः।
क्रियाविघाताय कथं प्रवर्त्तसे॥
४५–त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषः।
त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा।
स चेत् स्वयं कर्म्मसु धर्मचारिणां।
त्वमन्तरायो भवसि च्युतो विधिः॥
४६–तदङ्गमग्र्यं मघवन् ! महाक्रतोः।
अमुं तुरङ्गं प्रतिमोक्तुमर्हसि।
पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वराः।
मलीमसामाददते न पद्धतिम्॥
४७–इति प्रगल्भं रघुणा समीरितं।
वचो निशम्याधिपतिर्दिवौकसाम्।
निवर्तयामास रथं सविस्मयः।
प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमुत्तरम्॥
४८–यदात्थ राजन्यकुमार ! तत् तथा।
यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः।
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया।
भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः॥

४४-"हे देवेन्द्र! सदा तुझी को यज्ञमें भाग लेनेवालोंका मुखिया पण्डित लोग कहते हैं, मेरे नित्तयज्ञ के संयमी पिताका कारज बिगाड़ने को क्यों तू प्रवृत्त होताहै" ॥

४५-"तुझ तीन लोक के नाथ ने, दिव्य आंखोंवाले ने, सदा यज्ञके वैरी सीधे कियेहैं सो जो तू आपही धर्म्मचारियों के कामों में विघ्न होताहै तौ धर्म नष्ट हुआ" ॥

४६-"इसलिये हे इन्द्र! महायज्ञ के मुख्य अङ्ग इस घोड़े को तू छोड़ने को योग्य है, वेदका मार्ग दिखानेवाले महात्मा मैलों का मार्ग स्वीकार नहीं करते हैं" ॥

४७-रघु का कहा हुआ यह गर्वित वचन सुन कर देवताओं के राजा ने चकित होकर रथ फेरा और उत्तर देने लगा ॥

४८-"हे राजकुमार! जो तूने कहा सो ठीक है परन्तु यश के धनियों को वैरियों से यश रक्षा के योग्य होता है, मेरे सब जगत् प्रसिद्ध यशको तेरा पिता यज्ञ करके उल्लङ्घन करने पर उद्यत हुआ है" ॥

४९—हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतः।
महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं।
द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः॥
५०—अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा।
पितुस्त्वदीयस्य मयापहारितः।
अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः।
पदं पदव्यां सगरस्य सन्ततेः॥
५१—ततः प्रहस्यापभयः पुरन्दरं।
पुनर्बभाषे तुरगस्य रक्षिता।
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते।
नखल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान्॥
५२—स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः।
करिष्यमाणः सशरं शरासनम्।
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना।
वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः॥
५३—रघोरवष्टम्भमयेन पत्रिणा।
हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः।
नवाम्बुदानीकमुहूर्त्तलाञ्छने।
धनुष्यमोघं समधत्त सायकम्॥

४९—"जैसे विष्णु एकही पुरुषोत्तम कहलाता है, त्र्यम्बक महादेव ही है दूसरा नहीं, ऐसे ही मुनि लोग मुझीको सौ यज्ञ करनेवाला जानते हैं हमारे (तीनों के) ये शब्द दूसरे को मिलने वाले नहीं हैं" ॥

५०—"इसलिये तेरे पिता का यह घोड़ा मुझ कपिल की भांति कर्म करनेवाले ने हरा है, बस यहां तेरा यत्न नहीं चलेगा तू सगर की सन्तान के मार्ग में पांव मत रख" ॥

५१—तब हंस कर घोड़े के निडर रक्षक ने इन्द्र से फिर कहा "जो यही तेरा निश्चय है तो शस्त्र पकड़ रघुको जीते विना तू कृतकृत्य नहीं है" ॥

५२—इन्द्र को ऐसे कहकर वह धनुष पर बाण चढ़ाता हुआ पैतरे फेरने से (और) अधिक शोभायमान शरीर की सुथराई से महादेव की होड़ करनेवाला उन्मुख खड़ा हुआ ॥

५३—रघु के सुवर्णमय बाण से हृदय छिदे हुए क्रोधवान् पहाड़ काटने वाले ने भी नए बादलों के दल को छनमात्र शोभा देनेवाले धनुष में सफल बाण चढ़ाया ॥

---

५२ उन्मुख = ऊंचा मुख ॥
५३ पहाड़ काटने वाला = इन्द्र ॥

५४—दिलीपसूनोः स बृहद्भुजान्तरं।
प्रविश्य भीमासुरशोणितोचितः।
पपात्वनास्वादितपूर्व्वमाशुगः।
कुतूहलेनेव मनुष्यशोणितम्॥

५५—हरेःकुमारोऽपि कुमारविक्रमः।
सुरद्विपास्फालनकर्कशांगुलौ।
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते।
स्वनामचिह्नं निचखान सायकम्॥

५६—जहार चान्येन मयूर पत्रिणा।
शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम्।
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः।
प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव॥

५७—तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिकं।
गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः।
बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणोः।
अधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्रिभिः॥

५८—अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः।
तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः।
शशाक निर्वापयितुं न वासवः।
स्वतश्च्युतं वह्निमिवाद्भिरम्बुदः॥

५७—गरुत्मदाशीविषः=सपक्षसर्पः॥
आशीविषः=दंष्ट्रायां विषं यस्य॥

५४-दिलीप के बेटे की चौड़ी छाती में प्रवेश करके भयानक असुरों का रुधिर पीने योग्य उस सायक ने कुतूहलही से आगे न चक्खा हुआ मनुष्य का लोहू पिया॥

५५-स्वामिकार्तिक के पराक्रमवाले राजकुमार ने भी इन्द्र की भुजा में, ऐरावत के ठुमकारने से कड़ी अंगुलियों वाली में, शची के अङ्गरागों से चिह्नित में, अपने नाम के चिह्न का बाण मारा॥

५६-और दूसरे मोरपंखवाले बाण ले इन्द्र की महावज्र ध्वजा काटी, वह (इन्द्र) उसपर अति कोपित हुआ, मानो देवलक्ष्मी के केश बलात्कार करके कटने से॥

५७-उन दोनों जय चाहनेवालों का देवताओं और योद्धाओं से घिरी हुई सीमावाला घोर युद्ध पंखधारी सांपों की नाईं भयानक दीखते हुए ऊर्द्धमुख और अधोमुख बाणों से हुआ॥

५८-उस असह्य तेज के पात्र को बड़े यत्नों से फेंके हुए अस्त्रों की वर्षा से इन्द्र जीतने को समर्थ न हुआ, जैसे अपने से निकलीहुई अग्नि को जलों से बादल॥

---

५४ कुतूहल=नई वस्तु की चाह॥

५७ एक ओर देवता दूसरी ओर रघु के योद्धा खड़े देखते थे इन्द्र के बाण नीचे को आते थे रघु के ऊपर को जातेथे॥

५८ समुद्र की अग्नि=वड़वानल॥

५९-ततः प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते।
प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम्।
रघुः शशाङ्कार्द्धमुखेन पत्रिणा।
शरासनज्यामलुनाद्बिडौजसः॥
६०-स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः।
प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः।
महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं।
स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे॥
६१-रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडितः।
पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः।
निमेषमात्रादवधूय तद्व्यथां।
सहोत्थितः सैनिकहर्षनिस्वनैः॥
६२-तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे।
विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः।
तुतोष वीर्य्यातिशयेन वृत्रहा।
पदं हि सर्व्वत्र गुणैर्निधीयते॥
६३-असङ्गमद्रिष्वपि सारवत्तया।
न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्।
अवेहि मां प्रीतमृते तुरङ्गमात्।
किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः॥
६४-ततो निषङ्गादसमग्रमुद्धृतं।
सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम्।
नरेन्द्रसूनुः प्रतिसंहरन्निषुं।
प्रियंवदः प्रत्यवदत् सुरेश्वरम्॥

५९–तब रघु ने हरिचन्दन लगेहुये पहुंचे पर मथते हुये समुद्र की भांति घोर शब्द करनेवाली इन्द्रधनुष की प्रत्यञ्चा अर्धचन्द्र बाण से काटी ॥

६०–उस बढ़ेहुये वैरवाले ने धनुष छोड़कर प्रबल वैरी के मारने को पहाड़ के पंख काटनेवाला प्रभामण्डल में चमकता हुआ अस्त्र (अर्थात् वज्र) लिया ॥

६१–तिससे बल करके छाती में मारा हुआ योद्धाओं के आंसुओं सहित रघु भूमि में गिरा (और) उस व्यथा को पल भर बिता कर योद्धाओं के हर्ष के शब्दों सहित उठा ॥

६२–इस पर भी उस कठिन शस्त्र चलानेवाले की, बहुत वेर युद्धमें स्थिर रहनेवाले की, अत्यन्त वीरता से वृत्रासुर का मारनेवाला प्रसन्न हुआ, गुण सबही ठौर पांव रखते हैं ॥

६३–"बलसे पहाड़ों में भी न रुकनेवाला मेरा शस्त्र तेरे बिना किसी से नहीं सहा गयाहै, मुझको प्रसन्न जान घोड़े के बिना (और कुछ) वरमांग" यह इन्द्र ने प्रकट कहा॥

६४–तब निषङ्ग से आधे निकलेहुये बाण को, सोने के पंखों की चमक से अंगुलियों को शोभित करतेहुये को, फिर संभालताहुआ मीठी वाणीवाला राजकुमार इन्द्र से बोला ॥

६५–अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो !।
ततः समाप्ते विधिनैव कर्म्मणि।
अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः।
क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम्॥
६६–यथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतः।
त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः।
तवैव सन्देशहराद्विशाम्पतिः।
शृणोति लोकेश ! तथा विधीयताम्॥
६७–तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान् रघोः।
यथागतं मातलिसारथिर्ययौ।
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं।
सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्त्तत॥
६८–तमभ्यनन्दत् प्रथमं प्रबोधितः।
प्रजेश्वरः शासनहारिणा हरेः।
परामृशन् हर्षजडेन पाणिना।
तदीयमङ्गं कुलिशव्रणाङ्कितम्॥
६९–इति क्षितीशो नवतिं नवाधिकां।
महाक्रतूनां महनीयशासनः।
समारुरुक्षुर्दिवमायुषः क्षये।
ततान सोपानपरम्परामिव॥
७०–अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधिसूनवे।
नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम्।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये।
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्॥

इति तृतीयःसर्गः॥

६५—"हे प्रभु! जो तू घोड़े को न छोड़ने योग्यही समझता है तौ यज्ञदीक्षा में नित्य उद्योग करनेवाला मेरा वह पिता विधिपूर्वकही समाप्त किए हुए अश्वमेध का पूरा फल पावै" ॥

६६—"और हे लोकेश्वर! जिस भांति इस वृत्तान्त को सभा में बैठा हुआ, महादेव के एक अंशकरके कठिनता से मिलनेवाला राजा, तेरेही दूत से सुने सो तू कर" ॥

६७—रघु के मनोरथ को "ऐसाही हो" इसप्रकार स्वीकार करताहुआ इन्द्र जैसे आयाथा गया—सुदक्षिणा का पुत्र भी अतिप्रसन्न मन न होकर राजा के सभास्थान को लौटा ॥

६८—इन्द्र के दूत का पहले ही जताया हुआ राजा वज्र के घावों से चिह्नित उसका शरीर हर्ष से कँपते हुए हाथ से छूकर उसको सराहने लगा ॥

६९—इसप्रकार पूजने योग्य आज्ञावाले राजा ने, आयु के अन्त में स्वर्ग चढ़ने के इच्छावान् ने, निन्यानवे अश्वमेधों की पंक्ति पूरी की, मानो सीढ़ियों की ॥

७०—निदान उस विषय से विरक्तचित्तवाले ने युवान बेटे को विधिपूर्वक राजा का चिन्ह स्वेत छत्र देकर उस रानी सहित मुनिवन के वृक्ष की छाया सेई; बूढ़ी अवस्था के इक्ष्वाकुवंशियों की यही कुल रीति थी ॥

तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥

चतुर्थः सर्गः

रघुदिग्विजयः

१—स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः ॥

२—दिलीपानन्तरं राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम् ।
पूर्वं प्रधूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः ॥

३—पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्नयनपङ्क्तयः ।
नवाभ्युत्थानदर्शिन्यः ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः ॥

४—सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना ।
तेन सिंहासनं पित्र्यमखिलञ्चारिमण्डलम् ॥

५—छायामण्डललक्ष्येण तमदृश्या किल स्वयम् ।
पद्मा पद्मातपत्रेण भेजे साम्राज्यदीक्षितम् ॥

६—परिकल्पितसान्निध्या काले काले च वन्दिषु ।
स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिः उपतस्थे सरस्वती ॥

चौथा सर्ग

रघुदिग्विजय

१—पिताका दिया हुआ राज पाकर वह (रघु) अधिक शोभायमान हुआ, जैसे दिन के अन्त में सूरज का दिया हुआ तेज (पाकर) अग्नि ॥

२—दिलीप से पीछे राज्य पर उसको बैठा सुनकर राजाओं के हृदय में मानो पहिले धँधकती हुई आग प्रज्वलित हुई ॥

३—इन्द्रध्वजा सरीखा उसका नया वैभव देखती हुई ऊंचे नेत्रोंवाली सन्तानवती प्रजा सुखी हुई ॥

४—उस गजगामी ने एकही साथ दोनों दबाए, पुरखों का सिंहासन और वैरियों का सम्पूर्ण मण्डल ॥

५—मानो उस राजअभिषेक किए हुए को लक्ष्मीने अप्रकट रूपसे कान्तिमण्डल से अनुमान होनेवाले कमल छत्र से आपही सेवन किया ॥

६—और समय समय वन्दीजनों में निकटवर्तिनी होकर सरस्वती ने उस स्तुति योग्य को अर्थवान् स्तुतियों से सन्मान किया ॥

---

३ इन्द्रध्वजा=राजद्वार का झण्डा ॥

५ रघुके तेज से लक्ष्मी ने आप छत्र किया ॥

७—मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्भुक्ता यद्यपि राजभिः।
तथाप्यनन्यपूर्व्वेव तस्मिन् नासीद्वसुन्धरा॥

८—स हि सर्व्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः।
आददे नातिशीतोष्णः नभस्वानिव दक्षिणः॥

९—मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ।
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः॥
१०—नयविद्भिर्नवे राज्ञि सदसच्चोपदर्शितम्।
पूर्व्वमेवाभवत् पक्षः तस्मिन् नाभवदुत्तरः॥

११—पञ्चानामपि भूतानाम् उत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः।
नवे तस्मिन् महीपाले सर्व्वं नवमिवाभवत्॥
१२—यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात् तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थः राजा प्रकृतिरञ्जनात्॥

१३—कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने।
चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्य्यार्थदर्शिना॥

७—मनु से आदि लेकर पूज्यमान् राजाओं की यद्यपि भोगी हुई भी थी, तौ भी पृथ्वी उस में दूसरे की न भोगी हुई सी हुई, ॥

८—(क्योंकि) उसने यथोचित दण्ड देने से सब लोगों का मन हर लिया था, जैसे न अतिठण्ढी न अतितत्ती दक्षिण की पवन ने ॥

९—गुणों की अधिकता से उसने प्रजा को पिता में मन्द उत्साह करदिया, जैसे आम के फल ने मौल में ॥

१०—नीति जाननेवालों ने नए राजा को धर्म और अधर्म दिखलाए, उसमें पहलाही पक्ष हुआ दूसरा न हुआ (अर्थात् धर्मही ग्रहण किया गया अधर्म नहीं) ॥

११—पञ्चभूतों के गुण भी बड़ाई को पहुंचे, उस नए राजा में सब वस्तु नई सी हुई ॥

१२—जैसे हर्ष देने से चन्द्रमा, जैसे तपाने से तपन (सूर्य) ऐसे ही प्रजा रञ्जन से वह यथार्थ राजा था ॥

१३—कान तक फैले हुए उसके विशाल दो नेत्र निस्सन्देह थे, परन्तु (वह) आंखोंवाला तौ कर्म की सूक्ष्म विधि दिखानेवाले शास्त्र ही से हुआ ॥

---

९ जब तक फल नहीं आता मौलही प्यारा लगता है फिर जब फल आया तौ मौल में किसी का प्यार नहीं रहता ॥

१२ चद् धातु से चन्द्रमा शब्द बनाहै और चद् का अर्थ प्रसन्नता में होता है ॥

१४—लब्धप्रशमनस्वस्थम् अथैनं समुपस्थिता ।
पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा ॥

१५—निर्वृष्टलघुभिर्मेघैः मुक्तवर्त्मा सुदुःसहः ।
प्रतापस्तस्य भानोश्च युगपद् व्यानशे दिशः ॥

१६—वार्षिकं सञ्जहारेन्द्रः धनुर्जैत्रं रघुर्दधौ ।
प्रजार्थसाधने तौ हि पर्य्यायोद्यतकार्मुकौ ॥

१७—पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काशचामरः ।
ऋतुर्विडम्बयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम् ॥

१८—प्रसादसुमुखे तस्मिन् चन्द्रे च विशदप्रभे ।
तदा चक्षुष्मतां प्रीतिः आसीत् समरसा द्वयोः ॥

१९—हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु ।
विभूतयस्तदीयानां पर्य्यस्ता यशसामिव ॥

२०—इक्षुच्छायानिषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ॥

२१—प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः ।
रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मनः ॥

१४—निदान उसको, प्राप्त किए हुए (राज्य) की निधड़क रक्षा करते हुए को, कमल के चिह्नवाली शरद ऋतु आई, मानो दूसरी राजलक्ष्मी ॥

१५—बरसे हुए हलके बादलों का मार्ग छोड़ा हुआ उसका कठिन प्रताप और सूरज का एकही साथ दिशाओं में व्याप्त हुए ॥

१६—वर्षा का धनुष इन्द्र ने रक्खा जीत का रघु ने उठाया, प्रजाही के अर्थ साधने में वे दोनों बारी बारी से धनुषधारी हुए ॥

१७—कमल के छत्रवाली, खिले कास के चमरवाली, ऋतु ने उसकी होड़ की पर उसकी शोभा न पाई ॥

१८—उस प्रसन्न मुख में और खिली हुई उजालीवाले चन्द्रमा में दोनों में नेत्रधारियों की प्रीति उस समय समान रस लेनेवाली हुई ॥

१९—हंसपंक्तियों में तारों में और कमलवाले जलों में मानो उसके यशों की विभूति फैली ॥

२०—ईख की छाया में बैठी हुई खेत रखानेवालियों ने उस रक्षक के बालपन तक की कथावाले यशों को, गुणों से प्राप्त किए हुओं को, गाया ॥

२१—महाप्रतापी अगस्त्यके उदय से जल स्वच्छ हुआ, रघु के (उदय) से तिरस्कार की शंका मानकर वैरियोंका हृदय कँपा ॥

२२—मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः।
लीलाखेलमनुप्रापुः महोक्षास्तस्यविक्रमम् ॥
२३—प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः।
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्रुवुः ॥
२४—सरितः कुर्व्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्द्दमान्।
यात्रायै चोदयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत् ॥

२५—तस्मै सम्यग्घुतो वह्निः वाजिनीराजनाविधौ।
प्रदक्षिणार्च्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ ॥

२६—स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ॥

२७—अवाकिरन् वयोवृद्धाः तं लाजैः पौरयोषितः।
पृषतैर्म्मन्दरोद्धूतैः क्षीरोर्म्मय इवाच्युतम् ॥

२६—गुप्तमूलप्रत्यन्तः=गुप्तं स्वनिवासस्थानं प्रान्तदुर्गञ्च येन सः ॥
षड्विधं=मौल भृत्यः सुहृच्छ्रेणी द्विषदाटविकरबलम् ॥

२२–मदमाते ठाठवाले, नदियों के तट तोड़नेवाले, बड़े बैलों ने उसके खेल के पराक्रमों की होड़की ॥

२३–सप्तपर्ण के मदसुगन्धी फूलों से तिरस्कार होकर उस के हाथी ईर्षा सी करके मानो सात अङ्गों से बह उठे ॥

२४–नदियों को पांभ और मार्गों को सूखा करनेवाली शरद ने उसको मन के उत्साह से पहलेही यात्रा निमित्त प्रेरणा की ॥

२५–घोड़ा पूजने की विधि में अच्छे प्रकार हवन की हुई अग्नि ने दक्षिण ओर उठी हुई लोइ के मिस से मानो उसको हाथों से जय दी ॥

२६–उस रक्षा किये हुये रनवासों और गढ़ोंवाले ने पीछे वैरी न छोड़े हुये ने, अच्छे भाग्यवाले ने छः प्रकार की सेना लेकर दिग्विजय की इच्छा से प्रस्थान किया ॥

२७–उसको पुर की बूढ़ी स्त्रियों ने खीलों से छाया, जैसे विष्णु को क्षीर सागर की लहरों ने मन्दराचल से टक्कर खाई हुई छीटों से ॥

---

२५ दिग्विजय को जाने के समय घोड़े का पूजन राजा करता है ॥

२६ तात्पर्य यहहै कि कूच करने से पहिले उसने अपने महलों और गढ़ों की रक्षा का प्रबन्ध किया और पीछे वैरी न छोड़ा जो उपद्रव करता ॥

२८—स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनवर्हिषा।
अहिताननिलोद्धूतैः तर्ज्जयन्निव केतुभिः॥

२९—रजोभिः स्यन्दनोद्धूतैः गजैश्च घनसन्निभैः।
भुवस्तलमिव व्योम कुर्व्वन् व्योमेव भूतलम्॥

३०—प्रतापोऽग्रे ततः शब्दः परागस्तदनन्तरम्।
ययौ पश्चाद्रथादीति चतुस्कन्धेव सा चमूः॥
३१—मरुपृष्ठान्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः।
विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः

३२—स सेनां महतीं कर्षन् पूर्व्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः॥

३३—त्याजितैः फलमुत्खातैः भग्नैश्च बहुधा नृपैः।
तस्यासीदुल्वणो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः॥

३४—पौरस्त्यानेवमाक्रामन् तांस्तान् जनपदान् जयी।
प्राप तालीवनश्याममम् उपकण्ठं महोदधेः॥

२८—वह इन्द्र सरीखा पहले पूरब को गया, मानो पवन से फहराती हुई ध्वजाओं से वैरियों को ताड़ना देता हुआ, ॥

२९—रथों की उठाई हुई धूल से और बादलों सरीखे हाथियों से आकाश को भूमि के समान और भूमि को आकाश के समान करता हुआ ॥

३०—आगे तेज तिस पीछे शब्द तिससे पीछे धूल फिर रथ इत्यादि इस प्रकार वह सेना चतुरङ्ग सी चली ॥

३१—शक्तिमत्ता से उसने मरुभूमियों को (निर्जल धरती को) जलवती और नावों से उतरने योग्य नदियों को पांझ और वनों को निर्वृक्ष किया ॥

३२—बड़ी सेना को पूरब समुद्र की ओर चलती हुई को लिये जाते उसने शोभा पाई, जैसे भगीरथ ने महादेव की जटा से निकली हुई गंगाजी को (लिये जाते) ॥

३३—फल देकर बचेहुये और उखाड़े हुये और बहुत प्रकार तोड़े हुये राजाओं से उसका मार्ग विना रोक टोक हुआ, जैसे रूखों से हाथी का ॥

३४—इस प्रकार पूरब के उन उन देशों को दबाता हुआ वह जयशील (राजा) महासमुद्र के तट पर, ताल के वनों से श्याम रंगवाले पर, पहुंचा ॥

---

२९ धूल इतनी उड़ी कि आकाश तो धरती के समान दिखलाई दिया और हाथी इतने थे कि धरती बादलों से भरी हुई सी जानपड़ी ॥

३५—अनम्राणां समुद्धर्त्तुः तस्मात् सिन्धुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैः वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ॥

३६—वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
निचखान जयस्तम्भान् गङ्गास्रोतोऽन्तरेषु सः ॥

३७—आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।
फलैः संवर्द्धयामासुः उत्खातप्रतिरोपिताः ॥

३८—स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैः बद्धद्विरदसेतुभिः।
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ ॥

३९—स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्।
अंकुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः ॥
४०—प्रतिजग्राह कालिङ्गः तमस्त्रैर्गजसाधनः।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्व्वतः ॥

४१—द्विषां विषह्य काकुत्स्थः तत्र नाराचदुर्द्दिनम्।
सन्मङ्गलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम् ॥

३५—उस वैरियों के उखाड़नेवाले से सुह्मों ने वेत की वृत्ति (अर्थात् झुकना और थर्राना) स्वीकार करके अपने को बचाया, जैसे नदी के वेग से ॥

३६—उस नायक ने नाव में लड़नेवाले बङ्गदेशियों को बल से उखाड़ कर गङ्गा सोतों के टापुओं में जैत खम्भ गाड़े ॥

३७—उन उखड़ कर जमेहुओं ने, चरण कमलों तक झुके हुओं ने, रघु को धनों से (अथवा फलों से) प्रसन्न किया, जैसे धानों ने ॥

३८—कपिशा नदी को हाथियों के पुल बांधने वाली सेना समेत उतर कर वह उत्कल देशी राजाओं का मार्ग दिखाया हुआ कलिङ्ग देश की ओर गया ॥

३९—उसने महेन्द्र (पर्व्वत) के शिर पर तीक्ष्ण प्रताप जमाया, जैसे गम्भीर वेदी हाथीके मस्तकपर महावतने अंकुश ॥

४०—हाथी पर चढ़े हुए कलिङ्ग देशी राजा ने उसको अस्त्रों से लिया जैसे, शिलावर्षी पर्व्वत ने पंख काटने में उद्यत इन्द्र को ॥

४१—वहां वैरियों की बाणवर्षा सहकर काकुत्स्थ ने जय श्री पाई, मानों अच्छे मंगल स्नान किये हुए ने ॥

---

३५ सुह्म =एक जाति के लोग हैं ॥

४० हाथी पर चढ़े हुए कलिङ्गदेश के राजा को उपमा पर्व्वत से दी है ॥
अस्त्रों से लिया = सामना किया ॥

४२–ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचितापानभूमयः।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवञ्च पपुर्यशः॥

४३–गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्म्मविजयी नृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम्॥

४४–ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना।
अगस्त्याचरितामाशाम् अनाशास्यजयो ययौ॥

४५–स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना।
कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत्॥

४६–बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः।
मारीचोद्भ्रान्तहारीताः मलयाद्रेरुपत्यकाः॥

४७–ससञ्जुरश्वक्षुण्णानाम् एलानामुत्पतिष्णवः।
तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु फलरेणवः॥

४८–भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम्।
नास्रंसत करिणां ग्रैवं त्रिपदीच्छेदिनामपि॥

४२–वहां मदिरा गोष्ठी बनाकर योद्धाओं ने ताम्बूल के पत्तों से नारियल की मदिरा और वैरियों का यश पिया ॥

४३–उस धर्मविजयी राजाने पकड़ कर छोड़े हुए महेन्द्रनाथ की श्री लेली भूमि नहीं ॥

४४–तिस पीछे वह विना यत्न जय पानेवाला सुपारी के फले वृक्षों से घिरे हुए समुद्र तटही तट अगस्त्य की खूंदी हुई दिशा को गया ॥

४५–उसने गजमद की सुगन्धिवाले सेना सम्भोग से कावेरी को मानों समुद्र को शंका के योग्य कर दिया ॥

४६–उस मार्ग काटेहुए विजयीकी सेनाने हरयलों से भरे हुए मिरच के वृक्षों वाली मलयागिरि की तराई में वसेरा लिया ॥

४७–घोड़ों की खूंदी इलायचियों की उड़ती हुई रज मत्त हाथियों की कनपटियों में, समान सुगन्धिवालियों में, लगी ॥

४८–चन्दन के वृक्षों में सर्प लिपटने की घाटियों में डाले हुए गले के रस्से पैर की संकल तोड़नेवाले हाथियों के भी ढीले न हुए ॥

---

४४ अगस्त्य की दिशा = दक्षिण ॥

४५ मद चूते हुए हाथी उसकी सेना में इतने थे कि उनके पार उतर ने से कावेरी का जल सुगन्धित होगया इससे समुद्र को जो नदियों का पति है शंकासी हुई कि यह नदी कहीं सम्भोग कर आई है ॥

४७ समान सुगन्धिवाली अर्थात् अपनी सी सुगन्धिवाली ॥

४८ तात्पर्य यह है कि चन्दन के वृक्ष वहां इतने बड़े हैं कि उनमें जो सांप लपटने के घट्टे पड़ गए हैं उन घट्टों में डाले हुए रस्से बड़े हाथियों से भी न सरकाए गए ॥

४९—दिशि मन्दायते तेजः दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे॥

५०—ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारंमहोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम्॥

५१—स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ॥

५२—असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत्॥

५३—तस्यानीकैर्विसर्पद्भिः अपरान्तजयोद्यतैः।
रामास्त्रोत्सारितोप्यासीत् सह्यलग्न इवार्णवः॥

५४—भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम्।
अलकेषु चमूरेणुः चूर्णप्रतिनिधीकृतः॥

४९—दक्षिण दिशा में सूर्य का तेज भी मन्द होता है उसी में रघु का प्रताप पाण्डुदेशवालों से न सहा गया॥

५०—उन्होंने विनती करके ताम्रपर्णी के संगमवाले महा समुद्र के बड़े मोती उस को दिये, मानो अपना इकट्ठा किया हुआ यश॥

५१—तटपर चन्दन लगे हुये मलय और दर्दुर दो पहाड़ों को उस दिशा के दो स्तनों की नाईं मन माना भोग कर,॥

५२—वह महाप्रतापी समुद्र के दूर छोड़े हुए सह्य (पर्वत) को उल्लंघन कर गया, मानो कपड़ा छोड़े हुए पृथ्वी के नितम्ब को॥

५३—पश्चिम की विजय को चलती हुई उसकी सेना से परशुराम के अस्त्र का हटाया हुआ समुद्र भी सह्य से मिला हुआ सा हो गया॥

५४—डरसे भूषण त्यागी हुई केरल (देश) की स्त्रियों के अलकों में उसने कुमकुम की ठौर सेनाकी रज करदी॥

---

५१ कवि ने मलय औ दर्दुरपहाड़ दक्षिण दिशा के दो स्तन माने है उनके तटपर चन्दन के वृक्षहैं सोई मानों स्तनों के तटपर चन्दन का अंगराग हैं॥

५३ समुद्र और पहाड़के बीचमें जो सेना चलती थी वह भी समुद्र समान दीखी॥

५५—मुरलामारुतोद्धूतम् अगमत् कैतकं रजः।
तद्योधवारबाणानाम् अयत्नपटवासताम्॥

५६—अभ्यभूयतवाहानां चरतां गात्रशिञ्जितैः।
वर्म्मभिः पवनोद्धूतैः राजतालीवनध्वनिः॥

५७—खर्ज्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु।
कटेषु करिणां पेतुः पुन्नागेभ्यः शिलीमुखाः॥

५८—अवकाशं किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ।
अपरान्तमहीपाल—व्याजेन रघवे करम्॥
५९ मत्तेभ—रदनोत्कीर्ण—व्यक्त—विक्रम—लक्षणम्।
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैः जयस्तम्भं चकार सः॥
६०—पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
इन्द्रियाख्यानिव रिपून् तत्त्वज्ञानेन संयमी॥

६१—यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाब्जानाम् अकालजलदोदयः॥

५५—मुरला (नदी) की पवन से उठा हुआ केतकी का पराग विना यत्नही उस के योधाओं के कवचों को सुगन्ध का चूर्ण बन गया ॥

५६—चलते हुए घोड़ों के शरीर पर बजते हुए पाखरों ने पवन की उठाई हुई राजताली वन की ध्वनि को तिरस्कार किया ॥

५७—खजूर की पींड़ों में बंधे हुए हाथियों की मद चूती हुई सुगन्धित कनपटियों में भौंरे नागकेसरों से आए ॥

५८-कहते हैं कि समुद्र ने परशुराम को मांगनेपर जगह दी थी, रघु को पश्चिम देशी राजाओं के मिस से भेट दी ॥

५९—वहां उसने मत्त हाथियों के दांतों से खुदे हुए पराक्रमों के चिह्नवाला त्रिकूट ही ऊंचा जैतखम्भ बनाया ॥

६०—फिर पारसीकों को जीतने के लिये स्थल मार्ग से गया, जैसे इन्द्री नाम वैरियों (को जीतने) के लिये योगी तत्त्व ज्ञान (मार्ग) से ॥

६१—यवनियों के मुख कमलों का मद्यमद उसने न सहा जैसे कुसमय के मेघ उठान ने सवेरे की कमल सम्बन्धी (शरद की) घाम ॥

---

५९ जैत खम्भ में गाड़नेवाले के पराक्रम लिखेजाते हैं त्रिकूट पर्वत में उसके हाथियों के दांतों के गड्ढेही पराक्रम का चिह्न थे ॥

६१ जैसे शरदऋतु में सवेरे की धूपरूपी शोभा को बादल बिगाड़ता है ऐसे रघु ने यवनियों के मुख की मद्यमद शोभा अर्थात् सुहाग बिगाड़ दिया ॥

६२–संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत्॥

६३–भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिःश्मश्रुलैर्महीम्।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव॥

६४–अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः।
प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम्॥

६५–विनयन्ते स्म तद्योधाः मधुभिर्विजयश्रमम्।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु॥

६६–ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम्।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यान् उद्धरिष्यन् रसानिव॥

६७–विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धान् लग्नकुंकुमकेसरान्॥

---

६५ अजिनरत्नं = श्रेष्ठ चर्म॥

६२—उसका बड़ा युद्ध पश्चिमदेशी घुड़चढ़ों के साथ धनुष की टंकार से दोनों ओर के योद्धा जतानेवाली धूलमें हुआ॥

६३—भालों से कटे हुए उन के डाढ़ीवाले शिरों से उस ने पृथ्वी ढक दी, मानो मक्खियों के भरे हुए मौहार के छत्तों से॥

६४—रहे सहे पगड़ी उतार कर उस की शरण गए, महात्माओं का कोप विनती से ही निवारण होता है॥

६५—उस के योधाओं ने विजय की थकावट अच्छे चमड़े बिछी हुई दाखों से घिरी हुई भूमि में मदिरा से मिटाई॥

६६—फिर जैसे सूरज जलों को किरनों से ऐसे रघु उत्तरदेशियों को बाणों से लेता हुआ कुबेर की दिशा उत्तर को चला॥

६७—सिन्धु तीर की लोटन से उस के घोड़ों ने मार्ग की थकावट मिटा कर केसर लगे हुए कंधे झाड़े॥

---

६२ युद्ध की धूल का अंधेरा ऐसा था कि उसमें दिखलाई कुछ न देता था केवल धनुष की टंकार से दोनों ओर के योद्धा जाने जाते थे॥

६५ उस देश में दाख और मेंढे अच्छे होते हैं रघु के योद्धाओं ने मेंढों की खालबिछाई और दाख की मदिरा पिई॥

६७ केसर उस सूत को कहते हैं जो फूलों के बीच में निकलता है॥

६८—तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्॥

६९—काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्य्यमनीश्वराः।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्द्धमानताः॥

७०—तेषां सदश्वभूयिष्ठाः तुङ्गा द्रविणराशयः।
उपदाविविशुः शश्वत् नोत्सेकाः कोशलेश्वरम्॥

७१—ततो गौरीगुरुं शैलम् आरुरोहाश्वसाधनः।
वर्द्धयन्निव तत्कूटान् उद्धूतै र्धातुरेणुभिः॥

७२—शशंस तुल्यसत्त्वानां सैन्यघोषेऽप्यसम्भ्रमम्।
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्यावलोकितम्॥

७३—भूर्जेषु मर्म्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गंगाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे॥

७४—विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः।
दृषदो वासितोत्संगा निषण्णमृगनाभिभिः॥

६८—वहां रघु का पराक्रम पतियों में शूरता दिखला कर हूण लोगों की स्त्रियों के कपोलों में लाली दिखलाने वाला हुआ ॥

६९—काम्बोज लोग (काबुली) लड़ाई में उसका तेज सहने को असमर्थ होकर गज बन्धनों से रगड़े हुए अखरोटों के साथ ही झुके ॥

७०—उन की सोने के ऊंचे ढेरोंवाली भेट, अच्छे घोड़ों से अधिकता पाई हुई, बारम्बार कोशलेश को प्राप्त हुई, न कि घमण्ड ॥

७१—तिस पीछे घोड़े का चढ़नेवाला (रघु) हिमालय पर चढ़ गया, मानो उस की चोटियों को उड़ी हुई धातु रेणु से बढ़ाता हुआ ॥

७२—गुफाओं में सोनेवाले उसी के समान बलवाले सिंहों के शिर उठा कर देखने ने सेना के कोलाहल में भी निडरता जताई ॥

७३—भोजपत्रों में मर मर शब्द करनेवाली, बांसों में ध्वनि करानेवाली, गंगाजल के कणोंवाली, पवनों ने मार्ग में उस को सेवन किया ॥

७४—योधाओं ने देवकेसर की छाया में हरिणों की नाभि से सुगन्धित चटानों पर बैठ कर विश्राम लिया ॥

---

६८ अर्थात् हूण जाति के क्षत्रिय मारे गए इससे उनकी स्त्रियोंने रोरोकर अपने गाल लाल किये ॥

७० भेंटों के मिलने से रघु को घमण्ड न हुआ ॥

७२ यह हिमालय के सिंहों की बड़ाई है ॥

७५–सरलासक्तमातङ्ग–ग्रैवेयस्फुरितत्विषः।
आसन्नोषधयो नेतुः नक्तमस्नेहदीपिकाः॥

७६–तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः॥

७७–तत्र जन्यं रघोर्घोरं पार्वतीयैर्गणैरभूत्।
नाराचक्षेपणीयाश्म–निष्पेषोत्पतितानलम्॥

७८–शरैरुत्सवसङ्केतान् स कृत्वा विरतोत्सवान्।
जयोदाहरणं बाह्वोः गापयामास किन्नरान्॥

७९–परस्परेण विज्ञातः तेषूपायनपाणिषु।
राज्ञा हिमवतः सारः राज्ञः सारो हिमाद्रिणा॥

८०–तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः।
पौलस्त्यतुलितस्याद्रेः आदधान इव ह्रियम्॥

७५—सरला के वृक्षों से बंधे हुए हाथियों के गले की वेलों में चमकती हुई बूटियां रात में उस नायक की विना तेल की दीपिका बनी ॥

७६—उस के छोड़े हुए पड़ावों में किरातों को हाथियों की उंचाई गलबन्धनों से छिलीहुई छालवाले देवदारुओं ने जताई ॥

७७—वहां रघु का घोर युद्ध बाणों और गोफन के पत्थरों की रगड़ से उठीहुई अग्निवाला पहाड़ी लोगों के साथ हुआ ॥

७८—उसने उत्सवसंकेतों को बाणों से निरुत्साह करके किन्नरों से (अपनी) भुजाओं की जयों का उदाहरण गवाया ॥

७९—उनके हाथों में भेट होने पर राजा ने हिमवत का सार (धन) और हिमवत ने राजा का सार (बल) परस्पर जाना ॥

८०—वहां अटल यश की राशि स्थापन करके वह रावण के उठाए हुए पहाड़ को लज्जा उत्पन्न करता हुआ सा उतरा ॥

---

७६ जङ्गली लोगों ने हाथियों की उंचाई इससे जानी कि देवदारु के पेड़ों में उनके गलबन्धनोंके चिह्न देखे ॥

७८ उत्सवसंकेत एक जाति के पहाड़ी मनुष्य थे ॥

८० अर्थात् कैलाश को छोड़ दिया क्योंकि पहले उसको रावण जीत चुकाथा ॥

८१—चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सहकालागुरुद्रुमैः ॥

८२—न प्रसेहे स रुद्धार्कम् अधारावर्षदुर्द्दिनम्।
रथवर्त्मरजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम् ॥

८३—तमीशः कामरूपाणाम् अत्याखण्डलविक्रमम्।
भेजे भिन्नकटैर्नागैः अन्यानुपरुरोध यैः ॥

८४—कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम्।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च्च पादयोः ॥

८५—इति जित्वा दिशो जिष्णुः न्यवर्त्तत रथोद्धतम्।
रजो विश्रामयन् राज्ञां छत्रशून्येषु मौलिषु ॥

८६—स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्व्वस्वदक्षिणम्।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥

८१—उसके लोहित्या पार उतरने पर प्राग्ज्योतिष (देश) का राजा कालागुरु के वृक्षों के साथ, उसके हाथी बंधने के स्तम्भ बने हुओं के साथ, थर थराया ॥

८२—वह उसके रथ मार्ग की धूल को, सूरज रोकती हुई को वर्षा के विनाही दुर्दिन करने वाली को, भी न सह सका फिर सेना को क्योंकर ॥

८३—उस अति अखण्ड पराक्रमी को कामरूप देशों का राजा मद चूते हुए हाथी देकर मिला जिनसे औरों को जीता था ॥

८४—कामरूपेश्वर ने उसके पैरों की छाया (कान्ति) को सोने की पीढ़ी के अधिदेवता को, रत्नरूपी फूल अर्पण करके पूजा ॥

८५—इस प्रकार दिशाओं को जीत कर विनाछत्रवाले राजाओं के किरीटों में रथ की उठाई हुई धूल भरता हुआ वह जयशील लौटा ॥

८६—उसने सर्वस्वदक्षिणावाला विश्वजित नाम यज्ञ किया, सत्पुरुषों का सञ्चय देने ही के निमित्त होता है, जैसे बादलों का ॥

---

८४ जिस पीढ़ी पर पांव रख कर रघु अपने सिंहासन में बैठता था उसका देवता उसके पैरों की छाया मानी है ॥

८७—सत्रान्ते सचिवसखः पुरस्क्रियाभिः।
गुर्वीभिः शमितपराजयव्यलीकान्।
काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान्।
राजन्यान् स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने॥
८८—ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं।
सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम्।
प्रस्थानप्रणतिभिरंगुलीषु चक्रुः।
मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम्॥

इति चतुर्थः सर्गः

८७—यज्ञ के अन्त में मन्त्रियों के सखा काकुत्स्थ ने बड़े सन्मान से पराजय का दुःख मिटाए हुए राजाओं को, बहुत दिनके छोड़े रनवासों में अभिलाषा रखते हुओं को अपने अपने नगर जाने की आज्ञा दी॥

८८—उन्हों ने चक्रवर्ती के दोनों चरणों को, ध्वजा और वज्र और छत्र की रेखा चिह्नवालों को, प्रसन्नता में प्राप्त होने वालों को, चलते समय की दण्डवत् करके शिरकी माला से गिरे हुए सुगन्धित परागों से अंगुलियों में श्वेत किया॥

चौथा सर्ग समाप्त हुवा॥

पञ्चमः सर्गः

इन्दुमतीस्वयंवरः

१—तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं ।
निःशेषविश्राणितकोषजातम् ।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी ।
कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ॥
२—स मृण्मये वीतहिरण्मयत्वात् ।
पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः ।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः ।
प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः ॥
३—तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञः ।
तपोधनं मानधनाग्रयायी ।
विशाम्पतिर्विष्टरभाजमारात् ।
कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच ॥
४—अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां ।
कुशाग्रबुद्धे ! कुशली गुरुस्ते ।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं ।
लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ॥

पांचवा सर्ग

इन्दुमती का स्वयंवर

१—विश्वजित यज्ञ में समस्त धन देकर बैठे हुए उस राजा के पास विद्या पढ़ा हुआ गुरुदक्षिणा का अर्थी कौत्स (नाम) वरतन्तु का शिष्य पहुंचा ॥

२—सोने का पात्र न होनेके कारण मिट्टी के पात्र में अर्घ रख कर वह अनमोल स्वभाववाला, यश से प्रकाशमान्, अतिथियों का सत्कारी, उस वेदपाठी ऋतिथि को उठकर मिला ॥

३—उस तप के धनी को, आसन पर समीप बैठे हुए को, विधिपूर्वक पूजन करके विधिवेत्ता ने, मान के धनियों में प्रधान नरपति ने, कार्य के ज्ञानी ने, हाथ जोड़े हुए ने, यह कहा, ॥

४—"हे कुशा की अनी समान बुद्धिवाले! तुम्हारा गुरु, मन्त्रकार ऋषियों का मुखिया, कुशल तो है जिस से तुमने सम्पूर्ण ज्ञान पाया है, मानो लोक ने तत्ती किरण वाले (सूरज) से चैतन्यता" ॥

५—कायेन वाचा मनसापि शश्वत्।
यत् सम्भृतं वासवधैर्य्यलोपि।
आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः।
कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत्॥
६—आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः।
संवर्द्धितानां सुतनिर्विशेषम्।
कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः।
श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम्॥
७—क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वात्।
अभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु।
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला।
कच्चिन्मृगीणामनघाप्रसूतिः॥
८—निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेकः।
येभ्यो निवापाञ्जलयः पितॄणाम्।
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि।
शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्॥

५—"काया करके मन करके और वाणी करके भी निरन्तर सञ्चय किया हुआ जो ऋषि का तीन प्रकार का तप इन्द्रके धीर्य्य का तोड़नेवालाहै वह कहीं विघ्नोंसे नाश को तो नहीं पहुंचा" ॥

६—"थांवले इत्यादि यत्नों से सन्तान की नाईं पाले हुओं को, थकावट मेटनेवालों को, तुम्हारे आश्रम के वृक्षों को, कहीं पवन इत्यादि विघ्नकारी तो नहीं हैं" ॥

७—"क्रिया में काम आनेवाली कुशाओं में भी चरने से प्यार के कारण मुनियों की न रोकी हुई, उन्हीं की गोदरूपी शय्या में नाभि का नाल डालनेवाली, हरणियों की सन्तान सुखी तो है" ॥

८—"जिनसे नित्य स्नान कियाजाता है, जिनसे पितृयोंका तर्पण होताहै, वे तुम्हारे तीर्थ जलस्थान, उञ्छ के छठे भाग से अङ्कित तटोंवाले, कुशल तो हैं" ॥

---

५ विघ्नों से अर्थात् इन्द्र के किए हुए उपद्रवों से ॥

८ मुनियों की रीति थी कि सामक मकड़ा इत्यादि अन्न ऊंछ लाते थे और उसका छठा भाग राजा के लिये ताल अथवा नदी के तट पर रख आते थे ॥

९—नीवारपाकादि कडङ्गरीयैः।
आमृश्यते जानपदैर्न कच्चित्।
कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं।
वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः॥
१०—अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं।
सम्यग्विनीयानुमतो विहाय।
कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं।
सर्व्वोपकारक्षममाश्रमं ते॥
११—तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं।
मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे।
अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा।
प्राप्तोऽसि सम्भावयितुं वनान्माम्॥
१२—इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य।
रघोरुदारामपि गां निशम्य।
स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशः।
तमित्यवोचद् वरतन्तुशिष्यः॥
१३—सर्व्वत्र नो वार्त्तमवेहि राजन्!
नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्।
सूर्य्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः।
कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा॥
१४—भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता ते।
पूर्व्वान् महाभाग! तयातिशेषे।
व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतः।
त्वामर्थिभावादिति मे विषादः॥

९—"समयपर आए हुए अतिथियोंको भाग में मिलनेवाले, वनमें उपजनेवाले, शरीर की स्थिति के साधन, तुम्हारे पक्के धान इत्यादि कहीं गांवों के भुसखानेवाले पशुओं ने खा तो नहीं लिये" ॥

१०—"अथवा तुम भली भांति पढ़ाए हुए को क्या घर जाने की आज्ञा प्रसन्न ऋषि ने दीहै, क्योंकि तुम्हारा यह समय सर्वोपकारी दूसरे आश्रम (गृहस्थ) में जानेकाहै ॥

११—"तुम पूज्य के आनेही से मेरा मन तृप्त नहीं है आज्ञा पाने का भी अभिलाषी है ॥ मुझे कृतार्थ करने को तुम वन से गुरु के कहने से आए हो अथवा अपने ही मन से ॥

१२—अर्घपात्र से निर्धनता अनुमान होते हुए भी रघुका यह उदार वचन सुनकर अपनी कामना में दुर्बलआशावाला वरतन्तु का चेला उसको इस प्रकार बोला ॥

१३—"हे राजन्! हमारी कुशल सब भांति जानो तुम्हारे नाथ होते हुए प्रजाकी अकुशल कहां है; सूर्य्य के चमकने में लोकों की दृष्टि रोकनेवाली अन्धेरी क्योंकर समर्थ होसक्ती है" ॥

१४—"पूज्यों में भक्ति तुम्हारे कुल की रीति है तिस में हे महाभाग ! तुम अगलों से बढ़े हुए हो-मैं तुम्हारे पास याचक भाव से कुसमय आया यह मुझे खेद है" ॥

१५–शरीरमात्रेण नरेन्द्र! तिष्ठन्।
आभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः।
स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः॥

१६–स्थाने भवानेकनराधिपः सन्।
अकिञ्चनत्वं मखजं व्यनक्ति।
पर्य्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः।
कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः॥

१७–तदन्यतस्तावदनन्यकार्य्यः।
गुर्वर्थमाहर्त्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तुते निर्गलिताम्बुगर्भं।
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि॥

१८–एतावदुक्त्वा प्रतियातु कामं।
शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य।
किं वस्तु विद्वन्! गुरवे प्रदेयं।
त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त॥

१९–ततो यथावद्विहिताध्वराय।
तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी।
विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे॥

१५—"हे राजन्! तुम सत्पात्रोंमें धन उठाकर केवल शरीर ही से सुशोभित हो,जैसे वनवासियों (अथवा मुनियों) का फल तोड़ा हुआ शाखा मात्र बचा हुआ धान" ॥

१६—"तुम चक्रवर्त्ती होकर यज्ञ से उत्पन्न होनेवाली निर्धनता प्रकट करते हो यह योग्य है, देवताओं के बारी बारी से पिए हुए चन्द्रमा की कला का घटाव अधिक प्रशंसा के योग्य होता है बढ़ाव से" ॥

१७—"इसलिए दूसरा प्रयोजन न रखनेवाला मैं अब गुरु के लिये धन लानेकी याच्ञा और किसी से करूंगा,तुम्हारा कल्याण हो, शरद के रीते बादल को पपीहा भी नहीं जांचता है" ॥

१८—इस प्रकार कहकर महर्षि के उस चलतेहुए चेलेको रोककर राजा ने यह पूछा "हे विद्वन्! गुरुके निमित्त तुमको क्या वस्तु और कितनी देनी है" ॥

१९—तब उस यथोचित यज्ञ अनुष्ठान करनेवाले को, गर्वके आवेश से रहित को, वर्ण आश्रम के गुरु को, उस विचक्षण ब्रह्मचारी ने प्रयोजन कहा ॥

---

१६ अर्थात् कृष्णपक्ष में चन्द्रमा अधिक शोभायमान होताहै शुक्लपक्ष से ॥

२०–समाप्तविद्येन मया महर्षिः।
विज्ञापितोऽभूद् गुरुदक्षिणायै।
स मे चिरायास्खलितोपचारां।
तां भक्तिमेवागणयत् पुरस्तात्॥

२१–निर्बन्धसञ्जातरुषार्थकार्श्यम्।
अचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्तः।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे।
कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति॥

२२–सोऽहंसपर्य्याविधिभाजनेन।
मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम्।
अभ्युत्सहे सम्प्रति नोपरोद्धुम्।
अल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्क्रयस्य॥

२३–इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिः।
आवेदितो वेदविदां वरेण।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं।
जगाद भूयो जगदेकनाथः॥

२४–गुर्व्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा।
रघोः सकाशादनवाप्य कामम्।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे।
मा भूत् परीवादनवावतारः॥

२५–स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये।
वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्!।
यावद् यते साधयितुं त्वदर्थम्॥

२०—" मुझ विद्या समाप्त किए हुए ने महर्षि को गुरुदक्षिणा के लिये पूछा था, उन्होंने पहले मेरी वह बहुत काल की निरन्तर भक्तिही दक्षिणा गिनी" ॥

२१—"(फिर) बार बार पूछने से उपजे हुए क्रोधवाले गुरु ने कंगाली न सोच कर मुझ को कहा 'विद्याओं की गिनती के अनुसार मेरे निमित्त धन के चौदह करोड़ लेआ'" ॥

२२—"सो अब तुमको (इस) अर्घपात्र से नाम मात्र रहा हुआ राजा जानकर मैं विद्या के मोल की अधिकता के कारण कुछ कहने को उत्साह नहीं रखता हूं" ॥

२३—इस भांति वेदजाननेवालों में श्रेष्ठ ब्राह्मण का कहा हुआ, चन्द्रमा की सी कान्तिवाला, पाप से हटी हुई इन्द्रियों की वृत्तिवाला, जगत् का एक स्वामी, उसको फिर बोला ॥

२४—"' गुरुदक्षिणा का अर्थी वेद का पारंगत रघु के पास से कामना पूरी न होकर और दाता के पास गया' यह निन्दा का नया अवतार मेरे लिये मत हो" ॥

२५—"सो हे पूज्य ! तुम मेरे अच्छे पवित्र अग्निहोत्र स्थान में चौथी अग्नि की नाईं वसकर दो तीन दिन सहने को योग्य हो तबतक मैं तुम्हारे अर्थ की सिद्धि का उपाय करता हूं ॥

२६–तथेति तस्यावितथं प्रतीतः ।
प्रत्यग्रहीत् सङ्गरमग्रजन्मा ।
गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य ।
निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात् ॥

२७–वशिष्ठमन्त्रोक्षणजात्प्रभावात् ।
उदन्वदाकाशमहीधरेषु ।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य ।
गतिर्विजघ्ने न हि तद्रथस्य ॥

२८–अथाधिशिष्ये प्रयतः प्रदोषे ।
रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् ।
सामन्तसम्भावनयैव धीरः ।
कैलासनाथं तरसा जिगीषुः ॥

२९–प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै ।
सविस्मयाः कोषगृहे नियुक्ताः ।
हिरण्मयींकोषगृहस्य मध्ये ।
वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः ॥

३०–तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं ।
लब्धं कुबेरादभियास्यमानात् ।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव ।
पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम् ॥

२६—"ऐसाही हो" यह कहकर प्रसन्न ब्राह्मण ने उस की अमोघ प्रतिज्ञा ग्रहण की, रघु ने भी पृथ्वी निर्धन देख कर कुबेर से धन लाने की इच्छा की ॥

२७—वसिष्ठ के मन्त्र का जल छिड़कने के प्रभाव से उसके रथ की गति समुद्र और आकाश और पर्वत में रुकने वाली न थी, जैसे पवन के सखा बादल की ॥

२८—फिर राजसम्भावनाही से कुबेर को बल करके जीतने का इच्छावान् प्रस्थान कियाहुआ, धीर रघु सांझ को हथियारों से सजे हुए रथ में सोया ॥

२९—उस प्रस्थान किए हुए को प्रातःकाल अचम्भा करते हुए कोठारियों ने कोठार के मध्य में आकाश से सोने की वर्षा का होना सुनाया ॥

३०—राजा ने वह चमकती हुई सोने की राशि, चढ़ाई किए हुए कुबेर से प्राप्त की हुई, सबही कौत्स के निमित्त देदी, मानो वज्र से काटा हुआ सुमेरु का टुकड़ा ॥

---

२६ अमोघ उस प्रतिज्ञा को कहते हैं जो निष्फल न जाय ॥

३१—जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ।
द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी।
नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च॥
३२—अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं।
प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः।
स्पृशन् करेणानतपूर्व्वकायं।
संप्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः॥
३३—किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूः।
वृत्ते स्थितस्याधिपतेःप्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावः।
मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा॥
३४—आशास्यमन्यत् पुनरुक्तभूतं।
श्रेयांसि सर्व्वाण्यधिजग्मुषस्ते।
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं।
भवन्तमीड्यं भवतः पितेव।
३५—इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा।
राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम्।
राजापि लेभे सुतमाशु तस्मात्।
आलोकमर्कादिव जीवलोकः॥

३१—अयोध्यावासियों को वे दोनों ही सराहने योग्य हुए, गुरु की दक्षिणा से अधिक न चाहनेवाला भिक्षुक और मांगनेवाले के मनोरथ से अधिक देनेवाला राजा॥

३२—सैकड़ों ऊंटों और खच्चरों पर लादने योग्य धन देनेवाले प्रजानाथ को, अगला अंग झुकाए हुए को, प्रसन्न मन महर्षि ने, चलते हुए कौत्स ने, हाथ से छूकर वचन कहा॥

३३—"इस में क्या आश्चर्य है जो धर्मशील राजा की भूमि कामना पूरी करनेवाली हो तुम्हारा प्रभाव आश्चर्य के योग्य है जिससे आकाश भी मनमाना दुहा गया"॥

३४—"तुमको सब श्रेष्ठ वस्तु प्राप्त हैं तुम्हारे लिये और कुछ आशीर्वाद देना पुनरुक्त (व्यर्थ) है अपने से गुणोंवाला पुत्र तुम को मिले जैसे तुम्हारे पिता को तुम श्रेष्ठ मिले"॥

३५—इस प्रकार राजा को आशीर्वाद देकर ब्राह्मण गुरु के पास पहुँचा राजा ने भी उस से शीघ्र ही पुत्र पाया। जैसे प्राणियों ने सूर्य से प्रकाश॥

---

३४ जितनी अच्छी वस्तु होती हैं रघुको सब प्राप्त थीं इसलिये ब्राह्मण कहता है कि तुमको और कुछ आशीर्वाद नहीं चाहिये पुत्रजन्म का आशीर्वाद लो॥

३६–ब्राह्मे मुहूर्त्ते किल तस्य देवी।
कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना
तमात्मजन्मानमजं चकार॥

३७–रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्य्यं।
तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात् स्वाद् बिभिदे कुमारः।
प्रवर्त्तितो दीप इव प्रदीपात्॥

३८–उपात्तविद्यं विधिवद् गुरुभ्यः।
तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम्।
श्रीः साभिलाषापि गुरोरनुज्ञां।
धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष॥

३९–अथेश्वरेण क्रथकौशिकानां।
स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः।
आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन।
भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः॥

४०–तं श्लाघ्यसम्बन्धमसौ विचिन्त्य।
दारक्रियायोग्यदशञ्च पुत्रम्।
प्रस्थापयामास ससैन्यमेनम्।
ऋद्धां विदर्भाधिपराजधानीम्॥

---

३७ कारणात्=जनकात्॥

३६–कहते हैं कि ब्राह्म (अभिजित्) मुहूर्त्त में उसकी रानी ने स्वामिकार्त्तिक के समान बेटा जना इसलिये पिता ने ब्रह्माही के नाम से उस पुत्र को अज नाम किया॥

३७–वही रूप वही बल वही पराक्रम वही स्वाभाविक उदारता वह कुमार अपने पिता से न्यूनाधिक न हुआ, जैसे दीपक से उत्पन्न हुआ दीपक॥

३८–उस गुरुओं से विधिपूर्वक विद्या सीखे हुये को, यौवन आने से अधिक कान्तिमान् को, चाहती हुई भी लक्ष्मी ने राजा की आज्ञा माँगी, जैसे धीरा कन्या ने बाप की॥

३९–विदर्भदेशों के स्वामी भोज ने, बहन इन्दुमती के स्वयंवर निमित्त कुमार को बुलाने के अभिलाषी ने, अच्छा दूत रघु के पास भेजा॥

४०–उस सम्बन्ध को बड़ाई के योग्य और पुत्र को विवाह के योग्य जानकर उस ने उस [पुत्र] को सेना समेत विदर्भनाथ की ऋद्धियोंवाली राजधानी की ओर भेजा॥

---

३८ तात्पर्य यहहै कि जैसे चतुर बेटी अपने बापकी आज्ञा मनमाने पति के लिये चाहतीहै ऐसे अब राजलक्ष्मी ने चाहा कि अज को रघु युवराज करे॥

४१–तस्योपकार्य्यारचितोपकारा।
वन्येतरा जानपदोपदाभिः।
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोः।
बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः॥

४२–स नर्मदारोधसि शीकरार्द्रैः।
मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा।
क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम्॥

४३–अथोपरिष्टाद् भ्रमरैर्भ्रमद्भिः।
प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः।
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः।
वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज॥

४४–निःशेषविक्षालितधातुनापि।
वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु।
नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्।
दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन॥

४५–संसारविक्षेपलघुक्रियेण।
हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम्।
बभौ स भिन्दन् बृहतस्तरङ्गान्।
वार्य्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः॥

४१–उस राजकुमार के तम्बू पड़ने के स्थान, सेज इत्यादि से सजे हुए, मार्ग में प्रजा की भेंटों से नगर के विहार उद्यानों के समान होगए ॥

४२–उस मार्गपार किए हुए ने शीतल पवनसे हिलते हुए नक्तमाल के वृक्षोंवाले नर्म्मदाके तट पर थकीहुई सेना को रजसे धूसरी ध्वजावाली को विश्राम दिया ॥

४३–पहले ऊपर गूंजते हुए भौंरों से पानी में प्रवेश किया हुआ अनुमान होनेवाला, मद धुलजाने से सुन्दर उजली कनपटीवाला, वनका हाथी नदी से निकला ॥

४४–अत्यन्त धुलीहुई धातुवाले, नीली लम्बी लकीरों से कबरे, पत्थरों की रगड़ से भोंतले, दांतों के जोड़े से ऋक्षवान् (पर्वत) के तटों में की हुई वप्रक्रीड़ा जताता हुआ ॥

४५–फैलने और सुकड़नेवाली सूंड़ से वह बड़ी तरङ्गों को शब्द सहित तोड़ता हुआ शोभायमान दीखा, मानो गज बांधने की अर्गला को तोड़ने में प्रवृत्त ॥

---

४१ मार्ग में भेंट इतनी आई कि वन के पड़ाव भी नगर के बगीचों के समान होगये ॥

४४ उस हाथी के दांतों से जाना जाता था कि इसने ऋक्षवान् पर्वत उखाड़ने का खेल कियाहै ॥

४६—शैलोपमः शैवलमञ्जरीणां।
जालानि कर्षन्नुरसा स पश्चात्।
पूर्व्वं तदुत्पीडितवारिराशिः।
सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प॥

४७—तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योः।
जलावगाहक्षणमात्रशान्ता।
वन्येतरानेकपदर्शनेन।
पुनर्दिदीपे मददुर्दिनश्रीः॥

४८—सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहम्।
असह्यमाघ्राय मदं तदीयम्।
विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः।
सेनागजेन्द्रा विमुखा बभूवुः॥

४९—सच्छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं।
भग्नाक्षपर्य्यस्तरथं क्षणेन।
रामापरित्राणविहस्तयोधं।
सेनानिवेशं तुमुलं चकार॥

५०—तमापतन्तं नृपतेरवध्यः।
वन्यः करीति श्रुतवान् कुमारः।
निवर्त्तयिष्यन् विशिखेन कुम्भे।
जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः॥

५१—स विद्धमात्रः किल नागरूपम्।
उत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्टः।
स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्त्ति।
कान्तं वपुर्व्योमचरं प्रपेदे॥

४६–वह पहाड़ की उपमावाला शिवाल की बेलों के ढेर को छाती से खैंचता हुआ तट पर पीछे पहुंचा उसी के हिलाए हुए जल का नदी का प्रवाह पहले ॥

४७–उस अकेले हाथी की कनपटियों में मद वर्षा की शोभा जलके झकोरों से क्षणमात्र शान्त होगई थी पालतू हाथियों के देखने से फिर उमगी ॥

४८–उसके असह्य मद को, सप्तपर्ण के दूधसमान तीखी सुगन्धि के प्रवाह को, सूंघकर सेना के बड़े हाथी महावतों के तीव्र यत्नों को उल्लंघन करते हुए पीठ देकर भागे ॥

४९–उसने कटक को बन्धन तोड़कर भागे हुए घोड़ों से सूने को, धुरा टूटकर पड़े हुए रथोंवाले को, स्त्रियों की रक्षा में घबड़ाए हुए योद्धाओंवाले को, क्षणभर में व्याकुल करदिया ॥

५०–"वन का हाथी राजा के मारने योग्य नहीं है" यह सुने हुए राजकुमार ने, थोड़ा धनुष खैंचे हुए ने, उस अपनी ओर आते हुए को हटाने के लिये बाण से मस्तक में मारा ॥

५१–कहते हैं कि घायल होतेही हाथी का रूप त्याग कर उसने इसी (वृत्तान्त) से चकित सेना के देखते हुए आकाश में चलनेवाला, चमकते प्रभामण्डल का मध्यवर्त्ती शोभायमान शरीर लिया ॥

५२-अथ प्रभावोपनतैः कुमारं।
कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य्य पुष्पैः।
उवाच वाग्मी दशनप्रभाभिः।
सम्वर्द्धितोरःस्थलतारहारः॥
५३-मतङ्गशापादवलेपमूलात्।
अवाप्तवानस्मि मतङ्गजत्वम्।
अवेहि गन्धर्व्वपतेस्तनूजम्।
प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य॥
५४-स चानुनीतः प्रणतेन पश्चात्।
मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत्।
उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगात्।
शैत्यंहि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य॥
५५-इक्ष्वाकुवंशप्रभवो यदा ते।
भेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन।
संयोक्ष्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना।
तदेत्यवोचत् स तपोनिधिर्माम्॥
५६-संम्मोचितः सत्त्ववता त्वयाहं।
शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन।
प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्य्यां।
वृथा हि मे स्यात् स्वपदोपलब्धिः॥
५७-संमोहनं नाम सखे! ममास्त्रं।
प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम्।
गान्धर्व्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुः।
नचारिहिंसा विजयश्च हस्ते॥

५२—तब वह अच्छी वाणीवाला, दांतो की प्रभा से गले के बड़े मोतियों के हार की शोभा बढ़ाता हुआ, प्रभाव से प्राप्त किए हुए कल्पद्रुम के फूलों से राजकुमार को छाकर बोला॥

५३—"मतंग (ऋषि) के शाप से, (मेरे) गर्वके कारणउपजे हुए से, मैं हाथीपन को पहुंचा था; तू मुझ को गन्धर्वों के स्वामी प्रियदर्शनका पुत्र प्रियंवद नाम जान"॥

५४—"फिर पीछे मेरी विनती से प्रसन्न होकर वह महर्षि शान्त हुआ" जल की उष्णता अग्नि (अथवा) घाम के संयोग से होतीहै शीतलता जो है सो स्वभावही है"॥

५५—"'इक्ष्वाकुवंश में जन्म लेनेवाला अज जब तेरे मस्तक को लोहे के मुखवाले (बाण) से भेदेगा तब तू अपने शरीर की महिमा फिर पावेगा, यह मुझ को उस तपोनिधि ऋषि ने कहा"॥

५६—"तुझ बली ने, बहुत काल से दर्शन की आशा किये हुए ने मुझे शाप से छुड़ाया है जो मैं तेरा उपकार न करूं तो मेरा निजपद पाना वृथा ही है"॥

५७—"हे सखा ! तू मेरे सम्मोहन नाम अस्त्र को छोड़ने और लौटाने में न्यारे न्यारे मन्त्रोंवाले को, गन्धर्व सम्बन्धी को ले, जिससे चलानेवाले को वैरियों की अहिंसा और हाथ में विजय है"॥

५८—अलं ह्रिया मां प्रति यन्मुहूर्तं।
दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम्।
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं।
मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम्॥

५९—तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं।
सोमोद्भवायाःसरितो नृसोमः।
उदङ्मुखः सोऽस्त्रविदस्त्रमन्त्रं।
जग्राह तस्मान्निगृहीतशापात्॥

६०—एवं तयोरध्वनि दैवयोगात्।
आसेदुषोः सख्यमचिन्त्यहेतु।
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्।
सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्॥

६१—तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे।
तदागमारूढगुरुप्रहर्षः।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रः।
चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली॥

६२—प्रवेश्य चैनंपुरमग्रयायी।
नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः।
मेने यथा तत्र जनः समेतः।
वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम्॥

५८—"लज्जा को वश कर, प्रहार करते हुए भी जब तू मेरी ओर क्षणमात्र दयावान् हुआ तो (अब) मुझ प्रार्थी पर नटने का रूखापन तुझे योग्य नहीं है"॥

५९—"ऐसाही हो" (यह कहकर) उस अस्त्रज्ञानी नरचन्द्र ने उत्तर ओर मुख करके चन्द्रमा से उत्पन्न होनेवाली नदी (नर्मदा) का पवित्र जल आचमन करके उस शाप मिटे हुए से अस्त्रमन्त्र लिया॥

६०—इस भांति मार्ग में दैवयोग से अकस्मात् मित्रता होनेवाले उन दोनों में से एक कुबेर के उद्यानसमीपी भूमियों को गया दूसरा सुराज से शोभित विदर्भ देशों को॥

६१—उस नगर के समीप ठहरे हुए को उसी के आने से अति हर्षवान् विदर्भनाथ आगे मिला, जैसे चन्द्रमा को बढ़ी हुई तरंगोंवाला समुद्र॥

६२—और उस को नगर में प्रवेश कराकर आगे चलते हुए ने, राजश्री अर्पण किये हुए ने, नम्रता से एसा सन्मान किया जिससे वहां इकट्ठे हुए मनुष्यों ने विदर्भराज को पाहुना और अज को घर का धनी जाना॥

P.71

६३–तस्याधिकारपुरुषैः प्रणतैः प्रदिष्टां।
प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्।
रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्य्यां।
बाल्यात् परामिव दशां मदनोऽध्युवास॥

६४–तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं।
कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्सोः।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ।
निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव॥

६५–तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं।
शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागम्।
सूतात्मजाः सवयसः प्रथितप्रबोधं॥
प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाचः॥

६६–रात्रिर्गता मतिमतांवर मुञ्च शय्यां।
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता।
तामेकतस्तव बिभर्त्ति गुरुर्विनिद्रः।
तस्या भवानपरधुर्य्यपदावलम्बी॥

६७–निद्रावशेन भवताप्यनपेक्षमाणा।
पर्य्युत्सुकत्वमबला निशिखण्डितेव।
लक्ष्मीर्विनोदयाति येन दिगन्तलम्बी।
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः॥

६३-उसके चतुर अधिकारियों की दिखलाई हुई नई रमणीक विश्रामशाला में, पहले द्वार की वेदी पर भरे हुए घड़ोंवाली में, रघु के उस युवराज ने वास किया जैसे शिशुता से दूसरी (अर्थात् यौवन) अवस्था में कामदेव ने ॥

६४-वहां स्वयंवर में राजसमूह इकट्ठा करने वाली श्रेष्ठ कन्या को पानेके अभिलाषी अज की आंखों के सन्मुख रात में निद्रा बहुत बेर पीछे आई, जैसे अभिप्राय जानने में असमर्थ स्त्री ॥

६५-उस कुण्डल पड़े हुए बड़े कन्धेवाले को, सेज के बिछौने की रगड़ से क्षीणअङ्गरागवाले को, प्रसिद्ध बुद्धिवान् को उसी की अवस्था के अच्छी वाणीवाले सूतपुत्रों ने प्रातःकाल स्तुतियों से जगाया ॥

६६-" हे बुद्धिवानों में श्रेष्ठ ! रात गई सेज त्यागो-क्या विधाता ने जगत का बोझ दो भाग में नहीं बांटा है जिसका एक ओर तुम्हारा पिता निद्रा छोड़कर उठाता है उसको दूसरी ओर उठाने वाले तुम हो" ॥

६७-"तुझ निद्रावश को भी छोड़ती हुई लक्ष्मी जिस चन्द्रमा से विरह व्यथा बिताती थी, जैसे रात्रि में खण्डिता नायिका, सो भी दिशाके अन्त पर जाकर तुम्हारे मुख की कान्ति त्यागता है" ॥

---

६७ अर्थात् भोर होने से चन्द्रमा फीका होता जाता है ॥

1/5

६८–तद्वल्गुना युगपदुन्मिषितेन तावत्।
सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे।
प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारमन्तः।
चक्षुस्तव प्रचलितभ्रमरञ्च पद्मम्॥

६९–वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां।
संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः।
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य॥

७०–ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु।
निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे।
लीलास्मितं सदशनार्च्चिरिवत्वदीयम्॥

७१–यावत् प्रतापनिधिराक्रमते न भानुः।
अह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर! याते।
किं वा रिपूंस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति॥

७२–शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः।
स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते।
येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगात्।
भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः॥

७३–दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु।
निद्रां विहाय वनजाक्ष! वनायुदेश्याः।
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि।
लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः॥

६८—"इसलिये अब एकही बार सुन्दर विकाश से दोनों तुरन्त एक दूसरे की तुलापर चढ़ो, चलायमान स्निग्ध पुतलीवाला तुम्हारा नेत्र और भीतर फिरते हुए भौंरे वाला कमल" ॥

६९—"प्रातःकाल की पवन वृक्षों की डालियों से शिथिल फूलों को तोड़ती है और अरुणके खिलाए हुए कमलों से मिलती है, मानो पराए गुणों से तुम्हारे श्वास की स्वाभाविक सुगन्धि प्राप्त करने की इच्छावान्" ॥

७०—"वृक्षों के लाल पत्तों में पड़ी हुई, हार के श्वेत मोतियों की स्वच्छतावाली ओस की बूँद चमकती है, जैसे नीचे के होठ पर शोभा पाकर दाँतो की कान्ति सहित तुम्हारी साधारण हसन" ॥

७१—"जबतक तेज का समुद्र सूर्य उदय नहीं हुआ तबतक तुरन्त अरुण ने अँधेरा मिटा दिया, हे वीर! संग्राम में तुम्हारे अग्रगामी होते हुए क्या अब तुम्हारा पिता आप वैरियों को मारेगा" ॥

७२—बजती संकलों को खैंचते हुए तुम्हारे हाथी दोनों ओर लोट कर निद्रा बिताए हुए शय्या को छोड़ते हैं' जिनके दाँतों के जोड़े नई धूप के संयोग से पहाड़ के टुकड़े के गेरुए तटों की नाईं चमकते हैं ॥

७३—"हे कमलनयन! बड़े तम्बुओं में बँधे हुए पारसी देश के ये घोड़े निद्रा छोड़कर आगे रक्खे हुए सेंधे नोन के स्वादीले टुकड़ों को मुख की भाप से मैला करते हैं" ॥

७४—भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः।
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ताम्।
अनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक् पञ्जरस्थः॥

७५—इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः।
सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितोराजहंसैः।
सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः॥

७६—अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं।
दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपद्मा।
कुशलविरचितानुकूलवेषः।
क्षितिपसमाजमगात् स्वयंवरस्थम्॥

इति पञ्चमः सर्गः॥

७४—"भेटके फूल कुम्हलाकर (उनकी) सजावट मलीन होती है, दीपक अपने किरणमण्डल से बाहर चमकने से रहित है' और यह तुम्हारा पिंजरे में बैठा हुआ मीठी वाणीवाला तोता भी तुम्हारे जगाने के लिये हमारी कही हुई वाणी कहता है" ॥

७५—इस प्रकार वचनों की रचना करनेवाले सूतपुत्रों के जगाए हुए कुमारने तुरन्त सेज छोड़ी, जैसे मदमें मधुर बोलनेवाले राजहंसों के जगाएहुए सुप्रतीक नाम सुरगज ने गंगा का रेतीला तट ॥

७६—शास्त्र में देखी हुई प्रातःकाल की उचित विधि को समाप्त करके सुन्दर पलकोंवाला, चतुरों के रचाए हुए सुन्दर वेषवाला, स्वयंवर में बैठे हुए राजाओं के समाज को गया ॥

पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

९।१

षष्ठः सर्गः ॥

इन्दुमतीस्वयंवरवर्णनम्

१–स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेषान् ।
सिंहासनस्थानुपचारवत्सु ।
वैमानिकानां मरुतामपश्यत् ।
आकृष्टलीलान् नरलोकपालान् ॥

२–रतेर्गृहीतानुनयेन कामं ।
प्रत्यर्पितस्वाङ्गमिवेश्वरेण ।
काकुत्स्थमालोकयतां नृपाणां ।
मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम् ॥

३–वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः ।
क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम् ।
शिलाविभङ्गैर्मृगराजशावः ।
तुङ्गं नगोत्सङ्गमिवारुरोह ॥

छठा सर्ग

इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन

१—वहां उसने सजेहुए मचानों में सिंहासनों पर बैठे हुए अच्छे वेषवाले राजाओं को, विमानों पर बैठनेवाले[1] देवताओं की सुघड़ाई लिए हुओं को, देखा ॥

२—रति की प्रार्थना स्वीकार करनेवाले महादेव जी से फिर अपना अंग पाए हुए कामदेव सरीखे काकुत्स्थ[2] को देखतेहुए राजाओं का मन इन्दुमती में निराश हुआ ॥

३—विदर्भराज के दिखलाए हुए मचान पर वह कुमार अच्छी सजी हुई सीढ़ियों से चढ़गया, जैसे सिंह का छावड़ा शिला फटानों से पहाड़ की ऊंची कन्दरा पर ॥

---

१ विमान में बैठनेवाला वैमानिक कहलाता है ॥

२ सूर्यवंशियों का नाम काकुत्स्थ इस लिये है कि उनके एक पुरखे का नाम ककुत्स्थ था और यह नाम इसलिये पड़ा था कि वह लड़ाई में इन्द्र को बैल बनाकर उसके ककुद अर्थात् ठाठ पर बैठकर दैत्यों से लड़ा था ॥

४–परार्द्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नम्।
आसेदिवान् रत्नवदासनं सः।
भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिः।
मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन॥
५–तासु श्रिया राजपरम्परासु।
प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः।
सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्तः।
पयोमुचां पङ्क्तिषु विद्युतेव॥
६–तेषां महार्हासनसंस्थितानाम्।
उदारनेपथ्यभृतां स मध्ये।
रराज धाम्ना रघुसूनुरेव।
कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः॥
७–नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्।
विहाय सर्व्वान् नृपतीन् निपेतुः।
मदोत्कटे रेचितपुष्पवृक्षाः।
गन्धद्विपे वन्य इव द्विरेफाः॥
८–अथ स्तुते वन्दिभिरन्वयज्ञैः।
सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके।
सञ्चारिते चागुरुसारयोनौ।
धूपे समुत्सर्पति वैजयन्तीः॥

४—वह श्रेष्ठ रंगोंके बिछौने बिछे हुए रत्नजटित आसन पर बैठ कर मोर की पीठपर चढ़नेवाले स्वामिकार्त्तिक के साथ उत्तम उपमा के योग्य कान्तिमान् हुआ॥

५-राजाओं की उन पंक्तियों में लक्ष्मी का सहस्र भाग किया हुआ निज तेज निराले चकाचौंध के कारण कठिनता से दीखनेवाला हुआ, जैसे बादलों की पंक्तियों में बिजली॥

६—बड़े मोल के आसनों पर बैठे हुए उन उज्ज्वल वस्त्र वालों के बीच में तेज करके तो रघुका पुत्रही शोभित हुआ, जैसे कल्पवृक्षों के (बीच) में पारिजात॥

७—पुरवासियों के नेत्रसमूह सब राजाओं को छोड़कर उसी के ऊपर पड़े जैसे मद चूने के समय फूल के वृक्षों को छोड़ कर भौंरे वन के सुगन्धिवान् हाथी के ऊपर॥

८—तिस पीछे वंशावली जाननेवाले वन्दीजनोंसे चन्द्र सूर्यवंशी राजसमूह की स्तुति होते हुए और फैली हुई अगरसार की धूप में पताकाओं के फहराते हुए,॥

---

८ व ६ इन श्लोकों का आशय दशवें में खुलेगा॥

९—पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां ।
कलापिनामुद्धतनृत्यहेतो ।
प्रध्मातशङ्खे परितो दिगन्तान् ।
तूर्य्यस्वने मूर्च्छति मङ्गलार्थे ॥

१०—मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानम् ।
अध्यास्य कन्या परिवारशोभि ।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं ।
पतिंवराक्लृप्तविवाहवेषा ॥

११—तस्मिन् विधानातिशये विधातुः ।
कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये ।
निपेतुरन्तःकरणैर्नरेन्द्राः ।
देहैः स्थिताः केवलमासनेषु ॥

१२—तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां ।
महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः ।
प्रवालशोभा इव पादपानां ।
शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ॥

१३—कश्चित् कराभ्यामुपगूढनालम् ।
आलोलपत्राभिहतद्विरेफम् ।
रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि ।
लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार ॥

९—नगर समीपी उपवनों के मोरों का बड़ा नाच कराने वाले शंखों के शब्दों से भरी हुई मंगल निमित्त बजने वाली तुरहियों की ध्वनि दिशाओं के अन्त तक छाते हुये, ॥

१०—मनुष्यों के कन्धों पर, चण्डोल में, साथ चलनेवालों से शोभा पातेहुये में, बैठकर पति को वरनेवाली विवाह के कपड़े पहनी हुई वह कन्या मचानों के बीच राज-मार्ग में गई ॥

११—विधाता की उस उत्तम करतूत कन्यारत्न में, सौ आंखों के एक बेझे में, राजा लोग अन्तःकरण से गये आसनों में देहमात्र बैठे रहे ॥

१२—उसके सामने मनोरथ प्रकट करनेवाले राजाओं की शृङ्गारचेष्टा, प्रार्थना में उत्तम दूती, बहुत प्रकार की हुई, जैसे वृक्षों की पल्लव शोभा ॥

१३—किसी ने दोनों हाथ से पकड़ी हुई नालवाला, हिलते पत्तों से भौंरों को दूर करता हुआ, मध्य में पराग का चक्र बाँधता हुआ, खेलका कमल फिराया ॥

---

१२ प्रार्थना में चेष्टाही उत्तम दूती कहलाती है ॥

१४—विस्रस्तमंसादपरो विलासी।
रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम्।
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाशं।
निनाय साचीकृतचारुवक्त्रः॥
१५—आकुञ्चिताग्रांगुलिना ततोऽन्यः।
किञ्चित्समावर्ज्जितनेत्रशोभः।
तिर्य्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण।
पादेन हैमं विलिलेख पीठम्॥
१६—निवेश्य वामं भुजमासनार्द्धे।
तत्सन्निवेशादधिकोन्नतांसः।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः।
सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत्।
१७—विलासिनी विभ्रमदन्तपत्रम्।
आपाण्डुरं केतकबर्हमन्यः।
प्रियानितम्बोचितसन्निवेशैः।
विपाटयामास युवा नखाग्रैः॥
१८—कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्।
करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन।
रत्नांगुलीयप्रभयानुविद्धान्।
उदीरयामास सलीलमक्षान्॥

१४–दूसरे रसिकने सुन्दर मुख फेरते हुये ने, कन्धे से सरकी हुई, रत्नजटित भुजबन्ध की कोटि से लगी हुई, माला उठाकर उचित स्थान पर रक्खी ॥

१५–उससे दूसरे किसी ने, आंखों की कुछ छवि दिखलाते हुये ने सकोड़ी हुई अंगुलियोंवाले, तिरछी फैली हुई नख की चमकवाले पैरसे सोने की पीढ़ी पर (कुछ) लिखा ॥

१६–कोई बाईं भुजा को आधे आसन पर रखकर उस के रखने से ऊंचे कन्धेवाला, पीठ पर पड़े हारवाला, मित्र से बात करने लगा ॥

१७–किसी दूसरे युवान ने केतकी के कुछ पीले पत्ते को, स्त्रियों के विभ्रमदन्तपत्र को, प्रिया के नितम्बों पर पड़नेवाले नखों से नोचा ॥

१८–किसी ने कमल समान लाल हथेलीवाले हाथ से ध्वजा की रेखाचिह्नवाले से, रत्नजटित अंगूठियों की चमक वाले पांसों को खेल करके उछाला ॥

---

१५ पीढ़ी=पैर रखने की मुढ़िया ॥

१७ दन्तपत्र=कर्णफूल ॥

१९—कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि।
स्वसन्निवेशात् व्यतिलंघिनीव।
वज्रांशुगर्भांगुलिरन्ध्रमेकं।
व्यापारयामास करं किरीटे॥
२०—ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा।
पुंवत् प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी।
प्राक् सन्निकर्षं मगधेश्वरस्य।
नीत्वा कुमारीमवदत् सुनन्दा॥
२१—असौ शरण्यः शरणोन्मुखानाम्।
अगाधसत्त्वो मगधप्रतिष्ठः।
राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः
परन्तपो नाम यथार्थनामा॥
२२—कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये
राजन्वतीमाहुरनेनभूमिम्।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि।
ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः॥
२३—क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणाम्।
अजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्।
मन्दारशून्यानलकांश्चकार॥

१९—किसीने ठीक ठौर पर भी रक्खे हुए मुकुट में एक हाथ हीरे की दमक से भरी हुई गाइयों वाला रक्खा, मानों अपने स्थानसे हटे हुए में ॥

२०—तिस पीछे राजाओं के वंश और वृत्तान्त सुनी हुई पुरुष के समान बोलनेवाली सुनन्दा नाम द्वारपालनी कुमारी को पहले मगध देश के राजा के निकट लेजाकर बोली ॥

२१—"यह शरणागतों को शरण देनेवाला, गम्भीर स्वभाव वाला, मगधदेश की प्रतिष्ठा, प्रजारंजन सीखा हुआ, यथार्थ नाम परन्तप राजा है" ॥

२२—और राजा सहस्रों हों भूमि को राजावाली इसीसे कहते हैं, रात्री नक्षत्रों और तारों और ग्रहों से भरी हुई भी ज्योतिवाली चन्द्रमाही से है" ॥

२३—"निरन्तर यज्ञों की क्रिया से इन्द्र के इस नित्य बुलाने वालेने इन्द्राणी के पीले कपोलों पर लटकतेहुए अलकों को मन्दार पुष्पों से बहुत काल तक सूना रक्खाहै" ॥

---

२१ परन्तप=वैरियों को तपानेवाला ॥

२३ पति घर न हो तब स्त्री शृंगार नहीं करती ॥

२४–अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं।
पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे।
प्रासादवातायनसंश्रितानां।
नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम्॥
२५–एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किञ्चित्।
विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला।
ऋजुप्रणामक्रियथैव तन्वी।
प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा॥
२६–तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता।
राजान्तरं राजसुतां निनाय।
समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा।
पद्मान्तरं मानसराजहंसीम्॥
२७–जगाद चैनामयमङ्गनाथः।
सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः।
विनीतनागः किलसूत्रकारैः।
ऐन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुङ्क्ते॥
२८–अनेन पर्य्यासयताश्रुबिन्दून्।
मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनाम्।
उन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः॥

२४—"इस श्रेष्ठ के साथ जो तू पाणिग्रहण किया चाहती है तो प्रवेश के समय भवनों के झरोखों में बैठी हुई पटने की स्त्रियों के नेत्रों को उत्सव करेगी" ॥

२५—ऐसे उसके कहने पर उसकी ओर देखकर उस पतले अङ्गवाली ने, दूब लगी हुई महुए की माला कुछ नीची करती हुई ने, विना बोलेही उसको सीधेपनके प्रणाम से नाहीं का उत्तर दिया ॥

२६—(फिर) वही द्वारपालनी उस राजसुता को दूसरे राजा के निकट लेगई, मानो मानससरोवर की राजहंसनी को पवन की उठाई हुई तरंग दूसरे कमल के निकट ॥

२७—और उसको बोली "यह अङ्गदेश का स्वामी अप्सराओं की चाही हुई यौवनकान्तिवाला, ऋषियों के सिखाए हुए हाथियों वाला, पृथ्वी पर रहता हुआ भी इन्द्र कासा ऐश्वर्य भोगताहै" ॥

२८—उस वैरियों की स्त्रियों के कुचोंपर आंसुओं को बड़े मोतियों से पलटा करानेवाले ने मानो लेकर फिर विना डोरे की मालाही देदीं ॥

---

२७ इस राजा की कथा है कि एक समय इन्द्रलोक को गया था वहां इसके रूप पर सब अप्सरा लुभा गईं ॥

१२१

२६—निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थम्।
अस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च।
कान्त्या गिरा सूनृतया च योग्या।
त्वमेव कल्याणि तयोस्तृतीया॥

३०—अथाङ्गराजादवतार्य्य चक्षुः।
याहीति जन्यामवदत् कुमारी।
नासौ न काम्यो न च वेद सम्यक्।
द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोकः॥

३१—ततः परं दुष्प्रसहं द्विषद्भिः।
नृपं नियुक्ता प्रतिहारभूमौ।
निदर्शयामास विशेषदृश्यम्।
इन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै॥

३२—अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुः।
विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः।
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजाः।
त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति॥

३३—अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेः।
अग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि।
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां।
प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि॥

२६—"स्वभावही से अलग रहनेवाली इसके पास दो इकट्ठी हैं, लक्ष्मी और सरस्वती, और हे कल्याणी! कांति से और सुन्दर वाणी से उनकी तीसरी होने को तूही योग्य है" ॥

३०—तब अंगेश्वर से नेत्र फेरकर कुमारी ने सखी को "आगे चल" यह कहा; न वह चाहने के अयोग्य था और न वह यथार्थ देखने में अज्ञान थी (परन्तु) मनुष्य न्यारी न्यारी रुचि के होते ही हैं ॥

३१—फिर द्वारपालनी ने वैरियों का न सहा हुआ एक और रूपवान् राजा इन्दुमती को दिखलाया, मानो नया उदय हुआ चन्द्रमा ॥

३२—"यह अवन्तिका का राजा बड़ी भुजावाला चौड़ी छाती वाला पतली गोल कटिवाला विराजमान है, जैसे शान पर चढ़ाकर विश्वकर्मा का उजाला हुआ सूर्य" ॥

३३—"इस सर्वशक्तिमान् के आगे चलनेवाले घोड़ों की उठाई हुई धूलि राजाओं में शिरोमणियों के तेज का अंकुर अस्त करती है" ॥

---

२६ लक्ष्मी और सरस्वती अर्थात् द्रव्य और विद्या ॥

३४—असौ महाकालनिकेतनस्य।
वसन्नदूरे किलचन्द्रमौलेः।
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिः।
ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्॥

३५—अनेन यूना सह पार्थिवेन।
रम्भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते।
शिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु।
विहर्तुमुद्यानपरम्परासु॥

३६—तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे।
प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के।
बबन्ध सा नोत्तमसौकुमार्य्या।
कुमुद्वती भानुमतीव भावम्॥

३७—तामग्रतस्तामरसान्तराभाम्।
अनूपराजस्य गुणैरनूनाम्।
विधाय सृष्टिं ललितां विधातुः।
जगाद भूयः सुदतीं सुनन्दा॥

३८—संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुः।
अष्टादशद्वीपनिखातयूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दः।
बभूव योगी किल कार्त्तवीर्य्यः॥

---

३६ भानुमान्=सूर्य्यः॥

३४—"महाकाल निवासी चन्द्रशेखर के निकट बसता हुआ यह अंधेरेपाख में भी प्यारियों के साथ चांदनी रातों का सुख लेताहै" ॥

३५—"हे कदली समान जांघोंवाली! क्या तेरे मन की रुचि इस जुवाने राजा के साथ शिप्रा की तरंगों की पवन से हिलनेवाली उद्यान पंक्तियों में विहार करने को है" ॥

३६—उस बन्धुरूपी कमलों के खिलानेवाले में, तेज से वैरी रूपी कीच के सुखानेवाले में, उस उत्तम सुकुमारी ने चित्त न लगाया, जैसे कुमोदिनी ने सूर्य में ॥

३७—उस कमल के उदर समान कान्तिवाली को, गुणों की पूरी को, विधाता की ललित सृष्टि को, सुन्दर दांतों वाली को अनूप देश के राजा के आगे लेजाकर फिर सुनन्दा ने कहा ॥

३८—"संग्राम में सहस्र भुजा पाया हुआ, अठारह द्वीपों में यज्ञस्तम्भ गाड़नेवाला, विशेषता से राजशब्द लेनेवाला, कार्त्तवीर्य नाम ब्रह्मवेत्ता हुआ" ॥

३९—अकार्य्यचिन्तासमकालमेव।
प्रादुर्भवंश्चापधरः पुरस्तात्।
अन्तःशरीरेष्वपि यः प्रजानां।
प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता॥
४०—ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य।
विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण।
कारागृहे निर्जितवासवेन।
लङ्केश्वरेणोषितमाप्रसादात्॥
४१—तस्यान्वये भूपतिरेष जातः।
प्रतीप इत्यागमवृद्धसेवी।
येन श्रियः संश्रयदोषरूढं।
स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम्।
४२—आयोधने कृष्णगतिं सहायम्।
अवाप्य यः क्षत्त्रियकालरात्रिम्।
धारां शितां रामपरश्वधस्य।
सम्भावयत्युत्पलपत्रसाराम्॥
४३—अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोः।
माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम्।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां।
रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः॥

३९—" जिस न्यायी ने (प्रजा के) मन में बुरेकाम का ध्यान होतेही धनुष धरे हुए सामने प्रकट होकर प्रजाओं के अन्तःकरण में भी अन्याय मिटा दिया " ॥

४०—" जिसके बन्दीघर में लंकेश्वर ने, प्रत्यंचा में बांह रुके हुए ने, ऊंचे श्वास लेते हुए मुखों की पंक्तिवाले ने, इन्द्र के जीतनेवाले ने, उसकी प्रसन्नता तक वास किया " ॥

४१—" उसी के वंश में यह वेद जाननेवालों का सेवक प्रतीप नाम राजा जन्मा है जिसने लक्ष्मी के "स्वभावही से चंचल है " इस अयश को, आश्रितों के गुणों से उत्पन्न होनेवाले को, दूर करदिया " ॥

४२—" जिसने युद्ध में अग्नि सहायी पाकर परशुराम के फरसे की पैनी धार को, क्षत्रियों की कालरात्री को, कमलपत्र समान तेजस्विनी माना " ॥

४३—" जो माहिष्मती (नगरी) के परकोटे रूपी नितम्ब रेवा रूपी तागड़ी को, जलों के प्रवाह से रमणीक को, रनवास के झरोखों से देखने की चाह है तो इस बड़ीभुजावाले की अंक की लक्ष्मी बन " ॥

---

४० प्रसन्नता तक अर्थात् जब उसकी इच्छा हुई तब रावण बन्धि से छूटा ॥

४१ आश्रितों के गुणों से उत्पन्न होनेवाला अयश इसलिये कहा कि लक्ष्मी में खोट नहीं है उसके पानेवाले खोटे होजाते हैं ॥

४४—तस्याः प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि।
न स क्षितीशो रुचये बभूव।
शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः।
शशीव पर्य्याप्तकलो नलिन्याः॥
४५—सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणम्।
उद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम्।
आचारशुद्धोभयवंशदीपं।
शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारीम्॥
४६—नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा।
गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण।
सिद्धाश्रमं शान्तमिवेत्य सत्त्वैः।
नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः॥
४७—यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा।
कान्तिर्हिमांशोरिवसन्निविष्टा।
हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु।
तेजोऽविषह्यं रिपुमन्दिरेषु॥
४८—यस्यावरोधस्तनचन्दनानां।
प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले।
कलिन्दकन्या मथुरां गतापि।
गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति॥

४४—देखने में वह यथार्थ सुघर राजा भी उसकी रुचि में न भाया, जैसे कमलिनी की (रुचि) में शरद के मिटाए हुए बादलों से विना रुका हुआ पूरी कला प्राप्त किया हुआ चन्द्रमा ॥

४५—शूरसेन देशका सुषेण नाम राजा, लोकान्तरों में गाई हुई कीर्तिवाला, शुद्ध आचार से दोनों कुलों का दीपक, दिखलाकर द्वारपालनी ने उस कुमारी से कहा ॥

४६—"यह यज्ञ करनेवाला राजा नीप के वंश का है जिस में पहुँच कर गुणों ने आपस का स्वाभाविक विरोध भी छोड़ दिया, जैसे सिद्धों के शान्त आश्रम में जाकर पशु पक्षियों ने" ॥

४७—"जिसका चन्द्रमा कासा मनोहर उजाला निज घरमें (और) असह्य तेज वैरियों के मन्दिरों में, आंगनों में घास जमे हुओं में, फैला है" ॥

४८—"जिसके रनवास की स्त्रियों के स्तनों का चन्दन जल-क्रीड़ा में घुल जाने से यमुना मथुरामें भी गंगाकी तरंगों से मिलेहुए जलवाली सी भासती है" ॥

---

४६ सिद्धों के आश्रममें बाघ बकरी एक घाट पानी पीते हैं ऐसेही सुषेण राजा में ज्ञान मौनादि गुणों ने आपस का विरोध त्यागा था ॥

४९–त्रस्तेन तार्क्ष्यात् किल कालियेन।
मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः।
वक्षःस्थलव्यापिरुचं दधानः।
सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम्॥

५०–सम्भाव्य भर्त्तारममुं युवानं।
मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने।
निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः॥

५१–अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि।
शैलेयगन्धीनि शिलातलानि।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं।
कान्तासु गोवर्द्धनकन्दरासु॥

५२–नृपं तमावर्त्तमनोज्ञनाभिः।
सा व्यत्यगादन्यवधूर्भवित्री।
महीधरं मार्गवशादुपेतं।
स्रोतोवहा सागरगामिनीव॥

५३–अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या।
हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम्।
आसेदुषीं सादितशत्रुपक्षं।
बालामबालेन्दुमुखीं बभाषे॥

५४–असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः।
पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च।
यस्य क्षरत्सैन्यगजच्छलेन।
यात्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः॥

४९—"गरुड़ से डरे हुए यमुनावासी कालीय की दी हुई कान्तिमान् मणि को छाती पर धारण करता हुआ कौस्तुभ पहननेवाले विष्णु को लजाता सा है" ॥

५०—"इस जुवाने को भर्त्ता मान कर हे सुन्दरी ! कोमल पत्तों की पुष्पशय्या पर वृन्दावन में, कुवेर के उद्यान समान में, यौवन के फल भोग" ॥

५१—"और जल की बूंदों से छिड़की हुई शिलारस की गन्धिवाली चट्टानों पर बैठकर वर्षा ऋतु में सुन्दर गोवर्द्धन की कन्दराओं में मोरों का नाच देख" ॥

५२—उस राजा को वह भ्रमर समान मनोहर नाभिवाली दूसरे की वधू होनेवाली, छोड़ गई, जैसे समुद्र को जाती हुई नदी मार्ग में पड़ते हुए पर्वत को ॥

५३—तब भुजबन्द धारण कीहुई भुजावाले, वैरियों के समूह का नाश करनेवाले, कलिंग देश के हेमांगद नाम राजा के निकट पहुँची हुई को, पूर्णचन्द्र समान मुखवाली को, दासी ने कहा ॥

५४—"यह महेन्द्र पर्वत के समान बलवान् महेन्द्र और महोदधि का स्वामी है जिसकी यात्राओं में मानो सेना के मद चूते हुए हाथियों के मिष से महेन्द्र ही आगे चलता है" ॥

५५—ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां।
बिभर्त्ति यश्चापभृतां पुरोगः।
रिपुश्रियांसाञ्जनबाष्पसेके।
वन्दीकृतानामिव पद्धती द्वे॥

५६—यमात्मनः सद्मनि सन्निकृष्टः।
मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्य्यः।
प्रासादवातायनदृश्यवीचिः।
प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम्॥

५७—अनेन सार्द्धं विहराम्बुराशेः।
तीरेषु तालीवनमर्म्मरेषु।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैः।
अपाकृतस्वेदलवामरुद्भिः॥

५८—प्रलोभिताप्याकृतिलोभनीया।
विदर्भराजावरजा तयैवम्।
तस्मादपावर्त्तत दूरकृष्टा।
नीत्येव लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात्॥

५९—अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं।
दौवारिकी देवस्वरूपमेत्य।
इतश्चकोराक्षि विलोकयेति।
पूर्व्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम्॥

५५—"जो सुन्दर भुजावाला, धनुषधारियों का मुखिया, दोनों भुजाओं में दो ज्याघात रेखा धारण किए है, मानो पकड़े हुए वैरियों की लक्ष्मी के कज्जल सहित आँसुओं से छिड़के हुए दो मार्ग" ॥

५६—"निज मन्दिर में जिस सोते हुए को गम्भीर शब्द से पहर पहर की तुरही की धुनि का चुप करनेवाला, रनवास के झरोखों से दीखती हुई लहरोंवाला, समीपवर्त्ती समुद्र ही जगाता है" ॥

५७—"मर्मर शब्द करते हुए तालीवनवाले समुद्र तीर पर द्वीपान्तरों से लौंग के फूल लानेवाली पवनों से पसीने की बूंद सुखाती हुई तू इसके साथ विहार कर" ॥

५८—उस (दासी) की इस प्रकार लुभाई हुई भी विदर्भनाथ की छोटी बहन, लुभावने रूपवाली, उस से हट गई, जैसे दैव के कोपे हुए से नीति सहित दूर से लाई हुई लक्ष्मी ॥

५९—फिर नागपुर के देवस्वरूप राजा के समीप लेजाकर द्वारपालनी ने "हे चकोरनयनी ! इधर देख" ऐसे पहले कहकर इन्दुमती से कहा ॥

---

५५ ज्याघात रेखा=कमान की डोरी की रगड़ से जो चिह्न कलाई पर होजाता है ॥

६०–पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः।
क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभाति बालातपरक्तसानुः।
सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥

६१–विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेः।
निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः।
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्त्तेः।
सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः॥

६२–अस्त्रं हरादाप्तवता दुरापं।
येनेन्द्रलोकावजयाय दृप्तः।
पुरा जनस्थानविमर्दशङ्की।
सन्धायलङ्काधिपतिः प्रतस्थे॥

६३–अनेनपाणौ विधिवद्गृहीते।
महाकुलीनेन महीव गुर्वी।
रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः।
दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः॥

६४–ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगा-।
स्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं।
प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु॥

६०—"यह कन्धे पर लटकते हुए हारवाला, हरिचन्दन से रचे हुए अङ्गरागवाला पांडुदेश का राजा विराजमान है जैसे सबेरे के घाम से लाल शिखरवाला, झिरते हुए झिरनोंवाला, गिरिराज" ॥

६१—"अश्वमेध के अन्तस्नान पर जिस भीगे हुए का प्रीति से कुशल पूछनेवाला विन्ध्याचल का शिक्षक, समस्त समुद्र को पीकर उगलनेवाला, अगस्त्य होता है" ॥

६२—"महादेव से जिस दुर्लभ अस्त्र पानेवाले (पाण्डुराज) के साथ मिलाप करके आगे अभिमानी लङ्कापति जनस्थान के नाश का शङ्कावान्, इन्द्रलोक जीतने के लिए गया था" ॥

६३—" इस महाकुलीन के साथ तू अमोल पृथ्वी की नाईं विधिपूर्वक ब्याही होकर रत्नों से भरे हुए समुद्र की मेखलावाली दक्षिण दिशा की सौत बन" ॥

६४—"मलयगिरि की भूमियों में, पान की बेलों से ढके हुए पूगवृक्षवालियों में, इलायची की लताओं से लपटे हुए चन्दनवालियोंमें,तमालपत्र के बिछौनेवालियों में, सदा रमण करने को प्रसन्न हो" ॥

---

६१ अर्थात् यज्ञ के अन्त पर अगस्त्यही इस राजा से कुशल पूछता है ॥

६८ रामायण में कथा है कि जब रावण इन्द्रलोक जीतने के लिये जानेलगा तौ उसको डरहुआ कि पीछे पाण्डुदेश का राजा जनस्थान को लूट लेगा इस लिये उस राजा से मिलाप करके रावण इन्द्रपुरी को गया था ॥

६५—इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ।
त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां।
योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु॥
६६—स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयः।
लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः।
दिवाकरादर्शनबद्धकोशे।
नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे॥
६७—सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ।
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे।
विवर्णभावं स स भूमिपालः॥
६८—तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां।
वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत्।
वामेतरः संशयमस्य बाहुः।
केयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद॥
६९—तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं।
व्यावर्त्ततान्योपगमात् कुमारी।
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य।
वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली॥
७०—तस्मिन् समावेशितचित्तवृत्तिम्।
इन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेत्य।
प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा।
सविस्तरं वाक्यमिदं सुनन्दा॥

६५—"यह राजा नीलकमल समान श्याम शरीर है तू गोरोचन समान गोरे अङ्गवाली है इससे तुम्हारा योग एक दूसरे की शोभा बढ़ाने के लिये बिजली और बादल का सा हो"॥

६६—विदर्भनाथ की बहन के मन में उसकी सीख ने ठौर न पाया, जैसे सूर्य के न देखने से मूंदी हुई पंखड़ियों वाले कमल में चन्द्रमा की किरण ने॥

६७—रात में चलती हुई दीपशिखा की नाईं उस दुलहिन ने जिस जिस को पीछे छोड़ा वही वही राजा बड़ी सड़क के अट्टे की भांति मैला पड़ता गया॥

६८—उस सामने आई हुई में रघु का पुत्र "मुझे बरेगी कि नहीं" ऐसा सन्देह करनेवाला हुआ; उसकी दाहनी बांह ने भुजबन्द की ठौर के फड़कने से उसका यह सन्देह मिटा दिया॥

६९—उस समस्त निर्दोष अङ्गोंवाले के पास पहुँच कर औरों के पास जाने से कुमारी निवटी, क्योंकि फूले हुए आम के मौल में जाकर भौंरों की भीड़ और रूखों पर जाने की आकांक्षा नहीं करती है॥

७०—उसमें चित्त की वृत्ति लगाई हुई चन्द्रकिरण समान इन्दुमतीको देखकर आगा पीछा जाननेवाली सुनन्दा विस्तारपूर्वक यह वचन कहनेलगी॥

७१–इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां।
ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्।
काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः।
श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोशलेन्द्राः॥

७२–महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपं।
यः संयति प्राप्तपिनाकिलीलः।
चकार बाणैरसुराङ्गनानां।
गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखः॥

७३–ऐरावतास्फालनविश्लथं यः।
संघट्टयन्नङ्गदमङ्गदेन।
उपेयुषः स्वामपि मूर्त्तिमग्र्याम्।
अर्द्धासनं गोत्रभिदोऽधितस्थौ॥

७४–जातः कुले तस्य किलोरुकीर्त्तिः।
कुलप्रदीपो नृपतिर्दिलीपः।
अतिष्ठदेकोनशतक्रतुत्वे।
शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये यः॥

७५–यस्मिन् महीं शासति वाणिनीनां।
निद्रां विहारार्द्धपथे गतानाम्।
वातोऽपि नास्त्रंसयदंशुकानि।
कोलम्बयेदाहरणायहस्तम्॥

७१—"राजाओं का मुखिया ककुत्स्थ नाम इक्ष्वाकुवंशी सर्व गुणसंयुक्त था जिससे उत्तरकोशल के बड़े साहसी राजा अच्छी काकुत्स्थ पदवी रखते हैं" ॥

७२—"युद्ध में बैल बनेहुए इन्द्र पर चढ़कर जिस महादेव की लीला प्राप्त किए हुए ने बाणों से असुरों की स्त्रियों के कपोल शृंगार से रहित कर दिए" ॥

७३—"जो ऐरावत के ठमकारने से शिथिल भुजबन्द को (अपने) भुजबन्द से रगड़ता हुआ फिर भी निज श्रेष्ठ मूर्त्ति पाने वाले, पहाड़ काटनेवाले (इन्द्र) के आधे आसन पर बैठा" ॥

७४—"उसके कुल में निश्चय बड़ा कीर्तिमान् कुलदीपक दिलीप राजा जन्मा जो इन्द्र की ईर्षा निवारने के निमित्त निन्यानवह यज्ञ करनेवाला रह गया" ॥

७५—"जिसके पृथ्वी पर राज्य करते हुए विहार स्थान के आधे मार्ग में सोती हुई वेश्याओं के कपड़े पवन ने भी न हटाए चोरी के लिये कौन हाथ फैला सकता था" ॥

---

७२ महादेव की लीला = बैल पर चढ़ कर युद्ध करना ॥

७३ गौतम ऋषि के शाप से इन्द्र का शरीर कुरूप हुआ था देवताओं ने फिर श्रेष्ठ किया ॥

७४ इन्द्र ने दिलीप को पूरे सौ यज्ञ न करने दिए ॥

७६—पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति।
महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता।
चतुर्दिगावर्ज्जितसम्भृतां यः।
मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम्॥
७७—आरूढमद्रीनुदधीन् वितीर्णं।
भुजङ्गमानां वसतिं प्रविष्टम्।
ऊर्द्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि।
यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम्॥
७८—असौ कुमारस्तमजोऽनुजातः।
त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः।
गुर्व्वीं धुरं यो भुवनस्य पित्रा।
धुर्य्येण दम्यः सदृशं बिभर्त्ति॥
७९—कुलेन कान्त्या वयसा नवेन।
गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व।
रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन॥
८०—ततः सुनन्दावचनावसाने।
लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं।
प्रत्यग्रहीत् संवरणस्रजेव॥
८१—सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं।
शशाक शालीनतया न वक्तुम्।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टिम्।
भित्वा निराक्रामदरालकेश्याः॥

७६–"उसके पद को उसका पुत्र रघु महायज्ञ विश्वजित् का करनेवाला पालता है जिसने चारों दिशा से लाकर बढ़ाई हुई विभूति मट्टी का पात्र बची हुई करदी" ॥

७७–"जिसका पर्वतों पर चढ़ा हुआ, समुद्रों के पार गया हुआ, सर्पों की नगरी (पाताल) में प्रवेश किया हुआ, ऊपर पहुँचा हुआ, और तीनों काल में न टूटा हुआ यश नापने में नहीं आसकता कि इतना है" ॥

७८–"उस से यह अज कुमार हुआहै, जैसे स्वर्ग के स्वामी (इन्द्र) से जयन्त, जो सीखतर ही पृथ्वी के भारी बोझ को धुरन्धर पिता की नाईं उठाता है" ॥

७९–"कुल करके कान्ति करके नई बैस करके और जिनमें नम्रता प्रधान है ऐसे गुणों करके इस अपने तुल्य को तू वरले; रत्न सोने में मिले तौ अच्छा हो" ॥

८०–तब सुनन्दा का वचन समाप्त होने पर राजकुमारी ने लाज छोटी करके कुमार को प्रसन्नता की विमल दृष्टि से ग्रहण किया, मानो स्वयंवर की माला से ॥

८१–लाज के मारे वह उस जवान में (अपनी) प्रेमगांठि के कहने को समर्थ न हुई; घुँघराले केशोंवाली के शरीर को बेध कर वह (प्रेमगांठि) रोमांच के मिषसे बाहर निकल आई ॥

८२-तथागतायां परिहासपूर्वं।
सख्यां सखी वेत्रभृदाबभाषे।
आर्य्ये व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां।
वधूरसूयाकुटिलं ददर्श॥

८३-सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य।
धात्रीकराभ्यां करभोपमोरूः।
आसञ्जयामास यथाप्रदेशं।
कण्ठे गुणं मूर्त्तमिवानुरागम्॥

८४-तया स्रजा मङ्गलपुष्पमय्या।
विशालवक्षःस्थललम्बया सः।
अमंस्त कण्ठार्पितबाहुपाशां।
विदर्भराजावरजां वरेण्यः।

८५-शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं।
जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा।
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौराः।
श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्यं विवव्रुः॥

८६-प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्।
क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम्।
उषसि सर इव प्रफुल्लपद्मं।
कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत्॥

इति श्रीरघुवंशे षष्ठः सर्गः॥

८२—इस अवस्था में पहुँची हुई उस सखी को छड़ी रखने वाली सखी ने हँसी से कहा "हे चतुरी! और किसी के समीप चल" तब दुलही ने उसको रोष से तिरछा देखा ॥

८३—उस सूंड़ समान जांघोंवाली ने धाय के हाथ से रघुनन्दन के गलेमें जहां उचितथी मंगल के चूर्ण से श्वेतमाला पहनाई, मानो मूर्त्तिमान् अनुराग ॥

८४—चौड़ी छाती पर पड़ी हुई उस मंगलपुष्पों की मालासे उस चतुर ने विदर्भनाथ की बहन को गले में बांहोंका जाल डाले हुए माना ॥

८५—"यह बादलों के छोड़े हुए चन्द्रमा में मिली चांदनी है, तुल्य रूप समुद्र में पहुँची हुई गंगाहै" इस प्रकार समान गुण मिलने से प्रसन्न नगरनिवासियों ने वहां राजाओं के कान को कड़ुवा यही एक वचन कहा ॥

८६—राजाओं का वह समाज एक ओर प्रसन्न वर पक्षवाला दूसरी ओर उदास, सबेरे के खिले हुए कमलों और सोती हुई कुमोदिनियोंवाले सरोवर के समान हुआ ॥

छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥

---

८२ छड़ी रखनेवाली अर्थात् द्वारपालनी सुनन्दा ॥

सप्तमः सर्गः

अजेन्दुमत्योर्विवाहः ।

१ — अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां ।
स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम् ।
स्वसारमादाय विदर्भनाथः ।
पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ॥

२ — सेनानिवेशान् पृथिवीक्षितोऽपि ।
जग्मुर्विभातग्रहमन्दभासः ।
भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वात् ।
रूपेषु वेषेषु च साभ्यसूयाः ॥

३ — सान्निध्ययोगात् किल तत्र शच्याः ।
स्वयंवरक्षोभकृतामभावः ।
काकुत्स्थमुद्दिश्य समत्सरोऽपि ।
शशाम तेन क्षितिपाललोकः ॥

सातवां सर्ग

अजका विवाह इन्दुमती के साथ

१ – साक्षात् स्वामिकार्त्तिक सहित देवसेना की नाईं बहन को उसी के समान दूलह सहित लेकर विदर्भनाथ नगर में प्रवेश करने चला ॥

२ – सबेरे के तारों की नाईं मन्दज्योति राजालोग भी इन्दुमती में व्यर्थ मनोरथ होने से रूप और वेष की निंदा करते हुए छावनियों को गए ॥

३ – कहते हैं कि इन्द्राणी की समीपता के कारण वहां स्वयंवर में विघ्न डालनेवालों का अभाव था इसलिये राजाओं का ईर्षा भराहुआ समूह भी काकुत्स्थ को देखकर शान्त रहा ॥

१ देवसेना स्वामिकार्त्तिक की पत्नी थी ॥
३ शास्त्र का लेख है कि स्वयंवर में विघ्न करनेवालों को इन्द्राणी नाश करती है ॥

४ – तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारम्।
इन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम्।
वरः स वध्वा सह राजमार्गं।
प्राप ध्वजच्छायनिवारितोष्णम्॥

५ – ततस्तदालोकनतत्पराणां।
सौधेषु चामीकरजालवत्सु।
बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां।
त्यक्तान्यकार्य्याणि विचेष्टितानि॥

६ – आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या।
कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः।
बन्धुं न सम्भावित एव तावत्।
करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः॥

७ – प्रसाधिकालम्बितमग्रपादम्।
आक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षात्।
अलक्तकाङ्कां पदवीं ततान॥

८ – विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन।
सम्भाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसन्निकर्षं॥
ययौ शलाकामपरा वहन्ती॥

९ – जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या।
प्रस्थानभिन्नां न बबन्धनीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण।
हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः॥

४—तब नई मङ्गल सामग्रियों से रचे हुए, इन्द्रधनुष की नाईं चमकते हुए तोरणोंवाले, ध्वजाओं की छायासे मिटी हुई घामवाले, राजमार्ग में दुलहिन सहित वह दूलह गया ॥

५—उस समय उसके देखने की अभिलाषवती पुरवासिनियों की चेष्टा सोने की खिड़कियों के भवनों में और काम त्याग कर इस प्रकार की हुईं ॥

६—देखने के मार्ग (झरोखे) को शीघ्र जाती हुई किसी एक ने डोरा खुलजाने से गिरी हुई मालावाले हाथ में लिये हुए जूड़े को भी बांधने की सुध वहां पहुँचने तक न ली ॥

७—नायन का थामा हुआ पांव, आला महावर लगाहुआ ही, खैंचकर किसी मन्दगति त्यागती हुई ने मार्गको झरोखे तक लाख के रङ्ग से रच दिया ॥

८—दाहनी आंख को काजल से शोभित करके कोई उस से (अर्थात् कज्जल से) सूनी बाईं आंखवाली हाथ में सलाई लिए हुए ऐसेही झरोखे के निकट गई ॥

९—झरोखे में दीठ लगाई हुई कोई एक चलते में टूटी हुई नीवी को न बांध सकी; नाभि में गहने की चमक डालते हुए हाथ से वस्त्र थाम कर ठहर गई ॥

१०—अर्द्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः।
पदेपदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीम्।
अंगुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा॥

११—तासां मुखैरासवगन्धगर्भैः।
व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः।
सहस्रपत्राभरणा इवासन्॥

१२- ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यः।
नार्य्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां।
सर्व्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा॥

१३—स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः।
स्वयंवरं साधुममंस्त भोज्या।
पद्मेव नारायणमन्यथासौ।
लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम्॥

१४—परस्परेण स्पृहणीयशोभं।
न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्।
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः।
पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत्।

१०–किसी शीघ्र उठनेवाली की अधगूंथी तागड़ी उलटी सीधी चाल से पग पग पर गिरती हुई उस समय अंगूठे की जड़ पर बचे हुए डोरेवाली रह गई॥

११–उन बड़े चाववालियों के मुखों से, आसव की गन्ध वालों से, चलायमान नेत्ररूपी भौंरोंवालों से, भरेहुये झरोखे कमलों से सजाएहुओं के समान होगए॥

१२–राघव को आंखों से पीती हुई उन स्त्रियों ने और इन्द्रियों का सुख न देखा, क्योंकि उनके और इन्द्रियों की वृत्ति मानो सब प्रकार आंखों में आगई थी॥

१३–"विना देखेहुए राजाओं की चाही हुई इन्दुमती ने स्वयंवर श्रेष्ठ माना यह उचित था नहीं तो जैसे लक्ष्मी ने नारायण पाया वह अपने समान पति और भांति कैसे पाती"॥

१४–"जो इस अतिशोभायमान जोड़ी को परस्पर न मिलाता तो प्रजापति का इन में रूप रचने का यत्न व्यर्थ होता"॥

---

१० अर्थात् मोती गिरपड़े केवल डोरा रहगया॥

१५—रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां
राज्ञां सहस्रेषु तथाहि बाला।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव
मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम् ॥

१६—इत्युद्गताः पौरवधूमुखेभ्यः
शृण्वन् कथाः श्रोत्रसुखाः कुमारः।
उद्भासितं मङ्गलसंविधाभिः
सम्बन्धिनः सद्म समाससाद ॥

१७—ततोऽवतीर्य्याशु करेणुकायाः
स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः।
वैदर्भनिर्दिष्टमथो विवेश
नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः ॥

१८—महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ
सरत्नमर्घ्यं मधुपर्कमिश्रम्।
भोजोपनीतञ्च दुकूलयुग्मं
जग्राह सार्द्धं वनिताकटाक्षैः ॥

१९—दुकूलवासाः स वधूसमीपं
निन्ये विनीतैरवरोधरक्षैः।
वेलासकाशं स्फुटफेनराजिः
नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ॥

२०—तत्रार्च्चितो भोजपतेः पुरोधाः
हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः।
तमेव चाधाय विवाहसाक्ष्ये
वधूवरौ सङ्गमयाञ्चकार ॥

१५—"निस्सन्देह ये रति मनोज के अवतार हैं इसी से सहस्रों राजाओं में दुलहिन ने इस अपने ही समान को पाया; मनही जन्मान्तर की संगति का जाननेवाला होताहै" ॥

१६—इस भांति पुर की स्त्रियों के मुख से कही हुई कानों को सुख देनेवाली कथा सुनता हुआ कुमार मंगलरचना-ओं से शोभित किए हुए सम्बन्धी के घर में पहुँचा ॥

१७—फिर वह हथिनी से तुरन्त उतर कामरूप के राजा का हाथ पकड़ कर विदर्भनाथ के दिखलाए हुए मन्दिर में गया, मानो स्त्रियों के मनमें ॥

१८—बड़े मोल के सिंहासन पर बैठ कर उसने भोज का दिया हुआ मधुपर्क मिला हुआ रत्नों सहित अर्घ और कपड़े का जोड़ा स्त्रियों से कटाक्षों के साथ लिया ॥

१६—उस मखतूली वस्त्र पहने हुए को चतुर द्वारपालों ने दुलहिन के समीप पहुँचाया, मानो चन्द्रमा की नई किरणों ने चमकते हुए फेनपंक्तिवाले समुद्र को तट के समीप ॥

२०—वहां भोजराज के पूज्यमान अग्नितुल्य पुरोहित ने अग्नि को घी इत्यादि की आहुति देकर और उसी को विवाहसाक्षी करके वर कन्या को मिलाया, (अर्थात् गठजोड़ा किया) ॥

२१—हस्तेन हस्तं परिगृह्य वध्वाः।
स राजसूनुः सुतरां चकाशे।
अनन्तराशोकलताप्रवालं।
प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन॥

२२—आसीद् वरः कण्टकितप्रकोष्ठः।
स्विन्नांगुलिः संववृते कुमारी।
तस्मिन् द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिः।
समं विभक्तेव मनोभवेन॥

२३—तयोरपाङ्गप्रतिसारितानि।
क्रियासमापत्तिनिवर्तितानि।
ह्रीयन्त्रणामानशिरे मनोज्ञाम्।
अन्योन्यलोलानि विलोचनानि॥

२४—प्रदक्षिणप्रक्रमणात् कृशानोः।
उदर्च्चिषस्तन्मिथुनं चकाशे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्त्तमानम्।
अन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्॥

२५—नितम्बगुर्व्वी गुरुणा प्रयुक्ता।
वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन।
चकार सा मत्तचकोरनेत्रा।
लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ॥

२१–दुलहिन का हाथ हाथ में लेकर वह राजकुमार अधिक शोभायमान हुआ, जैसे निकट की अशोकलता के प्रवालों को डालियों से पकड़े हुए आम का वृक्ष ॥

२२–दूलह का पहुँचा पुलकित हुआ दुलहिन की अंगुली पसीजी, उस क्षण मानो कामदेव ने अपना बर्ताव उन दोनों में तुल्य बांट दिया ॥

२३–कोयों तक फैली हुईं, कामना की प्राप्ति से निवटी हुईं, परस्पर की तृष्णावाली, उन दोनों की आंखें लाज से सुन्दर संकोच को पहुँचीं ॥

२४–उठीहुई लौ की अग्नि को प्रदक्षिणा करने से वह जोड़ी शोभायमान हुई, जैसे सुमेरु के आस पास फिरतेहुए एक दूसरे से बँधे हुए दिन रात ॥

२५–उस ब्रह्मा सदृश गुरु की आज्ञा की हुई, बड़े नितम्बों वाली, मत्त चकोर के से नेत्रोंवाली, उस लज्जावती वधू ने अग्नि में अक्षत डाले ॥

---

२२ कामदेव का बर्ताव सात्विक भाव होता है जिसका गुण कांपना और पसीना आना इत्यादि है ॥

२६—हविःशमीपल्लवलाजगन्धी।
पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्याः।
मुहूर्त्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे॥

२७—तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं।
प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम्।
वधूमुखं पाटलगण्डलेखम्।
आचारधूमग्रहणाद् बभूव॥

२८—तौस्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा।
पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम्।
कन्याकुमारौ कनकासनस्थौ।
आर्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम्॥

२९—इति स्वसुर्भोजकुलप्रदीपः।
सम्पाद्य पाणिग्रहणं स राजा।
महीपतीनां पृथगर्हणार्थं।
समादिदेशाधिकृतानधिश्रीः॥

३०—लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते।
ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः।
वैदर्भमामन्त्र्य ययुस्तदीयां।
प्रत्यर्प्य पूजामुपदाच्छलेन॥

२६–हव्य और शमी और अक्षत की सुगन्धिवाला वह पवित्र धुआं अग्नि से उठकर कपोलों पर फैली हुई चोटीवाला क्षणमात्र उसके कानों को नील कमल बन गया ॥

२७–उस दुलही का मुख कज्जल मिले हुए आंसुओं से चलायमान नेत्रोंवाला, कुम्हलाए हुए यवांकुर के कर्ण-फूलोंवाला, आचार का धुआं लगने से लाल कपोलों वाला हुआ ॥

२८–सोने के आसनपर बैठेहुए उन दूलहा दुलहिन ने स्नातकों का और बान्धवों सहित राजा का और पति पुत्र वालियों का बारी बारी से आले धानबोना देखा ॥

२६–इस प्रकार उस भोजकुलदीपक श्रीमान् राजा ने बहन का ब्याह करके राजाओं में एक एक के आदर सत्कार निमित्त अधिकारियों को आज्ञादी ॥

३०–वे (राजा लोग) प्रसन्नता के चिह्नों से ईर्षा को छपाते हुए गुप्त नगरोंवाले निर्मल ताल की नाईं विदर्भनाथ से पूछकर उसकी दी हुई वस्तुओं को भेट के मिष से फेरकर चलदिए ॥

---

२८ स्नातक उस गृहस्थ को कहते हैं जो थोड़े दिन से गृहस्थ आश्रम में आया हो ॥

३१—स राजलोकः कृतपूर्व्वसंवित्।
आरम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम्।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तत्।
आवृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ॥

३२—भर्त्तापि तावत् क्रथकैशिकानाम्।
अनुष्ठितानन्तरजाविवाहः।
सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः।
प्रास्थापयद्राघवमन्वगाच्च॥

३३—तिस्रस्त्रिलोकीप्रथितेन सार्द्धम्।
अजेन मार्गे वसतीरुषित्वा।
तस्मादपावर्त्तत कुण्डिनेशः।
पर्व्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः॥

३४—प्रमन्यवः प्रागपि कोशलेन्द्रे।
प्रत्येकमात्तस्वतया बभूवुः।
अतो नृपाश्चक्षमिरे समेताः।
स्त्रीरत्नलाभं न तदात्मजस्य॥

३५—तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां।
रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः।
बलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं।
त्रैविक्रमं पादमिवेन्द्रशत्रुः॥

३६—तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधम्।
आदिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः।
प्रत्यग्रहीत् पार्थिववाहिनीं तां।
भागीरथीं शोण इवोत्तरङ्गः॥

३१—कार्य सिद्धि के निमित्त पहले सम्मति किया हुआ राजाओं का वह समूह, उस प्रमदारूपी पदार्थ के छीनने का इच्छावान्, अच्छा दावँ समझ कर अज का मार्ग रोक के खड़ा हुआ ॥

३२—तब क्रथकैशिक देशों के स्वामी (भोज) ने, छोटी बहन का ब्याह समाप्त किए हुए ने, उत्साह के अनुसार दायजे में लक्ष्मी दिए हुए ने, भी राघव को बिदा किया और आप पीछे गया ॥

३३—तीन लोक में जाने हुए अज के साथ मार्ग में तीन रात बस कर कुण्डिनपुर का नाथ उससे लौटा, मानो अमावस के अन्त में सूर्य से चन्द्रमा ॥

३४—कोशलेश (रघु) में पहलेही एक एक राजा धन छिनजाने के कारण वैर मानता था इसलिये सब मिल कर उसके पुत्र का स्त्री रत्न पाना न सहसके ॥

३५—उस गर्वित राजसमाज ने भोजकन्या को लिए जाता हुआ वह मार्ग में रोका, जैसे इन्द्रशत्रु (प्रह्लाद) ने बलि की दीहुई लक्ष्मी को हरताहुआ विष्णु का पांव ॥

३६—उस (इन्दुमती) की रक्षा के लिये बहुत योद्धाओं सहित बाप के मंत्री को आज्ञा देकर उस कुमार ने राजाओं की वह सेना रोकी, मानो बढ़ी हुई तरंग वाले सोनभद्र ने भागीरथी ॥

३७–पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशः।
तुरङ्गसादी तुरगाधिरूढम्।
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं।
तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्॥

३८–नदत्सु तूर्य्येष्वविभाव्यवाचः।
नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान्।
बाणाक्षरैरेव परस्परस्य।
नामोर्ज्जितं चापभृतः शशंसुः॥

३९–उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः।
सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः।
विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैः।
नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्य्यम्॥

४०–मत्स्यध्वजावायुवशाद्विदीर्णैः।
मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि।
बभुः पिबन्तः परमार्त्थमत्स्याः।
पर्य्याविलानीव नवोदकानि॥

४१–रथो रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे।
विलोलघण्टाक्वणितेन नागः।
स्वभर्तृनामग्रहणाद् बभूव।
सान्द्रे रजस्यात्मपरावबोधः॥

---

३९ नेत्रक्रमेण = अंशुकपरिपाट्या॥

३७–पैदल से पैदल लड़ा रथी से रथी घुड़चढ़े से घुड़चढ़ा हाथीचढ़े से हाथीचढ़ा तुल्य जोड़ोंका युद्ध हुआ ॥

३८–ध्वनि करती हुई तुरहियों में शब्द न सुनते हुए धनुष धारियों ने कुल के नाम उच्चारण न किए, बाणों के अक्षरोंही से एक ने दूसरे को (अपना) विख्यात नाम जताया ॥

३९–युद्ध में घोड़ों की उठाई हुई, रथ समूह के पहियों की गहरी कीहुई, हाथियों के कर्णतालों की फैलाई हुई, धूलि ने सूर्य को कपड़े की नाईं ढक दिया ॥

४०–मत्स्याकार ध्वजाओं ने पवन के खोले हुए मुखों से सेना की गहरी रज पीते हुए शोभा पाई, मानो सच्ची मछलियों ने नया बदला जल पीते हुए ॥

४१–पहियों की ध्वनि से रथ जाना गया, हिलते हुए घंटे के टहनाने से हाथी; गहरी धूलि में अपने पराए का बोध स्वामी का नाम लेने से हुआ ॥

४२—आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ।
रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य।
शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा।
बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः॥

४३—सच्छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुः।
तस्योपरिष्टात् पवनावधूतः।
अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य।
पूर्वोत्थितो धूम इवाबभासे॥

४४—प्रहारमूर्च्छापगमे रथस्थाः।
यन्तॄनुपालभ्य निवर्त्तिताश्वान्।
यैः सादिता लक्षितपूर्व्वकेतून्।
तानेव सामर्षतया निजघ्नुः॥

४५—अप्यर्द्धमार्गे परबाणलूनाः।
धनुर्भृतां हस्तवतां पृषत्काः।
संप्रापुरेवात्मजवानुवृत्त्या।
पूर्व्वार्द्धभागैः फलिभिः शरव्यम्।

४६—आधोरणानां गजसन्निपाते।
शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः।
हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटि-।
व्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः॥

---

४५ हस्तवतां पृषत्काः = निपुणधनुर्धराणां शराः॥
४६ गजसन्निपाते = गजयुद्धे॥

४२–युद्ध में नेत्रों का मार्ग रोकनेवाली फैली हुई धूलि के अंधेरे को शस्त्रों से छिदे हुए घोड़ों और हाथियों और वीरों के लोहू का प्रवाह सबेरे का सूर्य बनगया ॥

४३–लोहू से जड़ कटी हुई वह धूलि उसी के ऊपर पवन से हिलती हुई (ऐसे) दिखलाई दी मानो अङ्गारमात्र बचीहुई आग के ऊपर आगे उठा हुआ धुआं ॥

४४–प्रहार की मूर्च्छा मिटने पर रथियों ने घोड़े हटा लेजानेवाले सारथियों को धिक्कार देकर जिन्हों ने प्रहार किया था पहिले उन्हीं को देखी हुई ध्वजाओं से पहचान कर रोष से मारा ॥

४५–आधे मार्ग में वैरी के बाणों से कटेहुए भी निपुण धनुषधारियों के बाण अपने वेग के कारण भालवाले अगले आधे भाग से बेझही पर पहुँचे ॥

४६–गजयुद्ध में हाथी पर चढ़नेवालों के शिर छुरे के समान पैनी धार के चक्रों से कटे हुए भी चील्हों के नखों में केश फँस कर बहुत बेर पीछे गिरे ॥

---

४३ जड़ कटी हुई अर्थात् जहां पृथ्वी पर लोहू गिरा वहां धूलि का उठना मिट गया उसी लोहू पर छाई हुई धूलि ऐसी दीखी मानो अङ्गार पर धुआं ॥

४४ सारथि का धर्म है कि जब रथी घायल हो उसे रथ में घोड़ों समेत युद्ध से बाहर ले जाय ॥

४७—पूर्व्वं प्रहर्त्ता न जघान भूयः।
प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी।
तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं।
प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकाङ्क्ष॥

४८—तनुत्यजां वर्म्मभृतां विकोशैः।
बृहत्सु दन्तेष्वसिभिः पतद्भिः।
उद्यन्तमग्निं शमयाम्बभूवुः।
गजा विविग्नाः करशीकरेण॥

४९—शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या।
च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव।
रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या।
रराज मृत्योरिव पानभूमिः॥

५०—उपान्तयोर्निष्कुषितं विहङ्गैः।
आक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा।
शिवाभुजच्छेदमपाचकार॥

५१—कश्चित् द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः।
सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य।
वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः स्वं।
नृत्यत् कबन्धं समरे ददर्श॥

४७–पहले प्रहार किये हुए घुड़चढ़े ने पलटे का प्रहार करने में असमर्थ वैरी को, घोड़े के कन्धेपर देह रक्खे हुए को, दूसरी बार न मारा उसके फिर जीने की आकांक्षा की॥

४८-तनके निःस्पृही कवचधारियों के नंगे खड्ग बड़े दांतों में लगने से उठी हुई आग भयभीत हाथियों ने सूंड़ के जल से बुझाई॥

४९–बाणों से कटेहुए शीशरूपी फलोंवाली, गिरेहुए टोपों रूपी कटोरे आगे रक्खी हुई, लोहूरूपी मदिरा की नदी वाली, रणभूमि मृत्यु की पानभूमि के समान दिखलाई दी॥

५०–दोनों शिरों पर पक्षियों का कुरेदा हुआ बांह का टुकड़ा उन्हीं (पक्षियों) से गिरवा कर भुजबन्द की नोक से तालू छिदी हुई मांसकी लोभिन स्यारनी ने भी छोड़ दिया॥

५१–वैरी के खड्ग से किसी शिर कटे हुए ने, तुरन्त देवतापन पाकर बाएँ अंगमें सुरांगना लिये हुए ने, रण में अपना नाचता हुआ धड़ देखा॥

---

४९ शीशहै सोई नारंगी इत्यादि फल हैं, टोप हैं सोई प्याले हैं, लोहू की नदी है सोई मदिरा है, ऐसी रणभूमि मृत्यु की मदिरा पीने की भूमि के समान दिखलाई दी॥

५२—अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां।
तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित्।
व्यश्वौ गदाव्यायतसंप्रहारौ।
भग्नायुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ॥

५३—परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोः।
उत्क्रान्तवाय्वोःसमकालमेव।
अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीत्।
एकाप्सरःप्रार्थितयोर्विवादः॥

५४—व्यूहावुभौ तावितरेतरस्मात्।
भङ्गंजयञ्चापतुरव्यवस्थम्।
पश्चात् पुरोमारुतयोः प्रवृद्धौ।
पर्य्यायवृत्त्येव महार्णवोर्मी॥

५५—परेण भग्नेपि वले महौजाः।
ययावजः प्रत्यरिसैन्यमेव।
धूमो निवर्त्तेत समीरणेन।
यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः॥

५६—रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्।
दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः।
निवारयामास महावराहः।
कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः॥

५७—स दक्षिणं तूणमुखेन वामं।
व्यापारयन् हस्तमलक्ष्यताजौ।
आकर्ण्यकृष्टा सकृदस्य योद्धुः।
मौर्वीव बाणान् सुषुवे रिपुघ्नान्॥

५२-कोई दो (योद्धा) परस्पर सारथियों के मारे जाने से आपही रथी और सारथि बने, घोड़ों के विना रह कर बड़ी गदाओं से लड़े, हथियार टूट जाने पर बांह युद्ध करते हुए मरे ॥

५३-आपस में प्रहार करके कटे हुए, एक साथ प्राण छोड़े हुए, एकही अप्सरा में चाह रखते हुए, किन्हीं दो योद्धाओं का विवाद देवतापन में भी हुआ ॥

५४-उन दोनों सेनाओं ने एक दूसरी से अनिश्चय जीत और हार पाई, जैसे बारीबारी से आगे पीछे की पवन की बढ़ाई हुई महासमुद्र की दो लहरों ने ॥

५५-वैरी का सेना भंग किया हुआ भी महाबली अज वैरी की सेनाही की ओर गया, धुआं पवन से हट जाताहै (परन्तु) जहां काठहै वहीं अग्नि है ॥

५६-रथपर चढ़े हुए, निषंग लिए हुए, कवच पहने हुए, धनुष धरे हुए, उस अकेले गर्वित वीर ने राजाओं का समूह हटाया, जैसे कल्प के अन्त में समुद्र का उठा हुआ जल महावराह ने ॥

५७-वह निषंग के मुखपर सुन्दर दाहना हाथ रखता हुआ युद्ध में दिखलाई दिया; एकबार कानतक खैंची हुई उस योद्धा की प्रत्यञ्चा ने मानो वैरियों के मारनेवाले बाण उत्पन्न किए ॥

५८—सरोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः।
व्यक्तोर्द्ध्वरेखाभृकुटीर्वहद्भिः।
तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठैः।
हुङ्कारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः॥

५९—सर्व्वैर्बलाङ्गैर्द्विरदप्रधानैः।
सर्व्वायुधैः कङ्कटभेदिभिश्च।
सर्व्वप्रयत्नेन च भूमिपालाः।
तस्मिन् प्रजह्रुर्युधि सर्वएव॥

६०—सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथः परेषां।
ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः।
नीहारमग्नो दिनपूर्व्वभागः।
किञ्चित्प्रकाशेन विवस्वतेव॥

६१—प्रियंवदात् प्राप्तमसौ कुमारः।
प्रायुङ्क्त राजस्वधिराजसूनुः।
गान्धर्व्वमस्त्रं कुसुमास्त्रकान्तः।
प्रस्वापनं स्वप्ननिवृत्तलौल्यः॥

६२—ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तम्।
एकांसपर्य्यस्तशिरस्त्रजालम्।
तस्थौ ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं।
निद्राविधेयं नरदेवसैन्यम्॥

६३—ततःप्रियोपात्तरसेऽधरौष्ठे।
निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः।
तेन स्वहस्तार्ज्जितमेकवीरः।
पिबन् यशो मूर्त्तमिवाबभासे॥

५८-उसने वैरियों के शीशों से, रोष करके दांतों के चाबे हुए अधिक लाल होठवालों से, उठी हुई प्रकट ऊर्द्ध्व रेखा सहित भौंहवालों से, भाल से गला कटे हुओं से, हुङ्कार करते हुओं से, पृथ्वी ढकदी ॥

५९-जिन में हाथी मुख्य हैं ऐसे सेना के सब अङ्गों से और कवच छेदनेवाले सब हथियारों से और सब यत्नों से सबही राजाओं ने उस पर लड़ाई में प्रहार किया ॥

६०-वैरियों के हथियारों से ढके हुए रथवाला वह केवल ध्वजा के अगले भाग से जाना जाता था, जैसे कुहर में डूबा हुआ प्रभात कुछ चमकते हुए सूर्य से ॥

६१-(निदान) प्रियंवद से पाया हुआ निद्रा उपजानेवाला गन्धर्वी अस्त्र उस महाराजकुमार ने, कामदेव की कान्ति वालेने, निद्राछोड़े हुए ने, राजाओं पर छोड़ा ॥

६२-तब धनुष खैंचने में शिथिल हाथोंवाली, एक कन्धे पर पगड़ियों के पेंच पड़ी हुई, ध्वजा के बांसों से शरीर लगाई हुई, राजाओं की सेना निद्राके वश खड़ी रहगई ॥

६३-फिर प्यारी का रस लिए हुए होठों पर रखकर कुमार ने शंख फूंका, जिससे अकेला वीर अपने हाथों से प्राप्त किए हुए मूर्त्तिमान् यश को पीता हुआ सा दिखलाई दिया ॥

६४—शङ्खस्वनाभिज्ञतया निवृत्ताः।
तं सन्नशत्रुं ददृशुः स्वयोधाः।
निमीलितानामिव पङ्कजानां।
मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशाङ्कम्॥
६५—सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रैः।
निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम्।
यशो हृतं संप्रति राघवेण।
न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः॥
६६—स चापकोटीनिहितैकबाहुः।
शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः।
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुः।
भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे॥
६७—इतः परानर्भकहार्य्यशस्त्रान्।
वैदर्भि पश्यानुमता मयासि।
एवंविधेनाहवचेष्टितेन।
त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः॥
६८—तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्।
सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे।
निश्वासबाष्पापगमात् प्रपन्नः।
प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः॥
६९—हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षात्।
वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत्।
स्थली नवाम्भःपृषताभिवृष्टा।
मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम्॥

६४–शंखध्वनि की पहचान से लौटकर आए हुए उसके योद्धाओं ने उस सोते हुए वैरियोंवाले को देखा, मानो मूंदेहुए कमलों के बीचमें प्रकाशमान चन्द्रविम्ब को ॥

६५–उसने लोहू भरेहुए मुखवाले बाणोंकी नोक से राजाओं की ध्वजाओं में ये अक्षर लिखदिए अब "तुम्हारा यश रघुके पुत्र ने लेलिया दया करके जीव नहीं लिया" ॥

६६–वह धनुष की नोक पर एक हाथ रक्खे हुए, पगड़ी सरकजाने से ढीले जूड़ेवाला, माथे पर पसीने की की बूंदवाला, डरीहुई प्यारी के पास जाकर वचन बोला ॥

६७–"हे वैदर्भि ! मैंने तुझे आज्ञादी अब तू बालकों के छीनने योग्य हथियारोंवाले वैरियों को देख, ये इस प्रकार की युद्धचेष्टा से तुझ मेरे हाथ लगी हुई को चाहते हैं" ॥

६८–वैरी के डर से उपजे हुए दुःख से छूटा हुआ उसका मुख तुरन्त कान्तिवाला हुआ, जैसे श्वास की भाप के पुछ जाने से अपनी निर्मलता पाया हुआ दर्पण ॥

६९–प्रसन्न होकर भी उस लाज की जीती हुई ने प्यारे को स्पष्ट नहीं सराहा सखियों की वाणी से सराहा, जैसे नये जलकी बूंदों से छिड़की हुई भूमि ने मेघ समूह को मोरों के शब्दों से ॥

७०–इतिशिरसिसवामंपादमाधाय राज्ञाम्।
उदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः।
रथतुरगरजोभिस्तस्य रूक्षालकाग्रा।
समरविजयलक्ष्मीः सैवमूर्त्ता बभूव॥
७१–प्रथमपरिगतार्थैस्तं रघुः सन्निवृत्तं।
विजयिनमभिनन्द्यश्लाघ्यजायासमेतम्।
तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभूत्।
नहिसतिकुलधुर्य्येसूर्य्यवंश्यागृहाय॥

इति श्रीरघुवंशे सप्तमः सर्गः॥

७०-इस प्रकार राजाओं के सिर पर बायां पैर रखकर वह निर्दोषी उस दोषरहित को लेगया; उसके रथों और घोड़ों की धूल से रूखे केशोंवाली वही रण की मूर्त्तिमान विजयलक्ष्मी हुई ॥

७१-आगेही वृत्तान्त सुने हुए रघु ने अच्छी वधू समेत निकट आए हुए विजई को सराह कर (और) उसको कुटुम्ब सौंपकर शान्ति मार्ग चाहा ॥ कुल का बोझ उठानेवाले (पुत्र) के होते हुए सूरजवंशी गृहस्थ आश्रम के लिये नहीं होते हैं ॥

सातवां सर्ग समाप्त हुआ

अष्टम:सर्गः

अजविलापः

१-अथ तस्य विवाहकौतुकं ।
ललितं बिभ्रत एव पार्थिवः ।
वसुधामपि हस्तगामिनीम् ।
अकरोदिन्दुमतीमिवापराम् ॥
२-दुरितैरपि कर्त्तुमात्मसात् ।
प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत् ।
तदुपस्थितमग्रहीदजः ।
पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया ॥
३-अनुभूय वसिष्ठसम्भृतैः ।
सलिलैस्तेन महाभिषेचनम् ।
विशदोच्छ्वसितेन मेदिनी ।
कथयामास कृतार्थतामिव ॥
४-स बभूव दुरासदः परैः ।
गुरुणाथर्व्वविदा कृतक्रियः ।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं ।
सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा ॥

आठवां सर्ग

अज का विलाप

१—तब राजा ने उस सुन्दर विवाहकंकण पहने हुएही को पृथ्वी भी दूसरी इन्दुमती की नाईं हस्तगत करदी ॥

२—जिसको अपनी करने के लिये राजपुत्र बुरे उपायों से भी यत्न करते हैं सो (पृथ्वी) आप सामने आई हुई अज ने इसलिये अंगीकार की कि पिता की आज्ञा है न कि भोग की तृष्णा से ॥

३—वसिष्ठ के इकट्ठे किए हुए जलों से उसके साथ महा अभिषेक पाकर पृथ्वी ने मानो उज्जल भापसे (अपना) कृतार्थपन जताया ॥

४—अथर्व वेद जाननेवाले गुरू का अभिषेक कराया हुआ वह वैरियों को अजित हुआ; ब्रह्म तेज सहित जो क्षत्रिय तेज है यही अग्नि पवन का संयोग है ॥

---

१ हस्तगत = हाथ में आई हुई अथवा प्राप्त ॥

५—रघुमेव निवृत्तयौवनं।
तममन्यन्त नवेश्वरं प्रजाः।
सहि तस्य न केवलां श्रियं।
प्रतिपेदे सकलान् गुणानपि॥

६—अधिकं शुशुभे शुभंयुना।
द्वितयेन द्वयमेव संगतम्।
पदमृद्धमजेन पैतृकं।
विनयेनास्य नवञ्च यौवनम्॥

७—सदयं बुभुजे महाभुजः।
सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति।
अचिरोपनतां स मेदिनीं।
नवपाणिग्रहणां वधूमिव॥

८—अहमेव मतो महीपतेः।
इति सर्व्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत्।
उदधेरिव निम्नगाशते-।
ष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित्॥

९—न खरो न च भूयसा मृदुः।
पवमानः पृथिवीरुहानिव।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमः।
नमयामास नृपाननुद्धरन्॥

५–प्रजा ने उस नए राजा को यौवन लौटा हुआ रघुही माना, क्योंकि उसने केवल उस की लक्ष्मी ही नहीं सब गुण भी लिये थे॥

६–दूसरे के साथ होकर दोही अधिक शोभायमान हुए, अज के साथ बापदादे की ऋद्धमान पदवी और उसकी नम्रता के साथ नया यौवन॥

७–"बलात्कार से यह तुरन्त डर जाती है, इसलिये उस बड़ी भुजा वाले ने नई पाई हुई पृथ्वी को नवोढ़ा वधू की नाईं दया से भोगा॥

८–"राजा का प्यारा मैंहींहूं" ऐसा प्रजा में सब ने जाना; उसकी अरुचि किसी में न थी जैसे नदियों के सैकड़ों मेंसे (किसी में) समुद्र की॥

९–न बहुत तीक्षण और न बहुत कोमल उस मध्यम परिपाटी स्वीकार किए हुए ने राजाओं को विना उखाड़े झुका दिया, जैसे पवन ने वृक्षों को॥

---

८ सैकड़ों नदी समुद्र में मिलती हैं वह किसी का अनादर नहीं करता ऐसेही अज ने प्रजा में किसी का अनादर न किया॥

९ मध्यम परिपाटी का सम्बन्ध राजा और पवन दोनों से है॥

१०—अथ वीक्ष्य रघुः प्रतिष्ठितं।
प्रकृतिष्वात्मजमात्मवत्तया।
विषयेषु विनाशधर्म्मसु।
त्रिदिवस्थेष्वपि निःस्पृहोऽभवत्॥

११—गुणवत्सुतरोपितश्रियः।
परिणामे हि दिलीपवंशजाः।
पदवीं तरुवल्कवाससां।
प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे॥

१२—तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं।
शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः।
पितरं प्रणिपत्य पादयोः।
अपरित्यागमयाचतात्मनः॥

१३—रघुरश्रुमुखस्य तस्य तत्।
कृतवानीप्सितमात्मजप्रियः।
न तु सर्प इव त्वचं पुनः।
प्रतिपेदे व्यपवर्जितां श्रियम्॥

१४—स किलाश्रममन्त्यमाश्रितः।
निवसन्नावसथे पुराद्बहिः।
समुपास्यत पुत्रभोग्यया।
स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया।

१०—तब बेटे को अपने गौरव से राजसेवकों में प्रतिष्ठित देखकर रघु स्वर्ग के भी विनाशमान विषयों में निस्पृही हुआ, ॥

११—क्योंकि गुणवान् पुत्र को लक्ष्मी सौंपकर पवित्र दिलीप वंशी अन्त में वृक्ष की छाल ओढ़नेवाले योगियों की पदवी लेते थे ॥

१२—वनवास को चलते हुए उस पिता को बेटे ने शोभायमान चीरेवाले सिर से चरणों में प्रणाम करके अपना न छोड़ना मांगा ॥

१३—बेटे पर प्यार करनेवाले रघु ने उस रोते हुए का वह चाहा हुआ किया, परन्तु त्यागी हुई लक्ष्मी को फिर न लिया जैसे सांप ने केंचली को ॥

१४—कहते हैं कि पिछला (अर्थात् संन्यास) आश्रम लेकर नगर से बाहर स्थान में रहते हुए उस जितेन्द्रिय को पुत्रभोग्या लक्ष्मी ने पुत्रवधू की नाईं भलेप्रकार सेवन किया ॥

---

१४ पुत्रभोग्या अर्थात् पुत्र के भोगने योग्य ॥

१५—प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवं।
कुलमभ्युद्यतनूतनेश्वरम्।
नभसा निभृतेन्दुना तुलाम्।
उदितार्केण समारुरोह तत्॥
१६—यदिपार्थिवलिङ्गधारिणौ।
ददृशातेरघुराघवौ जनैः।
अपवर्गमहोदयार्थयोः।
भुवमंशाविव धर्म्मयोर्गतौ॥
१७—अजिताधिगमाय मन्त्रिभिः।
युयुजे नीतिविशारदैरजः।
अनपायिपदोपलब्धये।
रघुराप्तैः समियाय योगिभिः॥
१८—नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं।
व्यवहारासनमाददे युवा।
परिचेतुमुपांशुधारणां।
कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम्॥
१९—अनयत् प्रभुशक्तिसम्पदा।
वशमेको नृपतीननन्तरान्।
अपरः प्रणिधानयोग्यया।
मरुतः पञ्च शरीरगोचरान्॥

१५–शान्ति में बैठते हुए पहले राजावाला और वैभव में उठते हुए नए राजावाला वह वंश छुपते हुए चन्द्रमा और निकलते हुए सूरजवाले आकाश की तुल्यता को पहुंचा॥

१६–योगियों और राजाओं के चिह्न धारण किए हुए रघु राघव को प्रजा ने (ऐसे) देखा मानो मोक्ष और ऐश्वर्य रूपी दो अर्थ देनेवाले धर्मों के पृथ्वी पर आए हुए दो अंशों को॥

१७–अजित पदवी के लिये अजने नीति जाननेवाले मंत्रियों से संगत की, मोक्ष पदवी पाने के निमित्त रघुने आप्त योगियों से मिलाप किया॥

१८–प्रजाकी परीक्षा निमित्त नए राजा ने धर्मासनलिया, और एकान्त में चित्त की एकाग्रता के अभ्यास निमित्त बूढ़े ने पवित्र कुशासन॥

१९–एक ने प्रभुत्व और शक्ति की महिमा से आसपास के राजा वश किए, दूसरे ने योगाभ्यास से शरीर में फिरनेवाले पांच वायु॥

---

१६ राघव=रघु का बेटा अर्थात् अज॥ मोक्षदेनेवाला निवर्त्तक धर्म और ऐश्वर्य्य देनेवाला प्रवर्त्तक धर्म है॥

१७ यथार्थ देखने और यथार्थ कहनेवाले को आप्त कहते हैं॥
अजित=जो किसी से न जीता जाय॥

२०—अकरोदचिरेश्वरः क्षितौ।
द्विषदारम्भफलानि भस्मसात्।
इतरो दहने स्वकर्म्मणां।
ववृते ज्ञानमयेन वह्निना॥

२१—पणबन्धमुखान् गुणानजः।
षडुपायुङ्क्त समीक्ष्य तत्फलम्।
रघुरप्यजयद् गुणत्रयं।
प्रकृतिस्थं समलोष्टकाञ्चनः॥

२२—न नवः प्रभुराफलोदयात्।
स्थिरकर्म्मा विरराम कर्म्मणः।
न च योगविधेर्नवेतरः।
स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात्॥

२३—इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च।
प्रतिषिद्धप्रसरेसु जाग्रतौ।
प्रसितावुदयापवर्गयोः।
उभयीं सिद्धिमुभाववापतुः॥

२४—अथकाश्चिदजव्यपेक्षया।
गमयित्वा समदर्शनः समाः।
तमसः परमापदव्ययं।
पुरुषं योगसमाधिना रघुः॥

२०—नए राजा ने पृथ्वी में वैरियों के उद्योगों के फल भस्म किए, दूसरा ज्ञानकी अग्नि से अपने कर्मों के जलाने में प्रवृत्त हुआ॥

२१—अज ने पण आदि ६ गुण इनके फल जानकर वर्ते मिट्टी सोना समान जानने वाले रघु ने भी माया के तीन गुण जीते॥

२२—नया दृढ़कर्मा स्वामी फल के उदय तक उद्योग करने से न बैठ रहा और न शान्ति बुद्धिवाला बूढ़ा परमात्मा के दर्शन तक योग की विधि से॥

२३—इस प्रकार स्वार्थ भंग होनेवाले वैरियों में और इन्द्रियों में जगते हुओं ने, लक्ष्मी और मोक्ष के आसक्तों ने, दोनों ने दोनों सिद्धि पाई॥

२४—फिर उस समदर्शी रघु ने अज की आकांक्षा पूर्व्वक कुछ बरस बिताकर योग समाधि के द्वारा अक्षयपुरुष को, माया से परे को, पाया॥

---

२१ छः गुण ये हैं मिलाप लड़ाई चढ़ाई विश्राम छिद्र आश्रय॥

२५—श्रुतदेहविसर्ज्जनः पितुः।
चिरमश्रूणि विमुच्य राघवः।
विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं।
यतिभिः सार्द्धमनग्निमग्निचित्॥
२६—अकरोत् स तदौर्द्ध्वदैहिकं।
पितृभक्त्या पितृकार्य्यकल्पवित्।
न हि तेन पथा तनुत्यजः।
तनयावर्ज्जितपिण्डकाङ्क्षिणः॥
२७—स परार्द्धगतेरशोच्यतां।
पितुरुद्दिश्य सदर्थवेदिभिः।
शमिताधिरधिज्यकार्मुकः।
कृतवानप्रतिशासनं जगत्॥
२८—क्षितिरिन्दुमती च भामिनी।
पतिमासाद्य तमग्र्यपौरुषम्।
प्रथमा बहुरत्नसूरभूत्।
अपरा वीरमजीजनत् सुतम्॥
२९—दशरश्मिशतोपमद्युतिं।
यशसा दिक्षु दशस्वपि श्रुतम्।
दशपूर्व्वरथं यमाख्यया।
दशकण्ठारिगुरुं विदुर्बुधाः॥

---

२५ नैष्ठिकं=अन्तेभवं अर्थात् अन्तिकं कर्म्म॥
२६ और्ध्वदैहिकं=पिण्डदानादिकम्॥

२५—पिता का देह त्याग सुने हुए राघव ने, अग्निहोत्र रखने वाले ने, बहुत काल आँसू गिराकर उसकी अन्त क्रिया योगियों सहित अग्नि के विना करी ॥

२६—उस पितृकर्म के ज्ञानी ने पिता भक्ति से उसके और्ध्वदैहिक कर्म (पिण्डदान इत्यादि) किये; इस भांति शरीर छोड़ने वाले लोग पुत्रों के दिये हुए पिण्डों के आकांक्षी नहीं होते ॥

२७—अच्छी गति पाए हुए पिता की अशोकता दिखलाकर परमार्थ ज्ञानियों के व्याधि मिटाए हुए ने, चढ़ी प्रतिज्ञावाले उस धनुषधारी ने, जगत् को दूसरे की आज्ञा से रहित कर दिया ॥

२८—पृथ्वी और इन्दुमती भामिनी उस महाप्रतापी पति को पाकर पहली बहुत रत्न उपजानेवाली हुई दूसरी ने वीर पुत्र जना; ॥

२९—जिस दश सौ किरणवाले (सूरज) समान कान्तिमान को, यशों से दशो दिशा में सुने हुए को, दश कण्ठारि के पिता को, पण्डित लोग नाम करके रथसे पहले दश जानते हैं (अर्थात् दशरथ) ॥

---

२७ ऐसी अच्छी गति पाए पिता के लिये शोक करना न चाहिये यह कहकर योगियों ने अज का शोक मिटाया उसी अजने सब पृथ्वी जीती अर्थात् किसी दूसरे की आज्ञा न चलने दी ॥

२९ दशकण्ठारि नाम रामचन्द्र का ॥

३०—ऋषिदेवगणस्वधाभुजां।
श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिवः।
अनृणत्वमुपेयिवान् बभौ।
परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितिः॥

३१—बलमार्त्तभयोपशान्तये।
विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम्।
वसु तस्य विभोर्न केवलम्।
गुणवत्तापि परप्रयोजना॥

३२—स कदाचिदवेक्षितप्रजः।
सह देव्या विजहार सुप्रजाः।
नगरोपवने शचीसखः।
मरुतां पालयितेव नन्दने॥

३३—अथ रोधसि दक्षिणोदधेः।
श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम्।
उपवीणयितुं ययौ रवेः।
उदयावृत्तिपथेन नारदः॥

३४—कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः।
स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम्।
अहरत् किल तस्य वेगवान्।
अधिवासस्पृहयेव मारुतः॥

३०-वेद और यज्ञ और सन्तान से वह राजा ऋषियों और देवताओं और पितृयों की अऋणता को पहुँच कर शोभायमान हुआ, जैसे परिधि से छुटा हुआ सूरज ॥

३१-डरे हुओं का डर दूर करने के लिए बल, पण्डितों के सत्कार निमित्त बड़ा शास्त्र ज्ञान, उस भाग्यमान का केवल धनही नहीं गुणीपन भी पराए प्रयोजन साधने वाला था ॥

३२-एक समय प्रजा को देखते हुए उस अच्छी सन्तान वाले ने रानी समेत नगर के उपवन में विहार किया, जैसे नन्दन वन में शची के सखा देवताओं की रक्षा करनेवाले (इन्द्र) ने ॥

३३-उसी समय दक्षिण समुद्र के तटपर गोकर्ण में बसने वाले महादेव जी को गाना सुनाने के लिये सूरज के निकलने और घूमने के मार्ग होकर नारदजी गए ॥

३४-कहते हैं कि दिव्य फूलों से गुँथी हुई उनकी वीणा के सिर पर रक्खी हुई माला वेगवान् पवन ने लेली, मानो सुगन्धि की ईर्षा से ॥

---

३० सूरज के हाले को परिधि कहते हैं मनुष्य पर तीन ऋण हैं एक देवताओं का दूसरा ऋषियों का तीसरा पितृयों का पहला वेद पढ़ने से चुकता है दूसरा यज्ञ करने से तीसरा सन्तान होने से ॥

३३ सूरज के निकलने और घूमने का मार्ग आकाश है ॥

३५—भ्रमरैः कुसुमानुसारिभिः ।
परिकीर्णा परिवादिनी मुनेः ।
ददृशे पवनावलेपजं ।
सृजतीबाष्पमिवाञ्जनाविलम् ॥

३६—अभिभूय विभूतिमार्त्तवीं ।
मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम् ।
नृपतेरमरस्त्रगाप सा ।
दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम् ॥

३७—क्षणमात्रसखीं सुजातयोः ।
स्तनयोस्तामवलोक्यविह्वला ।
निमिमील नरोत्तमप्रिया ।
हृतचन्द्रा तमसेव कौमुदी ॥

३८—वपुषा करणोज्झितेन सा ।
निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना ।
सहदीपार्च्चिरुपैतिमेदिनीम् ॥

३९—उभयोरपि पार्श्ववर्त्तिनां ।
तुमुलेनार्त्तरवेण वेजिताः ।
विहगाः कमलाकरालयाः ।
समदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः ॥

३५—फूलों के पीछे चलनेवाले भौंरों से घिरी हुई मुनि की वीणा पवन के झोंके से उपजे हुए, काजल से काले, आंसू गिराती हुई सी दीखी॥

३६—लताओं के ऋतु वैभव को मधु और गन्धि की अधिकता से तिरस्कार करके उस दिव्य माला ने राजा की स्त्री के स्तन की चोटी पर ठैरना पाया॥

३७—सुन्दर स्तनों की उस छिन मात्र सखी को देखते ही नरोत्तम की प्यारी विह्वल होकर दीर्घनिद्रा को गई, मानो राहु के ग्रसे हुए चन्द्रमा की चांदनी॥

३८—इन्द्रियों के त्यागे हुए शरीर से उस गिरती हुई ने पति को भी गिराया॥ क्या टपकते हुए तेल की बूंद के साथ दीपक की शिखा धरती पर नहीं गिरती है॥

३९—वहां दोनों के सेवकों के बड़े रोने से डरे हुए ताल के पक्षी भी समान दुखियों की नाईं रोए॥

---

३७ दीर्घनिद्रा अर्थात् मरना॥
३८ राजा मूर्च्छित हुआ॥

४०—नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमः।
नुनुदे सा तु तथैव संस्थिता।
प्रतिकारविधानमायुषः।
सति शेषे हि फलाय कल्पते॥

४१—प्रतियोजयितव्यवल्लकी।
समवस्थामथ सत्वविप्लवात्।
स निनाय नितान्तवत्सलः।
परिगृह्योचितमङ्कमङ्गनाम्॥

४२—पतिरङ्कनिषण्णया तया।
करणापायविभिन्नवर्णया।
समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां।
मृगलेखामुषसीव चन्द्रमाः॥

४३—विललाप स वाष्पगद्गदं।
सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं।
भजते कैव कथा शरीरिषु॥

४४—कुसुमान्यपि गात्रसङ्गमात्।
प्रभवन्त्यायुरपोहितुंयदि।
न भविष्यति हन्त साधनं।
किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः॥

४०–राजा की मूर्च्छा पंखे इत्यादि से दूर हुई, परन्तु वह वैसेही रही; औषधि का उपाय आयु के शेष रहते ही फल देता है ॥

४१–तब चैतन्यता मिटजाने से विना तारचढ़ी हुई वीणा की नाईं उस प्यारी को अतिप्रेमी ने उठाकर उचित गोद में रक्खा ॥

४२–गोद में रक्खी हुई से, इन्द्रियों के अभाव में रंग पलटी हुई से, पति (ऐसा) दिखलाई दिया मानो प्रभात समय मैली मृगलेखा लिए हुए चन्द्रमा ॥

४३–आंसुओंसे गदगद उसने स्वभाविक धीरज भी छोड़कर विलाप किया ॥ तपाया हुआ लोहा भी कोमलता को जाता है फिर देहधारियों में क्या न कहना चाहिये ॥

४४–"जब फूल भी देह के संग से आयु का नाश करने को समर्थ हुए तौ हाय मारनेवाले दई का साधन और कौनसी वस्तु न होगी" ॥

---

४१ उचित गोद से तात्पर्य्य यह है कि जिस गोद में पहले बैठा करती थी अथवा जो उसके बैठने योग्य थी ॥

४५—अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं ।
मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे ।
नलिनी पूर्व्वनिदर्शनं मता ॥

४६—स्रगियं यदि जीवितापहा ।
हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेत् ।
अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥

४७—अथवा मम भाग्यविप्लवात् ।
अशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः ।
क्षपिता तद्विटपाश्रितालता ॥

४८—कृतवत्यासि नावधीरणाम् ।
अपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ।
कथमेकपदे निरागसं ।
जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ॥

४९—ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते ।
विदितः कैतववत्सलस्तव ।
परलोकमसन्निवृत्तये ।
यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ॥

४५—"अथवा यम कोमल वस्तु को कोमलही से मारता है इस में पहला दृष्टान्त पाला लगने से नाश होने वाली कमलनी मैंने मानी है" ॥

४६—"जो यह माला प्राणघातिनी है तो छाती पर पड़ी हुई मुझे क्यों नहीं मारती ॥ ईश्वर की इच्छा से कहीं अमृत भी विष होता है कहीं विष अमृत" ॥

४७—"अथवा मेरा भाग्य लौटने से ब्रह्मा ने यह (माला) वज्र करदी है, यद्यपि इसने वृक्ष नहीं गिराया परन्तु उसकी शाखा में लपटी हुई लता तोड़ दी ॥

४८—"जब तैंने मुझ नित्य अपराधी में भी अवज्ञा नहीं की तौ एकाएकी अब इस निरअपराधी जन को सम्भाषन के योग्य क्यों नहीं मान्ती है" ॥

४९—"हे सुन्दर मुसकानिवाली तैंने मुझे निश्चय अपना छल से प्यार करनेवाला शठ जाना इसी से मेरे पूछे विना तू फिर न आने के लिये यहांसे परलोक जाती है" ॥

५०–दयिता यदि तावदन्वगात्।
विनिवृत्तं किमिदं तया विना।
सहतां हतजीवितं मम।
प्रबलामात्मकृतेन वेदनाम्॥
५१–सुरतश्रमसम्भृतो मुखे।
ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते।
अथ चास्तमिता त्वमात्मना।
धिगिमां देहभृतामसारताम्॥
५२–मनसापि न विप्रियं मया।
कृतपूर्व्वं तव किं जहासि माम्।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं।
त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः॥
५३–कुसुमोत्खचितान् वलीभृतः।
चलयन् भृंगरुचस्तवालकान्।
करभोरु करोति मारुतः।
त्वदुपावर्त्तनशङ्कि मे मनः॥
५४–तदपोहितुमर्हसि प्रिये।
प्रतिबोधेन विषादमाशु मे।
ज्वलितेन गुहागतं तमः।
तुहिनाद्रेरिव नक्तमोषधिः॥

५०–"जब प्यारी के पीछे जाचुका था तौ उसके विना क्यों लौट आया, (अब) यह मेरा नष्ट जीव अपनी करनी से प्रबल दुःख सहो ॥

५१–"परिश्रम के पसीने की बूंद भी तेरे मुख पर वर्त्तमान है और तू आप अस्त की गई; धिक्कार है देहधारियों की इस असारता को" ॥

५२–"तेरा अनचाहा मैंने (कभी) मन से भी न किया तू मुझे क्यों त्यागती है; पृथ्वी का पति तौ मैं कहनेही को हूं मनका अनुराग मेरा तुझी में है" ॥

५३–"हे सूंड़ समान जांघोंवाली तेरी फूलों से गुंथी हुई बल खाई हुई काली अलकों को हिलाकर पवन मेरे मन को तेरे फिर आने का आसावान करती है" ॥

५४–"इसलिये हे प्यारी तू चैतन्य होकर तुरन्त मेरा दुःख हरने को योग्य है जैसे रात्रि में हिमालय की गुफा के अंधेरे को चमक कर बूंटी" ॥

---

५० तात्पर्य यह है कि जब रानी को मरी देखकर मेरा जी मूर्च्छा में जाचुका था तौ फिर क्यों लौट आया यह मेरे जीका अपराध हुआ इसके पलटे दुःख पाने योग्य है ॥

५५—इदमुच्छ्वसितालकं मुखं।
तव विश्रान्तकथं दुनोति माम्।
निशि सुप्तमिवैकपंकजं।
विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम्॥

५६—शशिनं पुनरेति शर्वरी।
दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम्।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ।
कथमत्यन्तगता न मां दहेः॥

५७—नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते।
मृदु दूयेत यदंगमर्पितम्।
तदिदं विषहिष्यते कथं।
वद वामोरु चिताधिरोहणम्॥

५८—इयमप्रतिबोधशायिनीं।
रशना त्वां प्रथमा रहःसखी।
गतिविभ्रमसादनीरवा।
न शुचा नानुमृतेव लक्ष्यते॥

५९—कलमन्यभृतासु भाषितं।
कलहंसीषु मदालसं गतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं।
पवनाधूतलतासु विभ्रमाः॥

---

५५ विश्रान्तकथं = निवृत्तसंलापं॥

५५—"यह बिखरीहुई अलकोंवाला, बोलने से रहित, तेरा मुख मुझे खेद करता है, जैसे रात में सोता हुआ भीतर भौंरें की ध्वनि मिटा हुआ अकेला कमल" ॥

५६—"चन्द्रमा को रात्रि, चकवे को चकवी, फिर मिलती है इस से वे दोनों विरह का अन्तर सहने को समर्थ हैं सदा को जानेवाली तू मुझे क्यों न जलावेगी" ॥

५७—"जो नए पत्तों के बिछौने पर भी आया हुआ तेरा कोमल शरीर दुखता था सो हे मनोहर जांघोंवाली! बतला इस चिता का चढ़ना कैसे सहेगा" ॥

५८—" (तेरी) एकान्त की पहली सखी यह तागड़ी, विलास के अभाव में चुप होनेवाली, क्या तुझ अबोध सोती हुई के साथ शोक से मरी हुई सी नहीं दीखती है" ॥

५९—"मीठे आलाप कोयलों में, मन्दगति कलहंसिनियों में, चंचलदृष्टि हरिणियों में, हाव भाव पवन की हिलाई लताओं में" ॥

---

५८ एकान्त की सखी = परदे की बात जाननेवाली॥

५९ इस श्लोक का आशय अगले श्लोक में खुलेगा॥

६०–त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां ।
निहिताःसत्यममी गुणास्त्वया ।
विरहे तव मे गुरुव्यथं ।
हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमाः ॥
६१–मिथुनं परिकल्पितं त्वया ।
सहकारः फलिनी च नन्विमौ ।
अविधाय विवाहसत्क्रियाम् ।
अनयोर्गम्यत इत्यसाम्प्रतम् ॥
६२–कुसुमं कृतदोहदस्त्वया ।
यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।
अलकाभरणं कथन्न तत् ।
तव नेष्यामि निवापमाल्यताम् ॥
६३–स्मरतेव सशब्दनूपुरं ।
चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम् ।
अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा ।
त्वमशोकेन सुगात्रि शोच्यसे ॥
६४–तव निःश्वसितानुकारिभिः ।
बकुलैरर्द्धचितां समं मया ।
असमाप्य विलासमेखलां ।
किमिदं किन्नरकण्ठि सुप्यते ॥

६०—"सत्यहै तुझ स्वर्ग जाने की चाववाली ने भी मुझे देख कर ये गुण (मधुर आलाप इत्यादि) छोड़े हैं परन्तु (ये) मेरे हृदय तक, तेरे विरह में भारी व्यथावाले तक पहुँचने को समर्थ नहीं हैं" ॥

६१—"तैंने इस आम को और प्रियंगुलता को जोड़ा माना था इनका विवाह मंगल किये विना तू जाती है यह अनुचित है" ॥

६२—"तेरा प्रफुल्लित कियाहुआ यह अशोक वृक्ष जिस फूल को उत्पन्न करेगा उस अलकों के गहने को मैं तेरी अन्त क्रिया में कैसे लगाऊंगा" ॥

६३—"तेरे बजते हुए नूपुरवाले पैर के अन्य दुर्लभ अनुग्रह को सुधसी करता हुआ यह अशोक हे सुन्दरी! फूलों के आंसू बरसाता हुआ तुझको रोता है" ॥

६४—"अपने श्वास के अनुकारी बकुल पुष्पों से मेरे साथ अधगूंथी हुई सुन्दर तागड़ी को पूरी किये विना हे किन्नरों के से कण्ठवाली! यह कैसा सोना है" ॥

---

६२ कहते हैं कि जब तक सौभाग्यवती स्त्री के पैर की ठोकर न लगे तब तक अशोक का वृक्ष फूलता नहीं है इसी भांति जब तक स्त्री के मुख से न छुआ जाय बकुल नहीं फूलता ॥

६४ अनुकारी अर्थात् होड़ करनेवाले ॥

६५–समदुःखसुखः सखीजनः।
प्रतिपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः।
अहमेकरसस्तथापि ते।
व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः॥

६६–धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता।
विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः।
गतमाभरणप्रयोजनं।
परिशून्यं शयनीयमद्य मे॥

६७–गृहिणीसचिवः सखी मिथः।
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना।
हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥

६८–मदिराक्षि मदाननार्पितं।
मधु पीत्वा रसवत् कथं नु मे।
अनुपास्यसि बाष्पदूषितं।
परलोकोपनतं जलाञ्जलिम्॥

६९–विभवेऽपि सति त्वया विना।
सुखमेतावदजस्य गण्यताम्।
अहृतस्य विलोभनान्तरैः।
मम सर्व्वे विषयास्त्वदाश्रयाः॥

७०–विलपन्निति कोशलाधिपः।
करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति।
अकरोत् पृथिवीरुहानपि।
स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान्॥

६५—"दुःख सुखकी साथिन ये सखियां हैं, द्वितीयाके चन्द्रमा समान यह पुत्र है, एक तेराही प्रेमी मैं हूं, इस पर भी तेरा चरित्र निश्चय निठुर है" ॥

६६—"मेरा अब धीरज अस्त हुआ, आनन्द मिटा, गाना गया, ऋतु निरुत्सव हुई, आभूषणों का प्रयोजन न रहा, सेज सूनी हुई" ॥

६७—"तू मेरी स्त्री, मता करने में सहायी, एकान्त की सखी, अच्छी गानविद्या की प्यारी विद्यार्थिनी, निर्दयी मृत्यु ने हरी तो बतला मेरा क्या न हरा" ॥

६८—"हे मत्त आंखोंवाली ! मेरे मुख की दी हुई रसीली मदिरा पीकर तू आंसुओं से दूषित जलाञ्जली को, परलोक में मिलनेवाली को, कैसे पियेगी" ॥

६९—"वैभव में भी तेरे विना अज का सुख यहीं तक गिनना चाहिये, मुझ अन्य विषयों से बचे हुए के सब भोग तेरे आसरे थे" ॥

७०—इस प्रकार शोक में फँसे हुए, प्यारी के लिये विलाप करते हुए, कोशलाधीश ने वृत्तों को भी शाखाओं से टपकते हुए रस के आंसुओं से भिगोया (अर्थात् रुलाया) ॥

७१–अथ तस्य कथञ्चिदङ्कतः।
स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम्।
विससर्ज तदन्त्यमण्डनाम्।
अनलायागुरुचन्दनैधसे॥
७२–प्रमदामनुसंस्थितः शुचा।
नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात्।
न चकार शरीरमग्निसात्।
सहदेव्या न तु जीविताशया॥
७३–अथ तेन दशाहतः परे।
गुणशेषामुपदिश्य भामिनीम्।
विदुषा विधयो महर्द्धयः।
पुर एवोपवने समापिताः॥
७४–स विवेश पुरीं तया विना।
क्षणदापायशशाङ्कदर्शनः।
परिवाहमिवावलोकयन्।
स्वशुचः पौरवधूमुखाश्रुषु॥
७५–अथ तं सवनाय दीक्षितः।
प्रणिधानाद्गुरुराश्रमस्थितः।
अभिषङ्गजडं विजज्ञिवान्।
इति शिष्येण किलान्वबोधयत्॥
७६–असमाप्तविधिर्यतो मुनिः।
तव विद्वानपि तापकारणम्।
न भवन्तमुपस्थितः स्वयं।
प्रकृतौ स्थापयितुं पथश्च्युतम्॥

७१-फिर उसको गोद से जैसे तैसे उस सुन्दरी को, उसी (माला) से अन्त समय आभूषित को, लेकर बान्धवों ने अगर चन्दन के ईंधनवाली अग्नि को सौंपा॥

७२-"राजा होकर भी शोक से स्त्री के पीछे मर गया" यह अपवाद देखकर उसने रानी के साथ शरीर अग्निवश न किया न कि जीने की आशा से॥

७३-फिर दश दिन पीछे उस विद्वान् ने गुणमात्र रही हुई प्यारी के निमित्त महाऋद्धियों सहित नगर के उपवन ही में कर्म समाप्त किए॥

७४-उस प्रभातचन्द्र समान दर्शनवाले ने पुरवासिनियों के मुखों के आंसुओं में अपने शोक का प्रवाहसा देखतेहुए उस (प्यारी) के विना नगर में प्रवेश किया॥

७५-तब कहते हैं कि यज्ञ की दीक्षा लिए हुए आश्रम में बैठे हुए गुरु ने तप के प्रभाव से उसको शोक में अचेत जानकर शिष्य के द्वारा इसप्रकार समझाया॥

७६-"इसलिये कि यज्ञ पूरा नहीं करचुके हैं गुरुजी तुम्हारे शोक का कारण जानकर भी तुम मार्ग त्यागेहुए को मार्ग में लाने के निमित्त आप न आसके"॥

७७—मयि तस्य सुवृत्त वर्त्तते।
लघुसन्देशपदा सरस्वती।
शृणु विश्रुतसत्त्वसार तां।
हृदि चैनामुपधातुमर्हसि॥
७८—पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः।
समतीतश्च भवच्च भावि च।
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा।
त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति॥
७९—चरतः किल दुश्चरं तपः।
तृणबिन्दोः परिशङ्कितः पुरा।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं।
हरिरस्मै हरिणीं सुराङ्गनाम्॥
८०—स तपः प्रतिबन्धमन्युना।
प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम्।
अशपद्भव मानुषीति तां।
शमवेलाप्रलयोर्म्मिणा भुवि॥
८१—भगवन् परवानयं जनः।
प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व मे।
इति चोपनतां क्षितिस्पृशं।
कृतवानासुरपुष्पदर्शनात्॥

७७—"हे अच्छी वृत्तिवाले ! उनको थोड़े अक्षरों के संदेश वाली वाणी मुझ में वर्त्तमान है; हे प्रसिद्ध धैर्य्यवाले ! इसको सुन और इसको हृदय में धरने को तू योग्य है" ॥

७८—"अजन्मा पुरुष के पदों में (अर्थात् त्रिलोकी में) भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों को ज्ञान की निर्मल दृष्टि से वे निस्सन्देह देखते हैं" ॥

७९—"कहते हैं कि आगे घोर तप करते हुए तृणबिन्दु से डरे हुए इन्द्र ने उसके पास योग भंग करनेवाली हरिणी नाम अप्सरा भेजी" ॥

८०—"तपस्या भंग होने के क्रोध से, शान्तिरूप मर्यादा को (तोड़नेवाली) प्रलय की तरंग से, उसने सामने अच्छे हावभाव दिखलाती हुई को यह शाप दिया "तू पृथ्वी में स्त्री हो" ॥

८१—"और 'हे भगवन् ! यह जन पराए अधीन है मेरा खोटा आचरण क्षमा करो' इसप्रकार बिनती करती हुई को उसने दिव्य फूल के दर्शन तक पृथ्वी पर रहनेवाली किया" ॥

---

८१ तात्पर्य यह कि जब तक स्वर्ग का फूल न देखेगी तब तक पृथ्वी पर रहेगी ॥

८२—क्रथकैशिकवंशसम्भवा।
तव भूत्वा महिषी चिराय सा।
उपलब्धवती दिवश्च्युतं।
विवशा शापनिवृत्तिकारणम्॥

८३—तदलं तदपायचिन्तया।
विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता।
वसुधेयमवेक्ष्यतां त्वया।
वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः॥

८४—उदये मदवाच्यमुज्झता।
श्रुतमाविष्कृतमात्मवत् त्वया।
मनसस्तदुपस्थिते ज्वरे।
पुनरक्लीबतया प्रकाश्यताम्॥

८५—रुदता कुत एव सा पुनः।
भवता नानुमृतापि लभ्यते।
परलोकजुषां स्वकर्मभिः।
गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्॥

८६—अपशोकमनाः कुटुम्बिनीम्।
अनुगृह्णीष्व निवापदत्तिभिः।
स्वजनाश्रु किलातिसन्ततं।
दहति प्रेतमिति प्रचक्षते॥

८२—"उस क्रथकैशिक वंश में जन्मी हुई ने तेरी रानी बन कर बहुत काल पीछे आकाश से गिरा हुआ शापमोचन का कारण पाकर प्राण छोड़ा है" ॥

८३—"इसलिये उसके मरने की चिन्ता से बसकर, जन्मधारियोंके सम्मुख विपत्ति रहतीही है; तुझको इस पृथ्वी पर दृष्टि चाहिये राजा लोग वसुधाही से स्त्री वाले होते हैं" ॥

८४—"वैभव में तुझ मद वाक्य मिटाते हुए ने जो आत्मज्ञान प्रकाश किया था उसी को (अब) मनके ताप में फिर पुरुषार्थ से प्रकाश कर" ॥

८५—"रोने से क्या उसके पीछे मरने से भी वह तुझे नहीं मिल सकती; परलोक जानेवाले जीवों की गति अपने अपने कर्मों के अनुसार न्यारी न्यारी होती है" ॥

८६—"निःशोकमन होकर कुटुम्बिनीको पिण्ड इत्यादि देकर उपकार कर; अपनों के बेर बेर के आंसू प्रेत को खेद करते हैं ऐसा प्रसिद्ध कहते हैं" ॥

---

८२ क्रथकैशिक अर्थात् विदर्भ ॥

८७–मरणं प्रकृतिः शरीरिणां।
विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्।
यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ॥

८८–अवगच्छति मूढचेतनः।
प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम्।
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते।
कुशलद्वारतया समुद्धृतम्॥

८९–स्वशरीरशरीरिणावपि।
श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापयेत्।
वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम्॥

९०–न पृथग्जनवच्छुचो वशं।
वशिनामुत्तमगन्तुमर्हसि।
द्रुमसानुमतां किमन्तरं।
यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः॥

९१–स तथेति विनेतुरुदारमतेः।
प्रतिगृह्य वचो विससर्ज्ज मुनिम्।
तदलब्धपदं हृदि शोकघने।
प्रतियातमिवान्तिकमस्य गुरोः॥

८७—"मरना देहधारियों का स्वभाव है जीना अनिश्चय है, ऐसा पण्डितों ने कहा है, जो जीवधारी क्षणमात्र भी श्वासवान् है सो निस्सन्देह लाभवान् है" ॥

८८—"प्यारे के मरने को मूर्खलोग हृदय में गड़ी हुई भाल मानते हैं परन्तु पण्डितलोग उसी को कुशलता का द्वार होने के कारण (हृदय से) निकली हुई (भाल) समझते हैं" ॥

८९—"जब अपना देह और आत्मा भी संयोग वियोगवाले माने गए हैं तो कहो बाहरके विषयों से अलग होना बुद्धिमानों को कैसे सन्ताप कर सकता है" ॥

९०—"हे जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ! साधारण मनुष्यों की नाईं शोकवश होने को तू योग्य नहीं है; पेड़ और पहाड़ में क्या अन्तर है जो पवन में वे दोनों ही चलायमान हों" ॥

९१—"ऐसाही है" यह कहते हुए उसने बड़े बुद्धिमान् गुरु का वचन स्वीकार करके मुनि को विदा किया; घने शोकवाले हृदय में वह (वचन) जगह न पाकर उसके गुरु के पास लौट सा गया ॥

८८-मरने को कुशलता का द्वार इसलिये कहा कि इससे सुकर्मियों को मोक्ष मिलता है ॥

९२–तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथञ्चित्।
बालत्वादवितथसूनृतेन सूनोः॥
सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः।
स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च॥

९३–तस्य प्रसह्य हृदयं किल शोकशंकुः।
प्लक्षप्ररोह इव सौधतलं बिभेद।
प्राणान्तहेतुमपि तं भिषजामसाध्यं।
लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने॥

९४–सम्यग्विनीतमथ वर्म्महरं कुमारम्॥
आदिश्य रक्षणविधौ विधिवत् प्रजानाम्।
रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः।
प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव॥

९५–तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोः।
देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः।
पूर्व्वाकाराधिकतररुचा सङ्गतः कान्तयासौ
लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु॥

इति श्रीरघुवंशे अष्टमः सर्गः

९२–उस यथार्थ और मीठी वाणी वाले ने पुत्र के बालपन के कारण आठ वर्ष जैसे तैसे काटे, प्यारी के चित्र दर्शनों से और स्वप्नों में क्षणमात्र समागम के उत्सवों से ॥

९३–कहते हैं कि शोक का बाण बल से उसके हृदय को पार कर गया जैसे घर की छत को पीपल का वृक्ष; प्यारी के पीछे जाने के चाव में उसने उस मृत्यु के हेतु (शोक) को भी, वैद्यों के असाध्य को भी, लाभ माना ॥

९४–तब भले प्रकार पढ़ाये हुये हथ्यार बांधने योग्य कुमार को प्रजा की शास्त्रपूर्व्वक रक्षा विधि में उपदेश करके रोग के बुरे बासवाले शरीर को छोड़ने के इच्छावान् राजा ने अन्न त्याग का नियम लिया ॥

९५–गंगा और सरयू के जलों के समागम तीर्थ में देह त्याग करने से तुरन्त देवताओं की गिनती में लेख पाकर वह पहले शरीर से अधिक कान्तिमती कान्ता के साथ फिर नन्दनवन के केलि मन्दिरों में विलास करने लगा ॥

आठवां सर्ग समाप्त हुआ

नवमः सर्गः

दशरथआखेटवर्णनम्

१—पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान् ।
समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः ।
दशरथः प्रशशास महारथः ।
यमवतामवतांश्च धुरि स्थितः ॥

२—अधिगतं विधिवद् यदपालयत् ।
प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम् ।
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं ।
सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः ॥

३—उभयमेववदन्ति मनीषिणः ।
समयवर्षितया कृतकर्मणाम् ।
बलनिषूदनमर्थपतिश्चतं ।
श्रमनुदंमनुदण्डधरान्वयम् ॥

४—जनपदे न गदः पदमादधौ ।
अभिभवः कुत एव सपत्नजः ।
क्षितिरभूत् फलवत्यजनन्दने ।
शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे ॥

नवां सर्ग

दशरथ का आखेट करना

१—बाप से पीछे उत्तर कोशल देशों को पाकर महारथी दशरथ ने, संयम करके इन्द्रियों के जीतनेवाले ने, योगियों और राजाओं के मुखिया ने, मर्यादा में रक्खा ॥

२—इसलिये कि बाप दादे से पाए हुए को विधिपूर्वक पालन किया उस कार्त्तिकेय समान तेजस्वी का नगर सहित प्रजामण्डल अधिक गुणवान हुआ ॥

३—समय वर्षीपन के कारण पण्डितलोग दोही को सुकर्मियों के परिश्रम मिटानेवाले कहते हैं, बलसूदन (इन्द्र,) को और मनुराजा के वंशवाले उस पृथ्वी पति को ॥

४—देवताओं के समान तेजस्वी शान्तचित्त अजनन्दन के राजा होते हुए देश में रोग ने पावँ न रक्खा फिर बैरियों का डर कहां था (और) पृथ्वी फलवती हुई ॥

---

१ नगर से अभिप्राय अयोध्या से है और प्रजामण्डल सब देश को कहा है ॥

५—दशदिगन्तजिता रघुणा यथा।
श्रियमपुष्यदजेन ततः परम्।
तमधिगम्य तथैव पुनर्बभौ।
न न महीनमहीनपराक्रमम्॥

६—समतया वसुवृष्टिविसर्ज्जनैः।
नियमनादसताञ्च नराधिपः।
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ।
सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा॥

७—नमृगयाभिरतिर्न दुरोदरं।
न च शशिप्रतिमाभरणं मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना।
प्रियतमा यतमानमपाहरत्॥

८—न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे।
न वितथा परिहासकथास्वपि।
न च सपत्नजनेष्वपि तेन वाक्।
अपरुषा परुषाक्षरमीरिता॥

९—उदयमस्तमयञ्च रघूद्वहात्।
उभयमानशिरे वसुधाधिपाः।
न हि निदेशमलंघयतामभूत्।
सुहृदयोहृदयः प्रतिगर्ज्जताम्॥

५—जैसे दशों दिशा के जीतनेवाले रघु से और उसके पीछे अज से पृथ्वी ने शोभा बढ़ाई वैसेही उस अहीन पराक्रम स्वामी को पहुँचकर अशोभित न रही ॥

६—समदर्शीपन से और घन बरसाने से और दुष्टों को दंड देने से राजा वरुण सहित यम और कुबेर का और तेज से सूर्य का अनुयायी हुआ ॥

७—उस वैभव निमित्त यत्न करनेवाले को न आखेट की अति ने जीता न जुए ने न चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब के गहनेवाली मदिरा ने और न नए यौवनवाली स्त्री ने ॥

८—उस रोसरहित ने दीनता का वचन इन्द्र से प्रभु होने पर भी न कहा न मिथ्या का हँसीकी बातों में भी और न कठोर अक्षर का वैरियों में भी ॥

९—राजाओंने उस रघुकुलनायक से घटाव और बढ़ाव दोनों पाए क्योंकि वह आज्ञा न उल्लंघन करनेवालोंको प्यारा और सामना करनेवालों को कठोर हृदय था ॥

---

६ अनुयायी उसको कहते हैं जो दूसरे के पीछे चले अथवा जैसा काम दूसरे ने किया वैसा आपभी करे दशरथ समदर्शीपन में अर्थात् न्याव में यम के तुल्य था धन कुबेर की नाईं देता था दण्ड देने में वरुण के समान और तेज में सूरज के तुल्य था ॥

१०—अजयदेकरथेन स मेदिनीम्।
उदधिनेमिमधिज्यशरासनः।
जयमघोषयदस्य तु केवलं।
गजवतीजवतीव्रहया चमूः॥
११—अवनिमेकरथेन वरूथिना।
जितवतः किल तस्य धनुर्भृतः।
विजयदुन्दुभितां ययुरर्णवाः।
घनरवा नरवाहनसम्पदः॥
१२—शमितपक्षबलः शतकोटिना।
शिखरिणां कुलिशेन पुरन्दरः।
स शरवृष्टिमुचा धनुषा द्विषां।
स्वनवता नवतामरसाननः॥
१३—चरणयोर्नखरागसमृद्धिभिः।
मुकुटरत्नमरीचिभिरस्पृशन्।
नृपतयः शतशो मरुतो यथा।
शतमखं तमखण्डितपौरुषम्॥
१४—निववृते स महार्णवरोधसः।
सचिवकारितबालसुताञ्जलीन्।
समनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहान्।
अनलकानलकानवमां पुरीम्॥

१०–उस चढ़े हुए धनुषवाले ने एक रथ से समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वी जीती; हाथियों और तीव्र वेग घोड़ोंवाली उसकी सेना ने तौ केवल जय प्रकट की ॥

११–कहते हैं कि बादल की नाईं गरजनेवाले समुद्र उस अकेले बरूथिमान रथ से पृथ्वी को जीतनेवाले धनुषधारी के, कुबेर समान धनवान् के, जीतके नगाड़े बने ॥

१२–पहाड़ों का पक्षबल इन्द्र ने सौ अनीवाले वज्र से नाश किया, वैरियों का उस नए कमल समान मुख वाले ने टंकार करते हुए बाणवर्षी धनुष से ॥

१३–सैकड़ों राजाओं ने उस अखंड पौरुष को मुकुट के रत्नों की किरनों से, नखों के रंग से बढ़ी हुई चमक वालियों से, चरनों में छुआ, जैसे देवताओं ने इन्द्र को ॥

१४–मंत्रियों से हाथ जुड़वाए हुए बालकोंवाली, विना अलकोंवाली, वैरियों की स्त्रियों पर दया करके वह महा समुद्र के तट से अलका समान पुरी को लौटा ॥

---

११ बरूथिमान रथ वह होता है जिसमें बैठनेवाले की रक्षा हो ॥

१५—उपगतोऽपि च मण्डलनाभिताम्।
अनुदितान्यसितातपवारणः।
श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलामभूत्।
अनलसोऽनलसोमसमद्युतिः॥

१६—तमपहाय ककुत्स्थकुलोद्भवं।
पुरुषमात्मभवञ्च पतिव्रता।
नृपतिमन्यमसेवत देवता।
सकमला कमलाघवमर्थिषु॥

१७—तमलभन्त पतिं पतिदेवताः।
शिखरिणामिव सागरमापगाः।
मगधकोशलकेकयशासिनां।
दुहितरोऽहितरोपितमार्गणम्॥

१८—प्रियतमाभिरसौ तिसृभिर्बभौ।
तिसृभिरेव भुवं सह शक्तिभिः।
उपगतो विनिनीषुरिव प्रजाः।
हरिहयोऽरिहयोगविचक्षणः॥

१९—स किल संयुगमूर्ध्नि सहायतां।
मघवतः प्रतिपद्य महारथः।
स्वभुजवीर्य्यमगापयदुच्छ्रितं।
सुरवधूरवधूतभयाः शरैः॥

१५–और चक्रवर्तीपन पाकर भी वह अकेले स्वेत छत्रवाला, चन्द्रमा और अग्नि के समान तेजवाला, लक्ष्मीको छिद्र द्वारा जानेवाली समझकर आलस रहित हुआ॥

१६–कमलवाली पतिव्रता देवी (लक्ष्मी) उस याचकों के सन्मान करनेवाले ककुत्स्थवंशी को और स्वजन्मा पुरुष (विष्णु) को छोड़कर और किस राजा को सेवन करती॥

१७–मगध और कोशल और केकय (देशों) के राजाओं की पतिव्रता बेटियों ने वह वैरियों में बाण मारनेवाला पति पाया, जैसे पहाड़ों की बेटी नदियों ने समुद्र॥

१८–शत्रुनाश के उपाय में चतुर वह उन तीनों प्यारियों के साथ शोभायमान हुआ, जैसे प्रजा की रक्षा निमित्त पृथ्वी पर तीनों शक्तियों समेत आया हुआ इन्द्र॥

१९–कहते हैं कि उस महारथी ने रणभूमि में इन्द्र का सहायी होकर अपनी भुजाओं का बड़ा पराक्रम सुरवधुओं से' बाणों (के प्रताप) से डरमिटी हुइयों से, गवाया॥

---

१५ अकेले स्वेत छत्र से तात्पर्य यह है कि उसके सामने कोई दूसरा छत्रपती न था॥ लक्ष्मी दोष लगाकर मनुष्य के पास से जाती है इस लिये दशरथ ने आलस दोष छोड़ा॥

१८ तीन शक्ति अर्थात् प्रभु मंत्र उत्साह॥

२०–क्रतुषु तेन विसर्जितमौलिना।
भुजसमाहृतदिग्वसुना कृताः।
कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनः।
वितमसा तमसासरयूतटाः॥
२१–अजिनदण्डभृतं कुशमेखलां।
यतगिरं मृगशृंगपरिग्रहाम्।
अधिवसंस्तनुमध्वरदीक्षितास्।
असमभासमभासयदीश्वरः॥
२२–अवभृथप्रयतो नियतेन्द्रियः।
सुरसमाजसमाक्रमणोचितः।
नमयति स्म स केवलमुन्नतं।
वनमुचे नमुचेररये शिरः॥
२३–असकृदेकरथेन तरस्विना।
हरिहयाग्रसरेण धनुर्भृता।
दिनकराभिमुखा रणरेणवः।
रुरुधिरे रुधिरेण सुरद्विषाम्॥
२४–अथ समाववृते कुसुमैर्नवैः।
तमिव सेवितुमेकनराधिपम्।
यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां।
समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम्॥

२०–उस यज्ञों में छोड़ेहुये मुकुटवाले ने, दिशाओं की सम्पत्ति भुजाओं से इकट्ठी करनेवाले ने, तमोगुणरहित ने, तमसा और सरयू के तटों को सोने के ऊंचे खम्भों से शोभायमान किया ॥

२१–मृगचर्म और दण्ड रखनेवाले, कुशा की मेखलावाले, वाणी जीते हुये, हिरण का सींग लियेहुये, यज्ञकी दीक्षा पाये हुए, (उसके) शरीर में प्रवेश करके महादेवजी ने उसको अनुपम कान्ति से शोभित किया ॥

२२–उस (दशरथ) ने, यज्ञ के अन्तस्नान से पवित्र ने, इन्द्रियों के जीतनेवाले ने, देवताओं की सभा में बैठ-ने योग्य ने, ऊंचा शिर केवल नमुची के वैरी जल बर-सानेवाले (इन्द्र) ही को झुकाया ॥

२३–एक रथी बलवान् ने, इन्द्र के आगे चलनेवाले धनुष-धारी ने, सूर्य्य के सामने छाई हुई रणधूल को अनेक बार दैत्यों के लोहू से निवारण किया ॥

२४–अब यम औरकुबेर और वरुण और इन्द्र समान उस धुरन्धर चक्रवर्ती को, प्रशंसायोग्य पराक्रमी को, मानो नए फूलों से पूजने के लिए वसन्त आया ॥

---

२० अर्थात् यज्ञ खम्भ बनवाए ॥

२५—जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं।
रथयुजा परिवर्त्तितवाहनः।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैः
विमलयन् मलयन्नगमत्यजत्॥

२६—कुसुमजन्म ततो नवपल्लवाः।
तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुः।
द्रुमवतीमवतीर्य्य वनस्थलीम्॥

२७—नयगुणोपचितामिव भूपतेः।
सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः।
अभिययुः सरसो मधुसम्भृतां।
कमलिनीमलिनीरपतत्रिणः॥

२८—कुसुममेव न केवलमार्त्तवं।
नवमशोकतरोः स्मरदीपनम्।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां।
मदयिता दयिताश्रवणार्पितः॥

२९—विरचिता मधुनोपवनश्रियाम्।
अभिनवा इव पत्रविशेषकाः।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः।
कुरवका रवकारणतां ययुः॥

२५-धनपति (कुबेर) के बसने की दिशा को चलने वाले सूर्य्य ने, अरुण के फेरे हुए रथवाले ने, शीत मिटाने से प्रभातों को विमल करते हुए मलय पहाड़ छोड़ा ॥

२६-(पहले) फूलों का जन्म तिस पीछे नई कोंपल फिर भौंरों और कोयलों का शब्द; इस क्रम से वृक्षों की वनभूमि में उतर कर वसन्त ने दिखाई दी ॥

२७-वसन्त की पुष्ट की हुई सरोवर की कमलिनी के पास भौंरे और जल के पक्षी गए, जैसे नीति के गुणों से बढ़ाई हुई सत्पुरुषों के उपकाररूपी फलवाली राजा की लक्ष्मी के पास याचक लोग ॥

२८-केवल ऋतु में खिला हुआ अशोक का नया फूलही नहीं (किन्तु) नायका के कानपर रक्खी हुई, रसिकों को मदकरनेवाली, नई कोंपल भी कामोद्दीपन हुई ॥

२६-उपवन की शोभा को नये श्रृङ्गार की भांति वसन्त के रचाए हुए कुरवक, मधु का दान देने में चतुर, भौंरों की गुञ्जार का कारण हुए ॥

३०–सुवदनावदनासवसम्भृतः।
तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः।
मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैः।
बकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभिः॥

३१–उपहितं शिशिरापगमश्रिया।
मुकुलजालमशोभत किंशुके।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं।
प्रमदया मदयापितलज्जया॥

३२–व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहं।
जघननिर्विषयीकृतमेखलम्।
न खलु तावदशेषमपोहितुं।
रविरलं विरलं कृतवान् हिमम्॥

३३–अभिनयान् परिचेतुमिवोद्यता।
मलयमारुत कम्पितपल्लवा।
अमदयत् सहकारलता मनः।
सकलिका कलिकामजितामपि॥

३४–प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः।
प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः।
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः।
कुसुमितासु मितावनराजिषु॥

३०-कामिनी के मुख की मदिरा से उत्पन्न होनेवाले मौल ने, उसी के से गुणवाले ने, मधु के लोभी लम्बी पङ्क्ति वाले भौंरों से वकुल वृक्ष को भरदिया॥

३१-शिशिरान्त (अर्थात् वसन्त) की लक्ष्मी का दिया हुआ कलियों का गुच्छा पलाशमें शोभायमान हुआ, मानो मद से लाज छोड़ी हुई प्रमदा का प्यारे में दिया हुआ नखच्छद का गहना॥

३२-कामिनी के घायल होठों को दुःसह, जांघों से तागड़ी दूर करानेवाला, शीत तबतक सूर्य्य से सर्वथा मिटाया नहीं गया घटा दिया गया था॥

३३-रिझावनियों के अभ्यास में परिश्रम करनेवाली (कञ्चनी) की नाईं, मलयागिरि की पवन से हिलते हुए पत्तोंवाली, मौली हुई आमकी लता ने काम और कलह जीते हुओं का भी मन मत्तकरदिया॥

३४-कोयलों के पहलेही उच्चारे हुए अल्प आलाप, मुग्धा नायिका के विरले वचनों की नाईं, वन की फूली हुई सुगन्धित पङ्क्तियों में सुनाई दिए॥

---

३० कहते हैं कि जब तक सौभाग्यवती युवती स्त्री के मुंह का कुल्ला ऊपर न पड़े वकुलवृक्ष में फल नहीं आताहै॥

३५–श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः।
कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः।
किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः॥

३६–ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं।
सुरभिगन्धपराजितकेसरम्।
पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः।
स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम्॥

३७–शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः।
स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः।
विकचतामरसा गृहदीर्घिका।
मदकलोदकलोलविहङ्गमाः॥

३८–उपययौ तनुतां मधुखण्डिताः।
हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः।
सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं।
वनितयानितया रजनीवधूः॥

३९–अपतुषारतया विशदप्रभैः।
सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः।
कुसुमचापमतेजयदंशुभिः
हिमकरो मकरोर्जितकेतनम्॥

३५—भौंरों के मधुर गुंजाररूपी गीतोंवाली, फूलों रूपी कोमल दन्तकान्तिवाली, उपवन तीर की लता पवन की हिलाई हुई कोंपलों से शोभायमान हुई, मानो भाव बताते हुए हाथों से ॥

३६—अच्छे हावभाव कराने में चतुर, सुगन्धि में वकुल पुष्प का जीतनेवाला, कामदेव का सखा, प्यारों में रस भंग का वर्ज्जनेवाला, मधु अङ्गनाओं ने पिया ॥

३७—मुसकाने में अधिक सुन्दर मुखोंवाली, बजती हुई ढीली तागड़ीवाली, स्त्रियों की नाईं खिले कमलोंवाली, मधुरअलापी जलकलोली पक्षियोंवाली घर की बावड़ियां शोभायमान हुईं ॥

३८—वसन्त की खण्डित कीहुई, चन्द्रमा के उदय में पीले मुखवाली, रात्रिरूपी नायिका क्षीणता को पहुंची, जैसे प्यारे के समागम का सुख प्राप्त न होनेवाली (खंडिता) स्त्री ॥

३९—तुषार मिटने से उज्ज्वल चमकवाली, सुरत के परिश्रम को दूर करनेवाली, किरणों से चन्द्रमा ने फूल के धनुषवाला, मकर की ऊँची ध्वजावाला (कामदेव) दीप्तमान किया ॥

---

३८ खंडित कीहुई अर्थात् घबराई हुई ॥

४०—हुतहुताशनदीप्ति वनश्रियः।
प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत्।
युवतयः कुसुमं दधुराहितं।
तदलके दलकेसरपेशलम्॥

४१—अलिभिरञ्जनविन्दुमनोहरैः।
कुसुमपङ्क्तिनिपातिभिरङ्कितः।
न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं।
न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव॥

४२—अमदयन्मधुगन्धसनाथया।
किसलयाधरसङ्गतया मनः।
कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका।
स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी॥

४३—अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः।
श्रवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः।
परभृताविरुतैश्च विलासिनः।
स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः॥

४४—उपचितावयवा शुचिभिः कणैः।
अलिकदम्बकयोगमुपेयुषी।
सदृशकान्तिरलक्ष्यत मञ्जरी।
तिलकजालकजालकमौक्तिकैः॥

४०–हवन की अग्नि के समान चमकता हुआ, सुन्दर पत्तों और केसरोंवाला, जो फूल वन की शोभा के लिए सोने के गहने की ठौर था वह युवतियों ने (प्यारों से) पाकर अलकों में रक्खा ॥

४१–काजल की बूंद समान मनोहर भौंरों से, फूलों की पंक्तियों पर बैठे हुओं से, चिह्नित तिलक वृक्ष ने वन स्थली को अशोभित न किया जैसे दिठोने ने कामिनी को ॥

४२–वृक्ष की अच्छी वधू नवमल्लिका ने मधुर मुसकान से, मधु की गंधिवाली से, किसलयरूपी होठों पर पड़ी हुई से, फूलों से रची हुई से, मन को मत्त किया ॥

४३–अरुण के रंग को तिरस्कार करनेवाले वस्त्रों ने और कानों में स्थान पाए हुए यवांकुरों ने और कोयलों के शब्दों ने, कामदेव की (इस) सेना ने, रसियों को केवल स्त्री रस में आसक्त करदिया ॥

४४–पराग के उज्जल कणों से भरी हुई भौंरों के समाज का साथ पाई हुई, तिलक वृक्ष की मंजरी मोतियों से गुथे हुए अलकजाल के समान कान्तिमान दिखाई दी ॥

---

४१ तिलक एक प्रकार का वृक्ष होताहै, जिसको श्रीमान भी कहते हैं ॥

४३ यवांकुर=जौ के अंकुर ॥

४५—ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतः।
छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः।
कुसुमकेशररेणुमलिव्रजाः।
सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः॥
४६—अनुभवन् नवदोलमृतूत्सवं।
पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहे।
भुजलतां जडतामबलाजनः॥
४७—त्यजत मानमलं वत विग्रहैः।
नपुनरेति गतं चतुरं वयः।
परभृताभिरितीव निवेदिते।
स्मरमते रमते स्म वधूजनः।
४८—अथ यथासुखमार्त्तवमुत्सवं।
समनुभूय विलासवतीसखः।
नरपतिश्चकमे मृगयारतिं।
स मधुमन्मधुमन्मथसन्निभः॥
४९—परिचयंचललक्ष्यनिपातने।
भयरुषोश्च तदिंगितबोधनम्।
श्रमजयात् प्रगुणाश्च करोत्यसौ।
तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ॥

४५—भौंरों के झुंड पीछे गए कुसुम केसर की रज के, धनुषधारी कामदेव की ध्वजा के, ऋतुश्री के मुख को शोभित करनेवाले कुमकुम के, उपवन में पवन के साथ उठी हुई के ॥

४६—झूले का नया ऋतु उत्सव करती हुई अबलाओं ने चतुर होकर भी प्यारे के गले लगने के चाव से पटली की रस्सी पकड़ने में बांहलता ढीली करदी ॥

४७—"विरोध रहने दो, मान त्यागो, गई चतुर वैस फिर नहीं आती है" मानो इस प्रकार कामदेव का मनोरथ कोयलों के निवेदन करने पर वधूजनों ने विलास किया ॥

४८—फिर आनन्दपूर्वक ऋतु उत्सव का सुख भोगकर उस राजा ने, स्त्रियों के साथी ने, मधुसूदन और वसन्त और कामदेव के समान ने, मृगया विहार की इच्छा की ॥

४६—वह (मृगया) चलते हुए बेझ के मारने में अभ्यास कराती है और उन में भय और रोस के चिह्नों का जान्ना सिखाती है, और श्रम जीतने से शरीर को अच्छे गुणोंवाला बनाती है, इसलिये मंत्रियों के साथ मता करके वह चला ॥

५०—मृगवनोपगमक्षमवेषभृत्।
विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः।
गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिः।
नृसविता स वितानमिवाकरोत् ॥

५१—ग्रथितमौलिरसौ वनमालया।
तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः।
तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलः।
विरुरुचेरुरुचेष्टितभूमिषु ॥

५२—तनुलताविनिवेशितविग्रहाः।
भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः।
ददृशुरध्वनि तं वनदेवताः।
सुनयनं नयनन्दितकोशलम् ॥

५३—श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं।
व्यपगतानलदस्यु विवेश सः।
स्थिरतुरंगमभूमि निपानवत्।
मृगवयोगवयोपचितं वनम् ॥

५४—अथ नभस्य इव त्रिदशायुधम्।
कनकपिङ्गतडिद्गुणसंयुतम्।
धनुरधिज्यमनाधिरुपाददे।
नरवरो रुषरोषितकेशरी ॥

५०–मृगों के वन में जाने योग्य भेस धरे हुए, मनोहर गले में धनुष डाले हुए, उस नर सूरज ने घोड़ों के पैरों की उठाई हुई धूल से आकाश को चंदोवा तना हुआ सा कर दिया ॥

५१–वह वनमाला से गुथे हुए जूड़ेवाला, रूख के पत्तों के रंग के कवचवाला, घोड़े के कूदने से हिलते हुए कुंडल वाला, रुरू (जाति के) हरिणों की खूंदी हुई भूमि में सुशोभित हुआ ॥

५२–पतली लताओं में शरीर रक्खे हुए, भौंरों में आंखों की वृत्ति लगाए हुए, वनदेवताओं ने मार्ग में वह अच्छी आंखोंवाला नीति से कोशलदेश को प्रसन्न रखनेवाला, देखा ॥

५३–कुत्तों के रखवालों और जाल लेचलनेवालों के पहले पहुंचे हुए वन में, चोर और अग्नि से रहित में, घोड़ों के योग्य कड़ी भूमिवाले में, जलाशयवाले में, मृगों और पक्षियों और रोझों से भरे हुए में, वह पहुंचा ॥

५४–तब उस नरोत्तम ने, टंकार से नाहरों को रोसदिलाने वाले ने, मन की बिथासे रहित ने, चढ़ी प्रत्यंचावाला धनुष लिया, जैसे भाद्रपद (महीने) ने पीला सुनहरी बिजली की प्रत्यंचावाला इन्द्रधनुष ॥

---

५० धूल ऐसी छागई मानो शम्याना तना है ॥

५५—तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणशावैः।
व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात्।
आविर्बभूव कुशगर्भमुखं मृगाणां।
यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम्॥
५६—तत् प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा।
तूणीमुखोद्धृतशरेण विशीर्णपङ्क्ति।
श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातैः।
वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः॥
५७—लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः।
प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्।
आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी।
बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसञ्जहार॥
५८—तस्यापरेष्वपि मृगेषु शरान् मुमुक्षोः।
कर्णान्तमेत्य बिभिदे निविडोऽपि मुष्टिः।
त्रासातिमात्रचटुलैः स्मरतः सुनेत्रैः।
प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि॥
५९—उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपङ्कमध्यात्।
मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम्।
जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गं।
सुव्यक्तमार्द्रपदपङ्क्तिभिरायताभिः॥

५५—थनों में प्यार रखनेवाले बच्चों से बार बार चलना रुकी हुई हरिणियोंवाला, घास भरे हुए मुखोंवाला, अगाड़ी चलते हुए गर्वित करसायलवाला मृगों का झुण्ड उसके सामने दिखाई दिया ॥

५६—तब वेगमान घोड़ेपर चढ़े हुए, निषंग के मुख से बाण निकालते हुए, राजाके दबाए हुए और पंक्तिटूटे हुए उस (झुण्ड) ने भीगी हुई भयभीत दृष्टियों से वन को श्याम कर दिया, मानो पवन के झकोरे हुए नील कमल की पंखड़ियों के ढेर से ॥

५७—बेझे पर आए हुए हरिण का शरीर आड़ में लेकर खड़ी हुई हरिणी को देखकर उस इन्द्र समान बलवान धनुषधारी ने कामीपन के कारण दयालु हृदय वाले ने कान तक खैंचाहुआ भी बाण उतार लिया ॥

५८—डरके मारे अति चलायमान (हरिणियों के) सुघड़ नेत्रों से चतुर प्यारी की आंखों का कटाक्ष सुध करके दूसरे हरिणों पर बाण छोड़ने के उस इच्छामान की कड़ी मुट्ठी भी कान तक जाकर ढीली होगई ॥

५६—कुण्ड की कीच से तुरन्त निकल कर भागते हुए सूअरों के झुण्ड का मार्ग, मोथे के अंकुरों के ग्रासोंसे बिछाहुआ भीगे खोजों की लम्बी लकीरों से सहज दिखाई देता हुआ, उसने लिया ॥

६०—तं वाहनादवनतोत्तरकायमीषत्।
विध्यन्तमुद्धृतसटाः प्रतिहन्तुमीषुः।
नात्मानमस्य विविदुः सहसा वराहाः।
वृक्षेषु विद्धमिषुभिर्जघनाश्रयेषु।

६१—तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री।
वन्यस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः।
निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुङ्खः।
तं पातयाम्प्रथममास पपात पश्चात्।

६२—प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमाङ्गान्।
खड्गांश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः।
श्रृंगं स दृप्तविनयाधिकृतः परेषाम्।
अत्युच्छ्रितं न ममृषे नतु दीर्घमायुः॥

६३—व्याघ्रानभीरभिमुखोत्पतितान् गुहाभ्यः।
फुल्लासनाग्रविटपानिव वायुरुग्णान्।
शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषात्।
तूणीचकार शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान्॥

६४—निर्घातोग्रैः कुञ्जलीनान् जिघांसुः।
ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास सिंहान्।
नूनं तेषामभ्यसूयापरोऽभूत्।
वीर्य्योदग्रे राजशब्दे मृगेषु॥

६०—घोड़े से अगला शरीर कुछ झुकाए हुए उस (राजा) पर, (बाणों से) बेधते हुए पर, धावा करने के इच्छामान खड़े केशोंवाले सूअरों ने अपने को उसके बाणों से जांघके सहारेवाले वृक्षों में तुरन्त बिंधा हुआ न जाना॥

६१—मारने के लिये सामने आते हुए अरनेभैंसे की आंख के छिद्र में उसका खैंचकर छोड़ाहुआ बाण शरीर बेध कर पूंछ में लोहूलगे विनाही पहले उसे गिराकर पीछे गिरा॥

६२—राजा ने पैने बाणों से सींग काट कर बहुतेरे गैंड़े को हलके सिरवाला करदिया; अभिमानियों के दबाने में तत्पर वह वैरियों के अति ऊंचेपनको न सहसका न कि बड़ी आयु को॥

६३—उस निडर ने गुफाओं से सामने आते हुए सिंहों को पवन की गिराई हुई असन (वृक्ष) की फूली डालियों समान को हाथ के हलकेपन के अभ्यास से पलभर में बाणों से भरे हुए मुखवाले निषंग बनादिया॥

६४—कुंजों में लेटेहुए नाहरों के मारने के इच्छामान ने निर्घात की नाईं भयानक शब्द करनेवाली प्रत्यंचा की टंकारों से (उनको) रोसादिलाया, क्योंकि पशुओं में वीरतासे पाईहुई उनकी राजपदवी पर वह ईर्षामानथा॥

६४ बिजली की कड़क को निर्घात कहते हैं॥ नाहर ने अपने पराक्रमों से पशुओं में राजपदवी पाई है इस से दशरथ ने ईर्षा मानकर नाहर मारे॥

६५—तान् हत्वा गजकुलबद्धतीव्रवैरान्।
काकुत्स्थः कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान्।
आत्मानं रणकृतकर्म्मणां गजानाम्।
आनृण्यं गतमिव मार्गणैरमंस्त॥

६६—चमरान् परितः प्रवर्त्तिताश्वः।
क्वचिदाकर्णविकृष्टभल्लवर्षी।
नृपतीनिव तान् वियोज्य सद्यः।
सितबालव्यजनैर्जगाम शान्तिम्॥

६७—अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं।
न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे।
रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः॥

६८—तस्य कर्कशविहारसम्भवं।
स्वेदमाननविलग्नजालकम्।
आचचाम सतुषार शीकरः।
भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः॥

६९—इति विस्मृतान्यकरणीयमात्मनः।
सचिवावलम्बितधुरं धराधिपम्।
परिवृद्धरागमनुबन्धसेवया।
मृगया जहार चतुरेव कामिनी॥

६५—गजकुल में कठोर वैर रखने वाले उन नाहरों को, मोती लगे हुए टेढ़े नखवालों को, बाण से मार कर दशरथ ने अपने को रण उपकारी हाथियों की अऋणता को पहुंचा हुआ माना॥

६६—एक बेर चमरी मृगों पर घोड़ा दौड़ा कर उस कानतक खैंचे हुए बाण बरसानेवाले ने उनको राजाओं की नाईं स्वेत चमरों से रहित करके तुरन्त शान्ति पाई॥

६७—रंग बिरंगी माला से गुथे हुए, विहार समय बन्धन खुले हुए, प्यारी के जूड़े पर तुरन्त ध्यान लगाकर उस ने सुन्दर पूंछवाले मोर को घोड़े के पास से उड़ेहुए को भी बाण का बेझा न बनाया॥

६८—कठिन परिश्रम से निकले हुए, मुखपर छाए हुए, उसके पसीने को पत्तों के मुंह खोलनेवाली, शीतल जल के कणोंवाली, वन की पवन ने दूर किया॥

६६—इस भांति अपने और सब काम भूले हुए, मंत्रियों पर बोझ डाले हुए, निरन्तर सेवा से अनुराग बढ़े हुए, राजा को मृगया ने चतुर कामिनी की नाईं बस किया॥

---

६५ मोती लगे हुए अर्थात् गजमुक्ता लगे हुए॥

७०—स ललितकुसुमप्रवालशय्यां।
ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथाम्।
नरपतिरतिवाहयाम्बभूव।
क्वचिदसमेतपरिच्छदस्त्रियामाम्॥

७१—उषसि स गजयूथकर्णतालैः।
पटुपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्रः।
अरमत मधुराणि तत्र शृण्वन्।
विहगविकूजितवन्दिमंगलानि॥

७२—अथ जातु रुरोर्गृहीतवर्त्मा।
विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः।
श्रमफेनमुचा तपस्विगाढां।
तमसां प्राप नदीं तुरंगमेण॥

७३—कुम्भपूरणभवः पटुरुच्चैः।
उच्चचार निनदोऽम्भसि तस्याः।
तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की।
शब्दपातिनमिषुं विससर्ज्ज॥

७४—नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्।
कृतवान् पङ्क्तिरथो विलंघ्य यत्।
अपथे पदमर्पयन्ति हि।
श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः॥

७५—हातातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्णः।
तस्यान्विष्यन् वेतसगूढं प्रभवं सः।
शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं।
तापादन्तःशल्यइवासीत् क्षितिपोऽपि॥

Debi Dutt Pant : N. Khurl

७०–उस राजा ने सुन्दर फूल पत्तों की शय्यावाली, चमकती हुई महौषधि के दीपकोंवाली, रात कभी कभी विना सेवकों के बिताई ॥

७१–प्रातःकाल अच्छे ढोलों की भांति ध्वनि करती हुई हाथियों की कर्णतालों से उस जगे हुए ने पक्षियों के गाए हुए मीठे बन्दी मङ्गल सुनकर मन बहलाया ॥

७२–एक बेर वन में हरिण का पीछा करता हुआ सेवकों से अलग होकर पसीने के झाग डालते हुए घोड़े सहित तपस्वियों से भरी हुई तमसा नदी पर पहुंचा ॥

७३–उसके जल में मनोहर ऊंचा शब्द घड़ा भरने से उत्पन्न हुआ; हाथी की गाज का भ्रम करते हुए उसने वहीं शब्दबेधी बाण छोड़ा ॥

७४–जो काम दशरथ ने (शास्त्र) उल्लंघन करके किया सो राजा को वर्जितही था; सच है शास्त्र जानने वाले भी रजोगुणी कुमार्ग में पैर रखते हैं ॥

७५–"हाय पिता" यह रोना सुनकर वह दुखी राजा भी उसका बेतों में छुपा हुआ कारण खोजता हुआ मुनि पुत्र को घड़े सहित बाण से बिंधा देखकर आप भी पछताये से हृदय में बाण लगा हुआ सा होगया ॥

७६—तेनावतीर्य्य तुरगात् प्रथितान्वयेन।
पृष्टान्वयःस जलकुम्भनिषण्णदेहः।
तस्मै द्विजेतरतपस्विसुतंस्खलद्भिः।
आत्मानमक्षरपदैः कथयाम्बभूव॥

७७—तच्चोदितश्च तमनुद्धृतशल्यमेव।
पित्रोः सकाशमवसन्नदृशोर्निनाय।
ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्रम्॥
अज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस॥

७८—तौ दम्पती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा।
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः।
सोऽभूत परासुरथ भूमिपतिं शशाप।
हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव वृद्धः॥

७९—दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकात्।
अन्ते वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम्।
आक्रान्तपूर्व्वमिव मुक्तविषं भुजंगं।
प्रोवाच कोशलपतिः प्रथमापराद्धः॥

८०—शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोभे।
सानुग्रहो भगवता मयि पातितोयम्।
कृष्यांदहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धः।
बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति॥

७६—घोड़े से उतर कर उस प्रसिद्ध वंशवाले के वंश पूछे हुए ने, जल के घड़े पर देह रक्खे हुए ने, टूटते हुए शब्दों से अपने को द्विज सेइकर तपस्वी का पुत्र बतलाया॥

७७—और उसी के कहने से राजा ने वह बाण छिदा हुआ ही अन्धे मा बाप के पास पहुंचाया (और) ऊपर कही हुई दशा में उस अकलौते बेटे के साथ अज्ञानता से किया हुआ अपना चरित उनको जताया॥

७८—स्त्री पुरुष ने बहुत विलाप करके बालक की छाती में छिदा हुआ बाण मारनेवाले ही से निकलवाया; उस (बालक) ने प्राण छोड़ा, तब बूढ़े ने हाथों पर गिरे हुए आंशुओं ही के जल से राजा को शाप दिया॥

७९—"बुढ़ापे में मेरी भांति तुम भी पुत्रशोक से मृत्यु पावोगे" यह कहते हुए उसको प्रथम अपराधी कोशल पति ने कहा, मानो आगे पैर से दबाए हुए विष छोड़ते सांप को॥

८०—"पुत्र के मुख कमल की शोभा न देखे हुए मुझ में तुम्हारा दियाहुआ यह शाप भी अनुग्रह हीहै क्योंकि ईंधन से बढ़ी हुई अग्नि खेत को जलाकर भी बीज उपजाने वाला करती है"॥

---

७६ रामायण में यह कथा विस्तार से कही है यह लड़का जात का करण अथवा कायथ था जिसका पिता वैश्य और माता शूद्री थी॥

७७ ऊपर कही हुई दशा में अर्थात् खेतों की ओट में॥

८१—इत्थंगते गतघृणः किमयं विधत्तां।
वध्यस्तवेत्यभिहितो वसुधाधिपेन।
एधान् हुताशनवतः स मुनिर्ययाचे।
पुत्रं परासुमनुगन्तुमनाः सदारः॥

८२—प्राप्तानुगःसपदि शासनमस्य राजा।
सम्पाद्य पातकविलुप्तधृतिर्निवृत्तः।
अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं।
शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशिः॥

इति श्रीरघुवंशे नवमः सर्गः॥

८१–इतना वृत्तान्त होने पर "तेरे हाथ से मारे जाने के योग्य इस निर्दई को क्या करना चाहिये" इस प्रकार पृथ्वीपति के पूछेहुए उस मुनिने, मरे पुत्रके पीछे स्त्री सहित जानेके इच्छामान ने, अग्निसमेत ईंधन मांगा ॥

८२–सेवक पाया हुआ, पाप से धीरज गँवाया हुआ, राजा तुरन्त उसकी आज्ञापूरी करके हृदय में अपने नाश का हेतु वह शाप धरे हुए लौटा, जैसे बड़वानल (धरेहुए) समुद्र ॥

नवां सर्ग समाप्त हुआ

दशमः सर्गः

रामावतारः

१—पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः ।
किञ्चिदूनमनूनर्द्धेः शरदामयुतं ययौ ॥

२—न चोपलेभे पूर्व्वेषामृणनिर्मोक्षसाधनम् ।
सुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोकतमोपहम् ॥

३—अतिष्ठत् प्रत्ययापेक्ष—सन्ततिः स चिरं नृपः ।
प्राङ्मन्थादनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिवार्णवः ॥

४—ऋष्यशृङ्गादयस्तस्य सन्तः सन्तानकांक्षिणः ।
आरेभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः ॥

५—तस्मिन्नवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुता हरिम् ।
अभिजग्मुर्निदाघार्त्ताः छायावृक्षमिवाध्वगाः ॥

दशवां सर्ग

रामचन्द्र का जन्म

१–उस पृथ्वी पालते हुए के, इन्द्रसमान तेजस्वी के, पूरी ऋद्धिवाले (दशरथ) के, कुछ घाट दशसहस्र वर्ष बीत गए, ॥

२–और पितृयों के ऋण से छूटने का साधन, शोक के अंधेरे को तुरन्त मिटानेवाला, पुत्रनाम उजाला उसने न पाया ॥

३–बहुत काल तक वह राजा हेतु चाहती हुई सन्तति वाला रहा, जैसे मथने से पहले रत्नों की अप्रकट उत्पत्तिवाला समुद्र ॥

४–शृङ्गीऋषि इत्यादि महात्मा जितेन्द्रिय ऋत्विजोंने उस पुत्र कामनावाले का पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ किया ॥

५–उसी समय पौलस्त्य (रावण) के सताएहुए देवता हरि के पास गए, जैसे घाम के सताए हुए पथिक छाया वाले वृक्ष के पास ॥

---

३ हेतु चाहती हुई अर्थात् जिस बात से सन्तान रुकी थी उसको दूर करने का हेतु ॥

४ ऋत्विज अर्थात् ऋतु ऋतु का यज्ञ करनेवाला ॥

६–ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः।
अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्य्यसिद्धेर्हि लक्षणम्॥

७–भोगिभोगासनासीनं ददृशुस्तं दिवौकसः।
तत्फणामण्डलोदर्च्चिर्मणिद्योतितविग्रहम्॥

८–श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरितमेखले।
अङ्के निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपल्लवे॥

९–प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं बालातपनिभांशुकम्।
दिवसं शारदमिव प्रारम्भसुखदर्शनम्॥

१०–प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम्।
कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा॥

११–बाहुभिर्विटपाकारैः दिव्याभरणभूषितैः।
आविर्भूतमपां मध्ये पारिजातमिवापरम्॥

१२–दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः।
हेतिभिश्चेतनावद्भिः उदीरितजयस्वनम्॥

६—वे समुद्र पर पहुंचे और आदिपुरुष (योगनिद्रा से) जागे; होनहार कार्यसिद्धि का चिह्न अविलम्ब ही होता है ॥

७—उस सर्प के शरीररूपी आसन पर बैठे हुए को, उसी के फन मण्डल की उज्जल मणियों से प्रकाशमान अङ्गवाले को, देवताओं ने देखा, ॥

८—कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी की गोद में, वस्त्रों से ढकी हुई तागड़ी वाली में, हाथ रूपी पत्ते बिछी हुई में, चरण रक्खे हुए को ॥

९—मानो खिले हुए कमलरूपी नेत्रवाले, तड़के की घाम रूपी वस्त्रवाले, प्रारम्भों में सुखदर्शनवाले, शरद् के दिन को, ॥

१०—कान्ति से श्रीवत्स को शोभित करनेवाली, लक्ष्मी के विलास की आरसी, कौस्तुभ नाम मणि चौड़ी छाती पर धारण किए हुए को ॥

११—शाखा सदृश भुजाओं सहित, दिव्य गहनेसे आभूषितों सहित, समुद्र के मध्यमें दूसरे पारिजात की नाईं प्रकट होते हुए को ॥

१२—दैत्यों की स्त्रियों के कपोलों का मदराग मिटानेवाले सजीव अस्त्रों से जय जय होते हुए को ॥

---

६ अविलम्ब अर्थात् तुरन्तपन ॥

८ आठवें से चौदहवें श्लोक तक विष्णु का वर्णन है ॥

९ प्रारम्भ अर्थात् योगी अथवा प्रातःकाल ॥

१२ इन अस्त्रों से दैत्यों को मारा था इससे दैत्यों की स्त्रियों ने शृंगार करना छोड़ा ॥

१३—मुक्तशेषविरोधेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा।
उपस्थितं प्राञ्जलिना विनीतेन गरुत्मता॥

१४—योगनिद्रान्तविषदैः पावनैरवलोकनैः।
भृग्वादीननुगृह्णन्तं सौखशायनिकानृषीन्॥

१५—प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम्।
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यम् अवाङ्मनसगोचरम्॥

१६—नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने॥
१७—रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽश्नुते।
देशे देशे गुणेष्वेवम् अवस्थास्त्वमविक्रियः॥

१८—अमेयोमितलोकस्त्वम् अनर्थी प्रार्थनावहः।
अजितो जिष्णुरत्यन्तम् अव्यक्तोव्यक्तकारणम्॥

१३—शेष के साथ विरोध त्यागे हुए से, वज्रघाव के चिह्नों वाले से, हाथ जोड़े हुए विनीतवान गरुड़ से, उपासना होते हुए को ॥

१४-योगनिद्रा के अन्त में अच्छी पवित्र दृष्टियों से भृगु इत्यादि सुखशयन पूछनेवाले ऋषियों पर अनुग्रह करते हुए को ॥

१५—उस दैत्यों के नाशकरता के निमित्त नमस्कार करके देवताओं ने उस मनवाणी के अगोचर की, स्तुति योग्य की, स्तुति की ॥

१६—"प्रथम विश्व के करता तिस पीछे विश्व के भरता फिर विश्व के हरता तुम तीन रूपधारी को नमस्कार है" ॥

१७—"जैसे आकाश का मीठा जल ठौर ठौर में न्यारे न्यारे स्वादों को पहुंचता है ऐसेही एकरूप तुम गुणों में अनेक अवस्थाओं को (पहुंचते हो)" ॥

१८—"तुम लोक के अतुल तोलनेवाले हो, प्रयोजन के विना प्रयोजन देनेवाले हो, अजित जीतनेवाले हो, स्थूल के अतिसूक्ष्म कारण हो" ॥

---

१४ सुखशयन पूछना अर्थात् यह पूछना कि रातमें सुखसे सोए या नहीं ॥

१७ मेह का मीठा पानी ऊसर इत्यादि भूमि में पड़कर न्यारे न्यारे स्वाद का होताहै ऐसेही रज सत तम गुणों में आकर भगवान् भी सृष्टि के करता भरता हरता होते हैं ॥

१८ अतुल तोलने वाला अर्थात् जो आप किसी से न तुले और सबको तोले ॥

१९–हृदयस्थमनासन्नम् अकामं त्वां तपस्विनम्।
दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदुः॥

२०–सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वम् एकस्त्वं सर्वरूपभाक्॥
२१–सप्तसामोपगीतं त्वां सप्तार्णवजलेशयम्।
सप्तार्चिर्मुखमाचख्युः सप्तलोकैकसंश्रयम्॥

२२–चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालावस्थाश्चतुर्युगाः।
चतुर्वर्णमयो लोकः त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात्॥
२३–अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयम्।
ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये॥
२४–अजस्यगृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेदकस्तव॥

२५–शब्दादीन् विषयान् भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः।
पर्य्याप्तोऽसि प्रजाः पातुम् औदासीन्येन वर्त्तितुम्॥

२६–बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे॥

१९—"तुम को हृदय में बैठाहुआ अति दूर, विना चाह वाला तपस्वी, दुःखरहित दयालु, जरारहित अनादि, जानते हैं" ॥

२०—"तुम अज्ञात सर्वज्ञ हो, तुम स्वजन्मा सब के करता हो, तुम अनीश सब के ईश हो, तुम एक सर्वरूप हो" ॥

२१—"तुम को सात सामों से गाया हुआ, सात समुद्रों के जल में सोनेवाला, सात लौ (अग्नि) मुखवाला, सात लोकों का एक आधार, कहते हैं" ॥

२२—चतुर्वर्ग फलदेनेवाला ज्ञान, चारयुगके समय का परिमाण, चतुर्वर्ग सम्बन्धी लोक, सब तुम चतुर्मुख से हैं ॥

२३—"अभ्यासकरके वशकिये हुए मनसे योगीलोग तुम हृदय में बैठेहुए जोतीस्वरूप को मुक्ति के लिये भजते हैं" ॥

२४—"तुम अजन्मा जन्मधारी की, निष्काम शत्रुघाती की, सोते हुए जागरूक की, यथार्थता को कौन जानता है" ॥

२५—"शब्द इत्यादि विषयों को भोगते हुए कठिन तप करने को, प्रजापालते हुए उदासीनता से रहने को, तुम्हीं समर्थ हो" ॥

२६—"सिद्धि की प्राप्ति के अनेक मार्ग शास्त्रों के न्यारे न्यारे किये हुए भी तुम्हीं में समाते हैं, जैसे समुद्र में गङ्गा जी के प्रवाह" ॥

---

१९ जरा = बुढ़ापा ॥

२२ चतुर्वर्ग = अर्थ धर्म काम मोक्ष ॥

२७—त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्म्मणाम् ।
गतिस्त्वं वीतरागाणाम् अभूयः सन्निवृत्तये ॥

२८—प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यः मह्यादिर्महिमा तव ।
आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा ॥

२९—केवलं स्मरणेनैव पुनासि पुरुषं यतः ।
अनेन वृत्तयः शेषाः निवेदितफलास्त्वयि ॥

३०—उदधेरिव रत्नानि तेजांसीव विवस्वतः ।
स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ॥
३१—अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते ।
लोकानुग्रह एवैकः हेतुस्ते जन्मकर्म्मणोः ॥

३२—महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥

३३—इतिप्रसादयामासुः ते सुरास्तमधोक्षजम् ।
भूतार्थव्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः ॥

२७—"तुम में ध्यान लानेवालों को, तुम में सब कर्म अर्पण करनेवालों को, राग छोड़ेहुओं को, फिर न आने के लिये तुमहीं साधन हो"॥

२८—"पृथ्वी इत्यादि तुम्हारी प्रत्यक्ष महिमा भी अमित है, फिर तुम वेद और अनुमान से सिद्धिहोनेवाले क्या कहना है"॥

२९—"केवल स्मरण ही से जब तुम प्राणी को पवित्र करते हो तो इसी से तुम में और व्यापारों के फल जाने जाते हैं"॥

३०—"समुद्र के रत्नों की नाईं, सूरज की किरणों की नाईं, तुम्हारे अगम चरित्र स्तुतियों से बाहर हैं"॥

३१—"प्राप्तहोने योग्य कोई वस्तु तुम को अप्राप्त नहीं है, केवल लोक का अनुग्रह ही तुम्हारे जन्म और कर्म का हेतु है"॥

३२—"तुम्हारी महिमा को गाते गाते जो सरस्वती थक जाती है यह थकावट से अथवा असमर्थता से है न कि गुणों के इतनेपन से"॥

३३—इस प्रकार उस इन्द्री ज्ञान से परे को उन देवताओं ने प्रसन्न किया; यह परमेश्वर की सत्य कथा थी न कि प्रशंसा॥

---

२८ अमित = बे परिमाण॥

२९ व्यापार अर्थात् दर्शन परशन इत्यादि॥

३२ तात्पर्य यह है कि तुम्हारे सम्पूर्ण गुणों को सरस्वती भी नहीं गासकती है॥

३४—तस्मै कुशलसंप्रश्नव्यञ्जितप्रीतये सुराः।
भयमप्रलयोद्वेलात् आचख्युर्नैर्ऋतोदधेः॥

३५—अथ वेलासमासन्न-शैलरन्ध्रानुनादिना।
स्वरेणोवाच भगवान् परिभूतार्णवध्वनिः॥

३६—पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरिता।
बभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती॥

३७—बभौ सदशनज्योत्स्ना सा विभोर्वदनोद्गता।
निर्यातशेषा चरणात् गङ्गेवोर्ध्वप्रवर्त्तिनी॥

३८—जाने वो रक्षसाक्रान्तौ अनुभावपराक्रमौ।
अङ्गिनां तमसेवोभौ गुणौ प्रथममध्यमौ॥

३९—विदितं तप्यमानञ्च तेन मे भुवनत्रयम्।
अकामोपनतेनेव साधोर्हृदयमेनसा॥

४०—कार्य्येषु चैककार्य्यत्वात् अभ्यर्थ्योऽस्मि न वज्रिणा।
स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते॥

३४—उस कुशल पूछकर प्रसन्नता जताते हुए को देवताओं ने प्रलय के विना ही मर्यादा तोड़नेवाले राक्षसरूपी समुद्र का भय जताया॥

३५—तब समुद्रतट के निकटवर्त्ती पहाड़ों की गुफाओं में प्रतिशब्द उठाते हुए स्वर से समुद्र की ध्वनि को तिरस्कार करते हुए भगवान् बोले॥

३६—उस सनातन पुरुष (विष्णु) के अक्षरों और कंठ इत्यादि स्थानों से उच्चारण होकर शुद्धता को पहुंची हुई सरस्वती (वाणी) कृतार्थ ही हुई॥

३७—दांतों की कान्ति सहित विष्णु के मुख से निकली हुई वह (वाणी) शोभायमान हुई, जैसे चरण से निकलती हुई ऊर्द्धवाहिनी गंगा॥

३८—"तुम्हारा महत्व और पराक्रम दोनों मैंने राक्षस से दबे हुए जानें, जैसे देहधारियों के पहले और मध्य के दोनों गुण तमोगुण से (दबे हुए)"॥

३९—"और उससे तपता हुआ त्रिलोक मैंने जाना, जैसे विना इच्छा के प्राप्त हुए पाप से साधुओं का हृदय"॥

४०—"और कार्य्य की एकता के कारण मैं इन्द्र से प्रार्थना होने के योग्य नहीं हूं; अग्नि की सहायता को पवन आपही जाता है"॥

---

३४ भगवान् ने कुशल पूछी इससे देवताओं ने जाना कि प्रसन्न हुए॥

३८ पहले और मध्य के गुण अर्थात् सतोगुण और रजोगुण॥

४१—स्वासिधारापरिहृतः कामं चक्रस्य तेन मे।
स्थापितो दशमो मूर्द्धा लभ्यांश इव रक्षसा ॥

४२—स्रष्टुर्वरातिसर्गात् तु मया तस्य दुरात्मनः।
अत्यारूढं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः ॥

४३—धातारं तपसा प्रीतं ययाचे स हि राक्षसः।
दैवात् सर्गादवध्यत्वं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः ॥

४४—सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्बलिक्षमम्।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैः तच्छिरः कमलोच्चयम् ॥

४५—अचिराद्यज्वभिर्भागं कल्पितं विधिवत् पुनः।
मायाविभिरनालीढम् आदास्यध्वे निशाचरैः ॥

४६—वैमानिकाः पुण्यकृतः त्यजन्तु मरुतां पथि।
पुष्पकालोकसंक्षोभं मेघावरणतत्पराः ॥
४७—मोक्ष्यध्वे स्वर्गवन्दीनां वेणीबन्धानदूषितान्।
शापयन्त्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैः ॥

४१—"अपने खड्ग से बचाया हुआ दशवां सीस उस राक्षस ने मेरे चक्र के लिये उचित भाग की नाईं रक्खा है" ॥

४२—"परन्तु ब्रह्मा के वरदान से मुझे उस दुरात्मा वैरी का सिर चढ़ना सहने योग्य है, जैसे चन्दन को सर्प का" ॥

४३—"मनुष्यों में अनादर करनेवाले उस राक्षस ने तपस्या से प्रसन्न हुए ब्रह्मा से दिव्य सृष्टि के हाथ से न मारा जाना मांग लिया है" ॥

४४—"सो मैं दशरथ का पुत्र होकर उसके सीसों को पैने बाणों से रनभूमि की पूजा योग्य कमलों का ढेर बनाऊंगा" ॥

४५—"यजमानों का विधिपूर्व्वक दिया हुआ भाग मायावी निशाचरों का विना चक्खा हुआ तुम शीघ्रही फिर पावोगे" ॥

४६—"बादलों में छिपना सीखे हुए सुकृती देवता (अब) आकाश में पुष्पक देखने से डरना छोड़दें ॥

४७—"देवांगनाओं के वेणीबन्धनों को, शाप के कारण रावण के बलात्कारी कचग्रहों से बचे हुओं को, तुम खोलोगे" ॥

---

४३ दिव्यसृष्टि=देवताओं की आठप्रकार की सृष्टि ॥

४६ पुष्पक=रावण का रथ ॥

४७ रावण को शाप था कि जब किसी स्त्री के केश बल करके पकड़ेगा तभी मरजायगा इसलिये जिन अप्सराओं को वह पकड़ ले गया था उनके केश उसके झपटों से बचे रहे ॥

४८—रावणावग्रहक्लान्तम् इति वागमृतेन सः।
अभिवृष्य मरुत्शस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे ॥

४९—पुरुहूतप्रभृतयः सुरकार्य्योद्यतं सुराः।
अंशैरनुययुर्विष्णुं पुष्पैर्वायुमिव द्रुमाः ॥
५०—अथ तस्य विशाम्पत्युः अन्ते काम्यस्य कर्म्मणः।
पुरुषः प्रबभूवाग्नेः विस्मयेन सहर्त्विजाम् ॥
५१—हेमपात्रगतं दोर्भ्याम् आदधानः पयश्चरुम्।
अनुप्रवेशादाद्यस्य पुंसस्तेनापि दुर्वहम् ॥

५२—प्राजापत्योपनीतं तत् अन्नं प्रत्यग्रहीन्नृपः।
वृषेव पयसां सारम् आविष्कृतमुदन्वता ॥
५३—अनेन कथिता राज्ञः गुणास्तस्यान्यदुर्लभाः।
प्रसूतिं चकमे तस्मिन् त्रैलोक्यप्रभवोऽपि यत् ॥

५४—स तेजो वैष्णवं पत्न्योः विभेजे चरुसंज्ञितम्।
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रम् अहर्पतिरिवातपम् ॥

---

५२ पयसां सारम्=अमृतम् ॥

४८–रावणरूपी अनावृष्टि से सूखते हुए देवताओं रूपी अनाज को इस प्रकार वाणी जल से सींच कर वह कृष्णमेघ अन्तर्द्धान हुआ ॥

४९–सुर कार्य पर उद्यत विष्णु के पीछे इन्द्रादि देवता अंशों से गए जैसे पवन के पीछे फूलों से वृक्ष ॥

५०–फिर उस राजा के पुत्रेष्टि यज्ञ के अन्त पर ऋत्विजों के अचम्भे सहित अग्नि से (एक) पुरुष प्रकट हुआ ॥

५१–सोने के बर्तन में भरी हुई खीर को, आदिपुरुष के प्रवेश के कारण उससे भी कठिनता से उठनेवाली को, दोनों हाथों में लिए हुए ॥

५२–ब्रह्मा के पुरुषका दिया हुआ वह अन्न राजा ने लिया, जैसे समुद्र से निकला हुआ अमृत इन्द्र ने ॥

५३–उस राजा के गुण औरों में दुर्लभ इसीलिये कहे गए हैं कि उसमें त्रिलोकी के कर्ता ने भी जन्म लेने की इच्छा की ॥

५४–उसने चरुनामवाला विष्णुतेज दो रानियों में बांट दिया जैसे सूर्य्य ने सबेरे का आतप पृथ्वी और आकाश में ॥

---

४९ देवता भी सुग्रीव हनुमान् इत्यादि होकर जन्मे ॥

५१ उस पुरुषसे भी वह खीर कठिनतासे उठाई गई क्योंकि उस में विष्णु का बोझ था ॥

५५–अर्चिता तस्य कौसल्या प्रिया केकयवंशजा।
अतः सम्भावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः॥

५६–ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्द्धार्द्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे॥

५७–सा हि प्रणयवत्यासीत् सपत्न्योरुभयोरपि।
भ्रमरी वारणस्येव मदनिस्यन्दरेखयोः॥

५८–ताभिर्गर्भःप्रजाभूत्यै दध्रे देवांशसम्भवः।
सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मयः॥

५९–सममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विषः।
अन्तर्गतफलारम्भा सस्यानामिव सम्पदः॥

६०–गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्व्वाःस्वप्नेषु वामनैः।
जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्त्तिभिः॥

६१–हेमपक्षप्रभाजालं गगने च वितन्वता।
उह्यन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकृष्टपयोमुचा॥

५५-कौसल्या उसकी बड़ी रानी और केकयी प्यारी थी-इसलिये राजा ने सुमित्रा को उन से सम्मानित करना चाहा ॥

५६-यथोचित ज्ञानी महाराज के मन की जाननेवाली उन दोनों रानियों ने चरु के आधे आधे भागों से उसको दिया ॥

५७-वह भी दोनों सौतों में प्यार रखनेवाली थी, जैसे हाथी के मद की दोनों रेखाओं में भौंरी ॥

५८-उन्हों ने प्रजा के उपकार निमित्त देवता के अंश से उत्पन्न हुआ गर्भ धारण किया, जैसे सूर्य्य की अमृता नाम किरणों ने जल ॥

५९-एक साथ गर्भधारण करती हुई पीली कांति को पहुँची हुईं वे शोभित दिखलाई दीं, जैसे भीतर फलों के अंकुर रक्खे हुए अनाज की शाखा ॥

६०-सब ने (अर्थात् तीनों ने) अपने अपने को स्वप्नों में शंख चक्र गदा खड्ग धनुष के चिह्नवाले बौनों से रक्षा होते हुए देखा ॥

६१-और सुनहरी पंखों का प्रभाजाल फैलानेवाले, वेग से बादलों को खेंचनेवाले, गरुड़ करके आकाश में लिये जाते हुए ॥

५५सम्मानित = मान रक्खी हुई ॥

६२-बिभ्रत्या कौस्तुभन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम्।
पर्य्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पद्मव्यजनहस्तया॥

६३-कृताभिषेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः।
ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपतस्थिरे॥

६४-ताभ्यस्तथाविधान् स्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रीतोहि पार्थिवः।
मेने परार्द्ध्यमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः॥

६५-विभक्तात्मा विभुस्तासामेकः कुक्षिष्वनेकधा।
उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव॥

६६-अथाग्र्यमहिषी राज्ञः प्रसूतिसमये सती।
पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवौषधिः॥

६७-राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः।
नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममङ्गलम्॥

६८-रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टाइवाभवन्॥

६९-शय्यागतेन रामेण माता शातोदरी बभौ।
सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शरत्कृशा॥

७०-कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान्।
जनयित्रीमलञ्चक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम्॥

६२—और स्तनों के बीच में लटकती हुई कौस्तुभमणि धारण करनेवाली, हाथ में कमल के पंखेवाली, लक्ष्मी से उपासना होते हुए ॥

६३—और आकाशगङ्गा में स्नान किये हुए, वेद पढ़ते हुए सातों ब्रह्मऋषियों से सम्मान होते हुए ॥

६४—उन से इस प्रकार के स्वप्न सुनकर हर्षवान् राजा ने जगत्पिता का पिता बनने से अपने को श्रेष्ठ माना ॥

६५—एक रूप विष्णु ने अपने को अनेक रूप करके उनकी कुक्षियों में वास किया, जैसे निर्मल जलों की (कुक्षियों) में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब ने ॥

६६—निदान राजा की बड़ी पतिव्रता रानी ने दशवें महीने में तमोगुण का नाश करनेवाला पुत्र जना, जैसे रात बूटी ने उजाला ॥

६७—अभिराम शरीर से प्रेरणा होकर बाप ने उसका नाम जगत् का मुख्य मङ्गल राम रक्खा ॥

६८—उस रघुकुलदीपक से, अनुपम तेजवाले से, सूती घर के दीपक मन्दज्योति से हो गये ॥

६९—दुबले पेटवाली माता शय्या पर सोते हुए राम से सुशोभित हुई, जैसे तट की कमलरचना से शरद् ऋतु की पतली गंगा ॥

७०—केकयी का भरत नाम शीलवान् बेटा जन्मा जिसने माता को शोभित किया, जैसे ह्रीको प्रश्रय ने ॥

---

७० ह्री अर्थात् लज्जा ॥ प्रश्रय अर्थात् नम्रपन ॥

७१—सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ।
सम्यगाराधिता विद्या प्रबोधविनयाविव ॥
७२—निर्दोषमभवत् सर्व्वमाविष्कृतगुणं जगत्।
अन्वगादिव हि स्वर्गः गां गतं पुरुषोत्तमम् ॥

७३—तस्योदये चतुर्मूर्त्तेः पौलस्त्यचकितेश्वराः।
विरजस्कैर्नभस्वद्भिर्दिश उच्छ्वसिता इव ॥

७४—कृशानुरपधूमत्वात् प्रसन्नत्वात् प्रभाकरः।
रक्षोविप्रकृतावास्तामपविद्धशुचाविव ॥
७५—दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणंराक्षसश्रियः।
मणिव्याजेन पर्य्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः ॥
७६—पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्य्याणां तस्य पुत्रिणः।
आरम्भं प्रथमं चक्रुर्देवदुन्दुभयो दिवि ॥
७७—सन्तानकमयी वृष्टिर्भवने चास्य पेतुषी।
सन्मङ्गलोपचाराणां सैवादिरचनाभवत् ॥
७८—कुमाराः कृतसंस्कारास्ते धात्रीस्तन्यपायिनः।
आनन्देनाग्रजेनेव समं ववृधिरे पितुः ॥

७९—स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्म्मणा।
मुमूर्च्छ सहजं तेजः हविषेव हविर्भुजाम् ॥

७१–सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न जोड़िये पुत्र जने, मानो भलीभांति अभ्यास की हुई विद्या ने प्रबोध और विनय ॥

७२–सब जगत् दोषों से रहित गुणों से प्रकाशित हुआ, मानो पृथ्वी पर आए हुए पुरुषोत्तम के पीछे स्वर्ग ही आया ॥

७३–उस चतुर्मूर्ति के उदय में रावण से डरे हुए स्वामियोंवाली दिशाओं ने मानो विना धूलि की पवनों से श्वास ली ॥

७४–निर्धूमता से अग्नि और विमलता से सूर्य्य दोनों राक्षस के सताए हुए सुखी से हुए ॥

७५–उसी समय रावण के किरीटों से राक्षस श्री के आंसू की बूंद मणियों का मिषकरके पृथ्वी में गिरीं ॥

७६–उस पुत्रवान् के पुत्र जन्म में बजने योग्य तुरहियों का आरम्भ पहले आकाश में देवदुन्दुभियों ने किया ॥

७७–और उसके घर में कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा हुई वही श्रेष्ठ मंगल उपचारों की प्रथम रचना हुई ॥

७८–संस्कार किये हुए, धाय का दूध पीनेवाले, वे कुमार मानो पिता के आनन्द के साथ जो जन्म में उन से जेठा था बढ़ने लगे ॥

७९–उनका स्वाभाविक नम्रपन शिक्षा होने से अधिक बढ़ा जैसे अग्नि का स्वाभाविक तेज हविष पाने से ॥

---

७३ चतुर्मूर्ति अर्थात् राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न ॥

७९ हविष = घी इत्यादि हवन की सामग्री ॥

८०—परस्पराविरुद्धास्ते तद्रघोरनघं कुलम्।
अलमुद्योतयामासुर्देवारण्यमिवर्त्तवः॥

८१—समानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः॥
८२—तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं बिभिदे न कदाचन।
यथा वायुविभावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः॥
८३—ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च।
मनो जह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव॥

८४—स चतुर्द्धा बभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवीपतेः।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गवान्॥

८५—गुणैराराधयामासुस्ते गुरुं गुरुवत्सलाः।
तमेव चतुरन्तेशं रत्नैरिव महार्णवाः॥
८६—सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारैः।
नय इव पणबन्धव्यक्तयोगैरुपायैः।
हरिरिव युगदीर्घैर्दोर्भिरंशैस्तदीयैः।
पतिरवनिपतीनां तैश्चकाशे चतुर्भिः॥

इति श्रीरघुवंशे दशमः सर्गः॥

८०—उन आपस में विरोधरहितों ने रघु के उस निष्पाप कुलको अत्यन्त प्रकाशित किया, जैसे ऋतुओं ने नन्दन वनको ॥

८१—सुभ्रातपन की समानता में भी जैसे राम लक्ष्मण तैसे भरत शत्रुघ्न प्रीति करके जोड़े जोड़े बने ॥

८२—उन जोड़े जोड़े की प्रीति कभी टूटी नहीं जैसे अग्नि और पवनकी, जैसे समुद्र और चन्द्रमा की ॥

८३—उन प्रजानाथों ने तेज से और नम्रता से प्रजा का मन हरा, जैसे ग्रीष्म के अन्त में काले बादलों वाले दिनों ने ॥

८४—राजा की वह चार रूप में बँटी हुई सन्तान शोभित हुई, मानो धर्म अर्थ काम मोक्ष का मूर्तिमान् अवतार ॥

८५—उन बाप के प्यारों ने बाप को गुणों से प्रसन्न किया जैसे उसी पृथ्वीपति को महासमुद्रों ने रत्नों से ॥

८६—जैसे दैत्यों के खण्ड की धार तोड़नेवाले दांतों से ऐरावत, जैसे पणबन्ध इत्यादि उपायों से नीति, जैसे जुएँ के समान बड़ी भुजाओं से विष्णु, ऐसे उसी के उन चारों अंशों से राजाओं का राजा दीप्तिमान् हुआ ॥

दशवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

---

८० ऋतुओं के आपस में स्वभाव वैर भी है तौ भी विरोध त्यागकर नन्दन वनको सब शोभित करती हैं ॥

एकादशः सर्गः ॥

सीतास्वयंवरः

१—कौशिकेन स किल क्षितीश्वरः ।
रामम ध्वरविघातशान्तये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितः ।
तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥
२—कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक् ।
तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ।
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले ।
न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ॥
३—यावदादिशति पार्थिवस्तयोः ।
निर्गमाय पुरमार्गसंस्क्रियाम् ।
तावदाशु विदधे मरुत्सखैः ।
सा सपुष्पजलवर्षिभिर्घनैः ॥
४—तौ निदेशकरणोद्यतौ पितुः ।
धन्विनौ चरणयोर्निपेततुः ।
भूपतेरपि तयोः प्रवत्स्यतोः ।
नम्रयोरुपरि बाष्पबिन्दवः ॥

ग्यारहवां सर्ग

सीतास्वयंवर

१—कहते हैं कि विश्वामित्र ने जाकर उस राजा से यज्ञ के उपद्रव की शान्ति के लिये कुल्लियोंवाले रामको मांगा तेजस्वियों की बैस नहीं देखी जातीहै ॥

२—पण्डितों के मान रखनेवाले ने बड़े दुःखों से पाया हुआ भी वह (पुत्र) लक्ष्मण सहित मुनिको दिया रघु के कुल में प्राण मांगनेवालों की भी याचना कभी निष्फल नहीं गई ॥

३—जबतक उनके सिधारने के लिये राजा नगर मार्ग को सजावट की आज्ञा दे तबतक वह (सजावट) पवन के मित्रों ने, फूलों सहित जल बरसानेवाले बादलों ने, तुरन्त करदी ॥

४—आज्ञा पूरी करने पर उद्यत वे दोनों धनुषधारी पिता के चरणों में गिरे; राजा के भी आंसू उन चलते हुए विनीतवानों के ऊपर गिरे ॥

---

१ कुल्लियोंवाला=जिसका केशान्त संस्कार न हुआहो ॥

५—तौ पितुर्नयनजेन वारिणा।
किञ्चिदुक्षितशिखण्डकावुभौ।
धन्विनौ तमृषिमन्वगच्छतां।
पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ॥

६—लक्ष्मणानुचरमेव राघवं।
नेतुमैच्छदृषिरित्यसौनृपः।
आशिषं प्रयुयुजे न वाहिनीं।
साहि रक्षणविधौ तयोःक्षमा॥

७-मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेः।
तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः।
रेजतुर्गतिवशात् प्रवर्त्तिनौ।
भास्करस्य मधुमाधवाविव॥

८—वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं।
शैशवाच्चपलमप्यशोभत।
तोयदागम इवोद्ध्यभिद्ययोः।
नामधेयसदृशं विचेष्टितम्॥

५-पिताके आंसुओं से कुछ चोटी भीगे हुए वे दोनों धनुषधारी मार्ग में पुरवासियों की दृष्टि को तोरण बनाते हुए उस ऋषिके पीछे गए॥

६-ऋषि ने लक्ष्मणही सहित रामको लेजाना चाहा था इसलिये उस राजा ने सेना साथ न दी असीस दी वही उनकी रक्षा विधिमें समर्थथी॥

७-माता वर्ग के चरणों में नमस्कार किए हुए वे दोनों उस महातेजस्वी मुनिके मार्ग में प्राप्त होकर शोभायमान दीखे, जैसे सूरज के (मार्ग) में गति के वश से फिरते हुए चैत वैसाख॥

८-उन चलायमान तरंग समान बांहवालों की बालकपन में चञ्चलचाल भी शोभायमान थी, जैसे वरसा ऋतु में नामसदृशगुणवाले उद्ध और भिद्य (नदों) की गति॥

---

५ राम लक्ष्मण का जाना देखने के लिये अयोध्या के लोग ठौर ठौर पंक्ति बांधे खड़े थे उनकी दृष्टिही मानों मार्ग में तोरण (बन्दनवार) बनी थी॥

७ मातावर्ग=सब माता॥

८ उद्ध और भिद्य दो नदीहैं उद्ध नाम इसलिये हुआ कि बरसात में उसका जल ऊंचा उठता है और भिद्य इसलिये कि तटों को तोड़ता है॥

९—तौ बलातिबलयोः प्रभावतो।
विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयोः।
मम्लतुर्न मणिकुट्टिमोचितौ।
मातृपार्श्वपरिवर्त्तिनाविव॥

१०—पूर्व्ववृत्तकथितैः पुराविदः।
सानुजः पितृसखस्य राघवः।
उह्यमान इव वाहनोचितः।
पादचारमपि न व्यभावयत्॥

११—तौ सरांसि रसवद्भिरम्बुभिः।
कूजितैः श्रुतिसुखैः पतत्रिणः।
वायवः सुरभिपुष्परेणुभिः।
छायया च जलदाः सिषेविरे॥

१२—नाम्भसां कमलशोभिनां तथा।
शाखिनाञ्च न परिश्रमच्छिदाम्।
दर्शनेन लघुना यथा तयोः।
प्रीतिमापुरुभयोस्तपस्विनः॥

१३—स्थाणुदग्धवपुषस्तपोवनं।
प्राप्य दाशरथिरात्तकार्म्मुकः।
विग्रहेण मदनस्य चारुणा।
सोऽभवत् प्रतिनिधिर्न कर्म्मणा॥

---

१२ लघुः = ह्रस्वस्तु॥

९—मुनि के सिखाए हुए बल और अतिबल नाम दो मन्त्रों के प्रभाव से वे रत्नजटित भूमि के चलनेवाले मार्ग में मलिन न हुए, जैसे माताकी गोदमें बैठेहुए॥

१०—पुरानी बातों के जाननेवाले, बाप के प्यारे, मुनि की कही हुई प्राचीन कथाओं पर चढ़ेहुए से राघवने, वाहन पर चलने योग्य ने, भाई सहित पैरों चलना भी न जाना॥

११—उनको तालों ने मीठे जलों से, पक्षियों ने कानों को सुख देनेवाले शब्दों से, पवनों ने सुगन्धित फूलों की रजों से, और बादलों ने छाया से, सेवन किया॥

१२—न कमलों की शोभावाले जलों के दर्शन से न थकावट मेटनेवाले वृक्षों के से तपस्वियों ने ऐसा आनन्द पाया जैसा उन दोनों के अभिलाषा किएहुए (दर्शन) से॥

१३—महादेव के जलाए हुए (कामदेव) के तपोवन में पहुँच कर वह चढ़ेहुए चापवाला दशरथ का पुत्र मनोहर शरीर से कामदेव की मूर्त्ति हुआ नकि कामसे॥

१४–तौ सुकेतुसुतया खिलीकृते।
कौशिकाद्विदितशापया पथि।
निन्यतुः स्थलनिवेशिताटनी।
लीलयैव धनुषी अधिज्यताम् ॥

१५–ज्यानिनादमथ गृह्णती तयोः।
प्रादुरास बहुलक्षपाछविः।
ताड़का चलकपालकुण्डला।
कालिकेव निविड़ा बलाकिनी ॥

१६–तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया।
प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया।
अभ्यभावि भरताग्रजस्तया।
वात्येव पितृकाननोत्थया ॥

१७–उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं।
श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम्।
तां विलोक्य वनितावधे घृणां।
पत्रिणा सह मुमोच राघवः ॥

---

१५ कालिका = घनावली ॥

१४—विश्वामित्र से सुनी हुई शापित ताड़का (सुकेतुसुता) के सूने किएहुए मार्ग में उन दोनों ने, धनुष की नोक धरती में टेकते हुओं ने, मानो खेल करके धनुषों पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई ॥

१५—तब उनकी प्रत्यञ्चा की टङ्कार सुनकर अँधेरी रात की छबिवाली, हिलते हुए कपाल कुण्डलोंवाली, ताड़का प्रकट हुई, मानो बगलियों सहित घनी घटा ॥

१६—उस तीव्रवेग से मार्ग के वृक्ष हिलानेवाली ने, प्रेतों के वस्त्र ओढ़नेवाली ने, भारी शब्द करनेवाली ने, भरत के बड़े भाई को डराया, मानो मरघट में उठेहुए बगूले ने ॥

१७—उस एक भुजा रूपी लाठी उठाये आतीहुई को, कटि में मनुष्य की आंतों की मेखला लटकाई हुई को, देखकर राघव ने बाण के संगही स्त्री हत्या की घिन छोड़ी ॥

---

१४ विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण को जता दिया था कि यह जङ्गल ताड़का राक्षसी का है जिसको अगस्त्य मुनि ने शाप दिया है कि राम के हाथ से मारी जायगी ॥

१७ आततायी के मारने में घिन उचित नहीं है चाहै स्त्री हो चाहै पुरुष इसलिये रामचन्द्र ने ताड़का मारने को बाण छोड़ा उस समय स्त्री हत्या की घिन भी छोड़ी ॥

१८—यश्चकार विवरं शिलाघने।
ताडकोरसि स रामसायकः।
अप्रविष्टविषयस्य रक्षसां।
द्वारतामगमदन्तकस्य तत्॥
१९—बाणभिन्नहृदया निपेतुषी।
सा स्वकाननभुवं न केवलाम्।
विष्टपत्रयपराजयस्थिरां।
रावणश्रियमपि व्यकम्पयत्॥
२०—राममन्मथशरेण ताडिता।
दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता।
जीवितेशवसतिं जगाम सा॥
२१—नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुनेः।
प्रापदस्त्रमवदानतोषितात्।
ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात्।
सूर्य्यकान्त इव ताडकान्तकः॥
२२—वामनाश्रमपदं ततः परं।
पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान्।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितानि।
अस्मरन्नपि बभूव राघवः॥

१८—जो छेद ताड़का की शिला समान कठोर छाती में राम के उस बाण ने किया सोई राक्षसों के देश में आगे प्रवेश न किए हुए यम का द्वार हुआ॥

१९—उस बाण से छिदी हुई छातीवाली ने गिरने में केवल अपने वन की भूमिही नहीं तीन लोक जीतने से स्थिरता पाई हुई रावण की श्री भी हिला दी॥

२०—रामरूपी कामदेव के कठिन बाण से हृदय में बिंधी हुई वह राक्षसी, बसीले रुधिर रूपी चन्दनका सोंधा लगाए हुए जीवितेश (यम अथवा प्रीतम) के धाम को गई॥

२१—तब पराक्रम करके प्रसन्न किए हुए मुनि से ताड़का मारनेवाले ने राक्षसी का मारनेवाला मन्त्र सहित अस्त्र पाया, मानो सूर्यकान्तिमणि ने सूरज से काठ जलाने वाला तेज॥

२२—तिस पीछे वामनजी के पवित्र आश्रम में, मुनि से सुने हुए में, पहुंच कर पहले जन्म के काम भूले हुए भी रामचन्द्र को उत्कण्ठा उपजी॥

---

२० ताड़का को अभिसारिका नायका बनाया है॥ रामका बाण लगा सोई मानो कामदेव की प्रेरणा हुई बुरी बास का बोहू था सोई मानो शरीर में सुंधा लगा था यमलोक था सोई प्रीतम का घर था॥

२३—आससाद मुनिरात्मनस्ततः।
शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम्।
बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं।
दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम्॥

२४—तत्र दीक्षितमृषिं ररक्षतुः।
विघ्नतो दशरथात्मजौ शरैः।
लोकमन्धतमसात् क्रमोदितौ।
रश्मिभिः शशिदिवाकराविव॥

२५—वीक्ष्य वेदिमथरक्तबिन्दुभिः।
बन्धुजीवपृथुभिः प्रदूषिताम्।
सम्भ्रमोऽभवदपोढकर्म्मणाम्।
ऋत्विजां च्युतविकङ्कतस्रुचाम्॥

२६—उन्मुखः सपदि लक्ष्मणाग्रजः।
बाणमाश्रयमुखात् समुद्धरन्।
रक्षसां बलमपश्यदम्बरे।
गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम्॥

२७—तत्र यावधिपती मखद्विषां।
तौ शरव्यमकरोत् स नेतरान्।
किं महोरगविसर्पिविक्रमः।
राजिलेषु गरुडः प्रवर्त्तते॥

२३–फिर मुनिजी अपने आश्रम में, चेलों की इकट्ठी की हुई पूजा सामग्री वाले में, पत्तों की अंजुली बांधे हुए वृक्षों वाले में, दर्शन के लिये मुख उठाये हुए मृगोंवाले में, पहुँचे ॥

२४–वहां दीक्षा लिये हुए ऋषि को दशरथ के दोनों पुत्रों ने बाणों के द्वारा विघ्नों से बचाया, जैसे बारी बारी से चन्द्र और सूरज ने लोक को किरणों के द्वारा घोर अन्धकार से ॥

२५–तब वेदी को बन्धु जीव के फूल समान लोहू की बड़ी बूंदों से दूषित देखकर ऋत्विजों को, सबकर्म छोड़ेहुओं को, विकंकतकी स्रुचा त्यागे हुओंको, अचम्भाहुआ ॥

२६–लक्ष्मण के जेठे भाई ने, निषंग से तुरन्त बाण निकालते हुए ने, आकाश में राक्षसों की सेना, गृद्धों के पंखों की पवन से हिलतीहुई ध्वजावाली, देखी ॥

२७–वहां राक्षसों के जो दो मुखिये थे उनको उस (राम) ने बाण का बेझा बनाया औरों को नहीं ॥ बड़े सर्पों में पराक्रम दिखानेवाला गरुड़ क्या सपोलों में प्रवृत्त होता है ?॥

---

२५ बन्धु जीव=दुपहरिये का फूल ॥ विकंकत स्रुचा=खैर की लकड़ी की कलछी जो यज्ञ में काम आती है ॥ ऋत्विज=यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण ॥

२८—सोऽस्त्रमुग्रजवमस्त्रकोविदः।
सन्दधे धनुषि वायुदैवतम्।
तेन शैलगुरुमप्यपातयत्।
पाण्डुपत्रमिव ताड़कासुतम्॥

२९—यः सुबाहुरिति राक्षसोऽपरः।
तत्र तत्र विससर्प मायया।
तं क्षुरप्रशकलीकृतं कृती।
पत्रिणां व्यभजदाश्रमाद्बहिः॥

३०—इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयोः।
सांयुगीनमभिनन्द्य विक्रमम्।
ऋत्विजः कुलपतेर्यथाक्रमं।
वाग्यतस्य निरवर्त्तयन् क्रियाः॥

३१—तौप्रणामचलकाकपक्षकौ।
भ्रातराववभृथाप्लुतो मुनिः।
आशिषामनुपदं समस्पृशत्।
दर्भपाटिततलेन पाणिना॥

३२—तं न्यमन्त्रयत सम्भृतक्रतुः।
मैथिलः स मिथिलां व्रजन् वशी।
राघवावपि निनाय बिभ्रतौ।
तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलम्॥

३३—तैः शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः।
सायमाश्रमतरुष्वगृह्यत।
येषु दीर्घतपसः परिग्रहः।
वासवक्षणकलत्रतां ययौ॥

२८–अस्त्रज्ञानी ने पवन देवता वाला बड़ा वेगवान् अस्त्र धनुष पर चढ़ाया, उससे ताड़का का सुत (मारीच) पहाड़ समान भारी भी पीले पत्ते की नाईं गिराया ॥

२९–सुबाहु नाम जो दूसरा राक्षस था जहां जहां माया करके गया उसको चतुर (राम) ने पैने बाणों से टुकड़े करके आश्रम के बाहर पक्षियों को बांट दिया ॥

३०–इस प्रकार यज्ञ के विघ्न मिटानेवाले उन दोनों का युद्ध का पराक्रम सराहकर ऋत्विजों ने मौन साधे हुए कुलपति का यज्ञ विधिपूर्वक समाप्त किया ॥

३१–प्रणाम करने में हिलती हुई कुल्लियोंवाले उन दोनों भाइयों को यज्ञ का अन्त स्नान किए हुए मुनि ने असीस देकर दाभ से चिरी हुई हथेली वाले हाथ से छुआ ॥

३२–उसको यज्ञकी सामग्री इकट्ठी किए हुए मिथिलेश (जनक) ने निमन्त्रण भेजा ॥ वह जितेन्द्रिय मिथिला नगरी को जाता हुआ उस धनुष के सुन्ने से उपजे हुए कुतूहलधारी राघवों को भी लेगया ॥

३३–उन मार्ग के अन्त पर पहुँचे हुओं ने सांझ समय सुन्दर आश्रम के रूखों में बसेरा लिया, जिनमें बड़े तपस्वी (गौतम) की नारी इन्द्र की क्षणमात्र पत्नी बनीथी ॥

३४—प्रत्यपद्यतचिराय यत् पुनः।
चारु गौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल्बिषच्छिदां।
रामपादरजसामनुग्रहः॥

३५—राघवान्वितमुपस्थितं मुनिं।
तं निशम्य जनको जनेश्वरः।
अर्थकामसहितं सपर्य्यया।
देहबद्धमिव धर्म्ममभ्यगात्।

३६—तौ विदेहनगरीनिवासिनां।
गां गताविव दिवः पुनर्वसू।
मन्यते स्म पिबतां विलोचनैः॥
पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनः॥

३७—यूपवत्यवसिते क्रियाविधौ।
कालवित् कुशिकवंशवर्द्धनः।
राममिष्वसनदर्शनोत्सुकं।
मैथिलाय कथयाम्बभूवसः॥

३८—तस्य वीक्ष्य ललितं वपुःशिशोः।
पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः।
स्वं विचिन्त्य च धनुर्दुरानमं।
पीडितो दुहितृशुल्कसंस्थया॥

३४–गौतम की शिलारूप स्त्री ने जो बहुत काल पीछे अपना सुन्दर शरीर फिर पाया सो कहते हैं कि राम के चरनों की पापमोचन रज का अनुग्रह था॥

३५–दोनों राघवों सहित मुनि को आया हुआ सुनकर राजा जनक पूजा सामग्री लेकर उस मुनि को आगे मिला, मानो अर्थ और काम सहित मूर्त्तिमान धर्म्म को॥

३६–उन दोनों को आकाश से पृथ्वी पर आए हुए पुनर्वसुओं सरीकों को, उन चाव से देखते हुए जनकपुर बासियों के मन ने पलक मारना भी बिघ्न माना॥

३७–अनुष्ठान क्रिया समाप्त होने पर उस अवसर जाननेवाले कुशिककुलवर्द्धन (विश्वामित्र) ने मिथिलेश से रामका धनुष दर्शन का उत्साही होना कहा॥

३८–उस प्रसिद्ध बंशके बालक का मनोहर शरीर देखकर और अपने धनुष की कठिनता विचार कर राजा कन्या मोल की प्रतिज्ञा से दुखी हुआ॥

---

३८ कन्या मोल=धनुष उठाने का पण॥

३९—अब्रवीच्च भगवन् मतंगजैः।
यद्बृहद्भिरपि कर्म्म दुष्करम्।
तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे।
मोघवृत्ति कलभस्य चेष्टितम्॥
४०—ह्रेपिता हि बहवो नरेश्वराः।
तेन तात धनुषा धनुर्भृतः।
ज्यानिघातकठिनत्वचो भुजान्।
स्वान् विधूय धिगिति प्रतस्थिरे॥
४१—प्रत्युवाच तमृषिर्निशम्यतां।
सारतोऽयमथवा गिराकृतम्।
चाप एव भवतो भविष्यति।
व्यक्तशक्तिरशनिर्गिराविव॥
४२—एवमाप्तवचनात् स पौरुषं।
काकपक्षधरेऽपि राघवे।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके।
दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि॥
४३—व्यादिदेश गणशोऽथ पार्श्वगान्।
कार्मुकाभिहरणाय मैथिलः।
तैजसस्य धनुषः प्रवृत्तये।
तोयदानिव सहस्रलोचनः॥

३९–और बोला "हे भगवन जो काम बड़े मतङ्गों से भी होना कठिन है उसमें बच्चे का व्यर्थ फलवाला साहस अनुमान करने को मैं उत्साह नहीं करता हूं" ॥

४०–"हे तात इस धनुष से बहुतेरे धनुषधारी राजा लज्जित होकरही अपनी भुजाओं को, प्रत्यञ्चा की फटकारों से कड़ी त्वचावालियों को, धिक्कार है ऐसा कहकर चले गए हैं" ॥

४१–ऋषिने उसको उत्तर दिया "यह बल से, अथवा कहने से क्या है यह तेरे चापही में बल दिखानेवाला होगा, जैसे पर्वत में वज्र" ॥

४२–इस प्रकार के आप्त बचन से उसने कुल्लियोंवाले राम में भी पराक्रम विश्वास किया, जैसे इन्द्रबधू मात्र अग्नि में दाह शक्ति ॥

४३–तब सेवकों के समूह को जनक ने धनुषलाने के लिये आज्ञा दी, मानो इन्द्र ने बादलों के (समूह) को तेजमय धनुष प्रगट करने के लिये ॥

---

४२ इन्द्र वधू मात्र अग्नि अर्थात् चिनगारी ॥

४४—तत् प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणं।
वीक्ष्य दाशरथिराददे धनुः।
विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं।
येन बाणमसृजत् वृषध्वजः॥
४५—आततज्यमकरोत् स संसदा।
विस्मयस्तिमितनेत्रमीक्षितः।
शैलसारमपि नातियत्नतः।
पुष्पचापमिव पेशलं स्मरः॥
४६—भज्यमानमतिमात्रकर्षणात्।
तेन वज्रपरुषस्वनं धनुः।
भार्गवाय दृढमन्यवे पुनः।
क्षत्रमुद्यतमिव न्यवेदयत्॥
४७—दृष्टसारमथ रुद्रकार्मुके।
वीर्य्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः।
राघवाय तनयामयोनिजां।
रूपिणीं श्रियमिव न्यवेदयत्॥
४८—मैथिलः सपदि सत्यसंगरः।
राघवाय तनयामयोनिजाम्।
सन्निधौ द्युतिमतस्तपोनिधेः।
अग्निसाक्षिक इवातिसृष्टवान्॥

४४—दशरथसुत ने उस सोते हुए सर्प्पराज समान भयंकर धनुष को जिससे महादेवजी ने भागते हुए यज्ञ रूपी मृग के पीछे जानेवाला बाण छोड़ा था देखकर उठा लिया ॥

४५—अचम्भे में निश्चल आंखोंवाली सभा के देखते हुए उस (राम) ने पर्वत के बलवाला (धनुष) भी बिना बहुत यत्नही प्रत्यंचा चढ़ा हुआ करदिया, मानो कामदेव ने फूलों का कोमल चाप ॥

४६—उसके बहुत खैंचने से टूटते हुए धनुष ने, वज्र समान कठोर शब्दवाले ने, मानो अति क्रोधी परशुराम को क्षत्रियों का फिर उद्यत होना जताया ॥

४७—तब महादेव के धनुष में देखा हुआ पराक्रम रूपी कन्या मोल सराहकर जनक ने बिना योनि से जन्मी हुई बेटी राघव को अर्पण की, मानो रूपवती लक्ष्मी

४८—सच्ची प्रतिज्ञावाले जनक ने, बिना योनि से जन्मी हुई बेटी राघव को कान्तिमान तपस्वी के साम्हने तुरन्त दी, मानो अग्नि साक्षी करके ॥

---

४७ इस श्लोक में जनक ने सीता मन में राम को अर्पण की और अगले श्लोक में गुरु के सामने प्रकट किया कि मैंने अपनी कन्या राम को दी, सीता पृथ्वी से निकली थी इसलिए बिना योनि से जन्मी हुई कहलाई ॥

४९—प्राहिणोच्च महितं महाद्युतिः
कोसलाधिपतये पुरोधसम्।
भृत्यभावि दुहितुः परिग्रहात्
दिश्यतां कुलमिदं निमेरिति॥

५०—अन्वियेष सदृशीं स च स्नुषां।
प्राप चैनमनुकूलवाग् द्विजः।
सद्य एव सुकृतां हि पच्यते।
कल्पवृक्षफलधर्मि कांक्षितम्॥

५१—तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः
शुश्रुवान् वचनमग्रजन्मनः।
उच्चचाल बलभित्सखो वशी।
सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः॥

५२—आससादमिथिलां स वेष्टयन्।
पीड़ितोपवनपादपां बलैः।
प्रीतिरोधमसहिष्ट सा पुरी।
स्त्रीव कान्तपरिभोगमायतम्॥

५३—तौ समेत्य समये स्थितावुभौ।
भूपती वरुणवासवोपमौ।
कन्यकातनयकौतुकक्रियां।
स्वप्रभावसदृशीं वितेनतुः॥

५४—पार्थिवीमुदवहद्रघूद्वहः।
लक्ष्मणस्तदनुजामथोर्मिलाम्।
यौ तयोरवरजौ वरौजसौ।
तौ कुशध्वजसुते सुमध्यमे॥

४९—और कोसलपति (दशरथ) के लिये महातेजस्वी ने महाशय पुरोहित यह कहकर भेजा कि बेटी ब्याहने से इस निमि के कुलको सेवक भाववाला जानो ॥

५०—वह (पुत्रके) सदृश वधू चाहताथा और चाही हुई बात का कहनेवाला ब्राह्मण उसके पास पहुँचा ॥ सुकृतियों की मनोकामना कल्पवृक्ष के फल के स्वभाव वाली तुरन्तही पकती है (अर्थात् फलती है) ॥

५१—उस पूजन सत्कार किए हुए ब्राह्मण का वचन सुनकर इन्द्र का बली सखा (दशरथ) सेना की रजसे सूर्य की किरणों को ढकता हुआ चला ॥

५२—वह सेना के हिलाए हुए वृक्षों के उपवनोंवाली मिथिला (नगरी) को घेरता हुआ पहुँचा; उस पुरी ने प्यार का घेरा सहा, जैसे स्त्री ने प्यारे का कड़ा आलिंगन ॥

५३—उन दोनों आचार नेष्ठावाले राजाओंने, वरुण और इन्द्र की उपमा योग्यों ने, मिलकर पुत्रियों और पुत्रों की विवाह क्रिया अपने वैभवों के अनुसार किया ॥

५४—पृथ्वी की बेटी (सीता) रघुकुलनायक ने ब्याही और उसकी छोटी बहन उर्म्मिला लक्ष्मण ने; उनके जो दो तेजस्वी भाई थे उन्हों ने अच्छी कटिवाली कुशध्वज की दो बेटियां ॥

५५–तेचतुर्दसहितास्त्रयो बभुः!
सूनवो नववधूपरिग्रहात्।
सामदानविधिभेदनिग्रहाः।
सिद्धिमन्त इव तस्य भूपतेः॥
५६–ता नराधिपसुता नृपात्मजैः।
ते च ताभिरगमन् कृतार्थताम्।
सोऽभवद्वरवधूसमागमः।
प्रत्ययप्रकृतियोगसन्निभः॥
५७–एवमात्तरतिरात्मसम्भवान्।
तान् निवेश्य चतुरोऽपि तत्र सः।
अध्वसु त्रिषु विसृष्टमैथिलः।
स्वां पुरीं दशरथो न्यवर्त्तत॥
५८–तस्य जातु मरुतः प्रतीपगाः
वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः।
चिक्लिशुर्भृशतयावरूथिनीम्।
उत्तटा इव नदीरयाः स्थलीम्।
५९–लक्ष्यते स्म तदनन्तरं रविः।
बद्धभीमपरिवेशमण्डलः।
वैनतेयशमितस्य भोगिनः।
भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः॥

५५—चौथे समेत वे तीनों बालक नई बहुओं के पाणिग्रहण से शोभायमान हुए, मानो उस राजा के फल सिद्धि वाले साम दान विधि भेद और दण्ड ॥

५६—उन राजकुमारियों ने राजकुमारों से और इन्हों ने उन से कृतार्थपन पाया; दूलह दुलहिनों का वह समाज प्रत्यय और प्रकृति के संयोग समान हुआ ॥

५७—इस प्रकार वह अनुरागवान् दशरथ वहां अपने उन चारों बेटों को ब्याहकर जनक को तीसरे पड़ाव में छोड़ता हुआ अपनी पुरी को लौटा ॥

५८—एक समय ध्वजा रूपी वृक्षों को हिलाने वाली सामने की पवनों ने उसकी सेना को बहुत सताया मानो नदी के उत्तट प्रवाहने जङ्गल की भूमि को ॥

५९—तिस पीछे सूरज भयानक परिधि मण्डल में बँधा हुआ दिखलाई दिया, मानो गरुड़ के मारे हुए सर्प की कुण्डली में गिरी हुई मणि ॥

---

५५ बहुओं समेत चारों बेटे दशरथ को ऐसे हुए मानो अपने अपने फलों समेत साम दान दण्ड भेद ॥

५६ व्याकरण में जब प्रत्यय और प्रकृति मिलते हैं तब अर्थवान् शब्द बनताहै ॥

६०—श्येनपक्षपरिधूसरालकाः।
सान्ध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः।
अङ्गना इव रजस्वला दिशः।
नो बभूवुरवलोकनक्षमाः॥
६१—भास्करश्च दिशमध्युवास यां।
तां श्रिता प्रतिभयं ववाशिरे।
क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं।
चोदयन्त्य इव भार्गव शिवा॥
६२—तत् प्रतोपपवनादि वैकृतं।
प्रेक्ष शान्तिमधिकृत्यकृत्यवित्।
अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वरः क्षितेः।
स्वन्तमित्यलघयत् स तद्व्यथाम्॥
६३—तेजसः सपदि राशिरुत्थितः।
प्रादुरास किल वाहिनीमुखे।
यः प्रमृज्य नयनानि सैनिकैः।
लक्षणीयपुरुषाकृतिश्चिरात्॥
६४—पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं।
मातृकञ्च धनुरूर्ज्जितं दधत्।
यः ससोम इव घर्म्मदीधितिः।
सद्विजिह्व इव चन्दनद्रुमः॥

६०—श्येन के पंखों रूपी धूसरी अलकोंवाली, सांझ के बादलों रूपी लोहू के आले कपड़ोंवाली, रजस्वला (अर्थात् धूल उड़ती हुई) दिशा देखने के अयोग्य हुई, जैसे (रजस्वला) स्त्री ॥

६१—और जिस दिशा में सूरज रहता है (अर्थात् पूरब) उसमें गीदड़ियों ने भयंकर रुदन किया, मानो क्षत्रियों के लोहू से पितृयों का तर्पण करनेवाले परसराम के उभारने को ॥

६२—तब उलटी पवन इत्यादि के बुरे शगुन देखकर उस कार्य्यज्ञानी भूपति ने उनके निवारने के लिये गुरू से पूछा; " परिणाम अच्छा होगा " यह कहकर उसने उसकी विथा घटाई ॥

६३—कहते हैं कि जोति का एक पुंज तुरन्त उठकर सेना के आगे प्रकट हुआ जिसको योद्धाओं ने आंख मीड़कर बहुत बेर में मनुष्य आकार जाना; ॥

६४—जो जनेऊ के चिह्नवाला पिता का अंश और धनुष से बल पाया हुआ माता का अंश धारण किए हुए था, मानो चन्द्रमा सहित सूर्य, सर्पसहित चन्दन का वृक्ष; ॥

---

६० श्येन = शिकरा अथवा बाज पक्षी ॥

६५—येन रोषपरुषात्मनः पितुः।
शासने स्थितिभिदोऽपि तस्थुषा।
वेपमानजननीशिरश्छिदा।
प्रागजीयत घृणा ततो मही॥
६६—अक्षबीजवलयेन निर्बभौ।
दक्षिणश्रवणसंस्थितेन यः।
क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेः।
व्याजपूर्व्वगणनामिवोद्वहन्॥
६७—तं पितुर्वधभवेन मन्युना।
राजवंशनिधनाय दीक्षितम्।
बालसूनुरवलोक्य भार्गवं।
स्वां दशाञ्च विषसाद पार्थिवः॥
६८—नाम राम इति तुल्यमात्मजे।
वर्तमान महिते च दारुणे।
हृद्यमस्य भयदायि चाभवत्।
रत्नजातमिव हारसर्पयोः॥
६९—अर्घ्य मर्घ्य मिति वादिनं नृपं।
सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजोयतः।
क्षत्रकोपदहनार्चिषं ततः।
सन्दधे दृशमुदग्रतारकाम्॥
७०—तेन कार्मुकनिषक्तमुष्टिना।
राघवो विगतभीः पुरोगतः।
अंगुलीविवरचारिणं शरं।
कुर्व्वता निजगदे युयुत्सुना॥

६५—जिसने क्रोधी कठोरबुद्धी मर्यादाघाती पिताकी भी आज्ञा पूरी करने में प्रवृत्त होकर कंपती हुई माता का सिर काटकर पहले दया जीती थी फिर पृथ्वी; ॥

६६—जो दाहने कान पर रक्खी हुई रुद्राक्ष की माला से दीसमान था, मानो इस मिससे क्षत्रियों के नाशवाली इक्कीस की गिन्ती धारण किए हुए ॥

६७—पिताके वधसे उपजे हुए कोपके कारण क्षत्री वंशके नाश निमित्त प्रतिज्ञा किए हुए उस भार्गव को और अपनी दशाको देखकर छोटे पुत्रोंवाला राजा दुखी हुआ ॥

६८—अपने पुत्र में और कठोर वैरी में समानवर्ती राम यह नाम उसको प्यारा और भयंकर हुआ, जैसे हारमें और सर्प में रत्न ॥

६९—"अर्घ अर्घ" ऐसा कहते हुए राजा की ओर न देखता हुआ जिधर भरत का बड़ा भाई था उधर उसने क्षत्रीवंश पर कोप रूपी अग्नि की ज्वालावाली, भयानक पुतली वाली, दृष्टि दिखलाई ॥

७०—धनुष में मुट्ठी बांधते हुए, अंगुलियों में बाण फिराते हुए, उस युद्ध चाहनेवाले ने सामने आए हुए निडर राघव से कहा ॥

७१–क्षत्रजातमपकारवैरि मे।
तन्निहत्य बहुशः शमं गतः।
सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनात्।
रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात्॥

७२–मैथिलस्य धनुरन्यपार्थिवैः।
त्वं किलानमितपूर्व्वमक्षणोः।
तन्निशम्य भवता समर्थये।
वीर्य्यशृंगमिव भग्नमात्मनः॥

७३–अन्यदा जगति राम इत्ययं।
शब्द उच्चरित एव मामगात्।
व्रीड़मावहति मे स सम्प्रति।
व्यस्तवृत्तिरुदयोन्मुखे त्वयि॥

७४–बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं।
द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ।
धेनुवत्सहरणाच्च हैहयः।
त्वञ्च कीर्त्तिमपहर्त्तुमुद्यतः॥

७५–क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमः।
तेन मामवति नाजिते त्वयि।
पावकस्य महिमा स गण्यते।
कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः॥

---

७२ समर्थये = मन्ये॥

७१—"अपकार करने से क्षत्री वंश मेरा बैरी है उसको बहुत वेर मारकर शांति को गया हुआ मैं तेरा पराक्रम सुन्ने से कोपित हुआ हूं, जैसे लाठी लगने से सोता हुआ सांप" ॥

७२—"पहले और राजाओं का न नवाया हुआ जनक का धनुष तैंने तोड़ा तिसको सुनकर मैंने अपना पराक्रम रूपी सींग तुझसे टूटा हुआ सा माना है" ॥

७३—"अबतक जगत् में उच्चारण किया हुआ राम यह शब्द मुझी में था, अब तेरे उदय होनेपर दूसरे में जाकर मुझे लजाता है" ॥



—"पहाड़ों में भी न रुकेहुये अस्त्र के मुझ धारण करने वाले ने अपने दो बैरी समान अपराधी माने हैं, गाय का बछड़ा हरने से कार्तवीर्य और कीर्ति हरने पर उद्यत तू" ॥

७५—"इसलिये क्षत्रियों का नाश करनेवाला पराक्रम भी मुझे तेरे अजित रहने में नहीं भाता है; अग्नि की महिमा यही गिनी जाती है कि समुद्र में भी फूस की नाईं प्रज्वलित हो" ॥

७६–विद्धि चात्तबलमोजसा हरेः।
ऐश्वरं धनुरभाजि यत्त्वया।
खातमूलमनिलो नदीरयैः।
पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम्॥
७७–तन्मदीयमिदमायुधं ज्यया।
सङ्गमय्य सशरं विकृष्यताम्।
तिष्ठतु प्रधनमेवमप्यहं।
तुल्यबाहुतरसा जितस्त्वया॥
७८–कातरोऽसि यदिवोद्गतार्च्चिषा।
तर्ज्जितः परशुधारया मम।
ज्यानिघातकठिनांगुलिर्वृथा।
बध्यतामभययाचनाञ्जलिः॥
७९–एवमुक्तवति भीमदर्शने।
भार्गवे स्मितविकम्पिताधरः।
तद्धनुर्ग्रहणमेवराघवः।
प्रत्यपद्यत समर्थमुत्तरम्॥
८०–पूर्व्वजन्मधनुषा समागतः।
सोऽतिमात्रलघुदर्शनोऽभवत्।
केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः।
किम्पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः॥

---

८० लघुदर्शनः = प्रियदर्शनः॥

७६—"और महादेव का जो धनुष तैंने तोड़ा है उसे विष्णु के तेज से खिंचे हुए सारवाला जान; नदी के वेग से जड़ खुदे हुए तट के वृक्ष को कोमल पवन भी गिरा देती है" ॥

७७—"इसलिये मेरे इस धनुष को तू प्रत्यंचा चढ़ाकर बाण सहित खैंच युद्ध रहने दो इस प्रकार भी मैं तुझ तुल्य बांह बलवाले से जीता हुआ मानूंगा" ॥

७८—"और जो मेरे फरसे की चमकती हुई धार से ताड़ना पाकर डरा है तो अभय दान के लिये तू ज्याघात से वृथा कठिन अंगुलियों वाली अंजुली बांध" ॥

७९—इस प्रकार भयानक रूप भार्गव के कहने पर हँसी से होठ हिलाते हुए राघव ने उसके धनुष का लेनाही उचित उत्तर माना ॥

८०—पहले जन्म के धनुष से मिलकर वह अत्यन्त शोभायमान हुआ; नया बादल आपही सुन्दर होताहै फिर इन्द्रधनुष से शोभित होकर क्यों न हो ॥

८१—तेन भूमिनिहितैककोटि तत्।
कार्म्मुकञ्च बलिनाधिरोपितम्।
निष्प्रभश्च रिपुरास भूभृतां।
धूमशेष इव धूमकेतनः॥

८२—तावुभावपि परस्परस्थितौ।
वर्द्धमानपरिहीनतेजसौ।
पश्यति स्म जनता दिनात्यये।
पार्व्वणौ शशिदिवाकराविव॥

८३—तं कृपामृदुरवेक्ष्य भार्गवं।
राघवः स्खलितवीर्य्यमात्मनि।
स्वञ्च संहितममोघमाशुगं।
व्याजहार हरसूनुसन्निभः॥

८४—नप्रहर्त्तुमलमस्मि निर्दयं।
विप्र इत्यभिभवत्यपि त्वयि।
शंस किं गतिमनेन पत्रिणा।
हन्मि लोकमुत ते मखार्ज्जितम्॥

८५—प्रत्युवाच तमृषिर्न तत्त्वतः।
त्वां न वेद्मि पुरुषं पुरातनम्।
गां गतस्य तव धाम वैष्णवं।
कोपितो ह्यसि मया दिदृक्षुणा॥

८१—और उस बली ने एक नोक भूमि में रखकर वह धनुष चढ़ाया और क्षत्रियों का वैरी तेजहीन हुआ, जैसे धुआं मात्र बची हुई अग्नि ॥

८२—आमने सामने खड़े हुए उन दोनों को, बढ़ते और घटते हुए तेजवालों को लोगों ने पूर्णमासी की सांझ के चन्द्र सूरज की नाईं देखा ॥

८३—उस भार्गव को अपने में पराक्रम मिटा हुआ और अपना अमोघ बाण चढ़ा हुआ देखकर कार्तिकेय की उपमावाले दयामृदुल राघव ने कहा ॥

८४—"ब्राह्मण है इसलिये तुझ तिरस्कार करनेवाले में भी निर्दईपन से प्रहार करने को मैं समर्थ नहीं हूं; बतला इस बाणसे तेरा चलना मिटाऊं अथवा यज्ञ से सिद्धि किया हुआ लोक (स्वर्ग)" ॥

८५—ऋषि ने उसको उत्तर दिया "स्वरूप से मैंने तुझे आदि पुरुष न जाना यह नहीं है, तुझ पृथ्वी पर आए हुए का वैष्णव तेज देखनेही को मुझ इच्छावान् ने तुझे कोपित किया है" ॥

---

८१ धुवां बची हुई अग्नि अर्थात् जो आग आप बुझ गई हो धुआं रह गया हो ॥

८३ अमोघ बाण अर्थात् जो बाण निष्फल न जाय ॥

८६—भस्मसात् कृतवतः पितृद्विषः।
पात्रसाच्च वसुधां ससागराम्।
आहितो जयविपर्य्ययोऽपि मे।
श्लाघ्य एव परमेष्ठिना त्वया॥

८७—तद्गतिं मतिमतांवरेप्सितां।
पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे।
पीड़यिष्यति न मां खिलीकृता।
स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपम्॥

८८—प्रत्यपद्यत तथेति राघवः।
प्राङ्मुखश्च विससर्ज्ज सायकम्।
भार्गवस्य सुकृतोऽपि सोऽभवत्।
स्वर्गमार्गपरिघो दुरत्ययः॥

८९—राघवोऽपि चरणौ तपोनिधेः।
क्षम्यतामिति वदन् समस्पृशत्।
निर्ज्जितेषु तरसा तरस्विनां।
शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्त्तये॥

९०—राजसत्वमवधूय मातृकं।
पित्र्यमस्मि गमितः शमं यदा।
नन्वनिन्दितफलो मम त्वया।
निग्रहोऽप्ययमनुग्रहीकृतः॥

८६—"पिताके वैरियों को मुझ भस्म करनेवाले की और सागरों समेत पृथ्वी को पात्र अधीन करने वाले की हार भी तुझ परमेश्वर की कीहुई बड़ाई केही योग्य है" ॥

८७—"इससे हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ मेरे चलने को, पुण्य तीर्थों में जाने के लिये इच्छा किए हुए को, रख, मुझ भोग के निस्पृही को स्वर्ग पदवी की दुर्लभता पीड़ा न करेगी" ॥

८८—"ऐसाही हो" यह राघव ने स्वीकार किया और पूर्व मुख होकर बाण छोड़ा; वह (बाण) सुकृती भार्गव के भी स्वर्गमार्ग को कठिन अर्गला बना ॥

८९—"क्षमा करो" यह कहकर राघव ने भी तपोनिधि के चरण छुए; बल से जीते हुए वैरियों में नम्र होनाही तेजस्वियों की कीर्त्ति बढ़ानेवाला होताहै ॥

९०—"माताकुल का रजोगुण छोड़ कर जो मैं पिता के सतोगुण में आया हूं यह अनिन्दित फल का दंड भी तैंने मुझ पर अनुग्रह ही किया है" ॥

---

८८ अर्गला अर्थात् द्वार की रोक ॥

९१—साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते।
देवकार्य्यमुपपादयिष्यतः।
ऊचिवानिति वचः सलक्ष्मणं।
लक्ष्मणाग्रजमृषिस्तिरोदधे॥

९२—तस्मिन् गते विजयिनं परिरभ्य रामं।
स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम्।
तस्याभवत् क्षणशुचः परितोषलाभः।
कक्षाग्निलङ्घिततरोरिव वृष्टिपातः॥

९३—अथ पथि गमयित्वा क्लृप्तरम्योपकार्य्ये।
कतिचिदवनिपालः शर्वरीःशर्व्वकल्पः।
पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शनीनां।
कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम्॥

इति श्रीरघुवंशे एकादशः सर्गः समाप्तः

---

९१ साधयामि = गच्छामि॥

६१—"मैं जाता हूं तुझ देवकार्य करनेवाले का कल्याणहो" यह वचन लक्ष्मण सहित राम से कहता हुआ ऋषि अन्तर्द्धान हुआ" ॥

६२--उसके चले जाने पर विजयी राम को, छाती से लगा कर पिता ने स्नेह के कारण दूसरी बार जन्मा हुआ माना; उस क्षण भर शोक सहे हुए को संतोष प्राप्त हुआ, जैसे दावानल के झुलसाए हुए वृक्ष को मेह का पड़ना ॥

६३--तब अच्छी सजावटवाले मार्ग में कई रात बिताकर महादेव सरीखे राजा ने सीता के देखनेवाली स्त्रियों के नेत्रों रूपी कमलों से भरे हुए झरोखोंवाली अयोध्यापुरी में प्रवेश किया ॥

ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ

द्वादशः सर्गः

रावणवधवर्णनम्

१--निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान् ।
आसीदासन्ननिर्वाणः प्रदीपार्चिरिवोषसि ॥

२ । तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति ।
कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा ॥

३--सा पौरान् पौरकान्तस्य रामस्याभ्युदयश्रुतिः ।
प्रत्येकं ह्लादयाञ्चक्रे कुल्येवोद्यानपादपान् ॥

४- तस्याभिषेकसम्भारं कल्पितं क्रूरनिश्चया ।
दूषयामास कैकेयी शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः ॥

५--सा किलाश्वासिता चण्डी भर्त्रा तत्संश्रुतौ वरौ ।
उद्ववामेन्द्रसिक्ता भूः बिलमग्नाविवोरगौ ॥

बारहवां सर्ग

रावणवध

१--विषय का स्नेह भोगकर वह दशाके अन्त पर जाकर निर्वाण समीपी हुआ, जैसे प्रभात समय दीपक की लौ ॥

२--मानो केकयी के डरसे श्वेत बाल का मिष करके बुढ़ापे ने कान के पास जाकर "राम को राजलक्ष्मी सौंपो" यह उससे कहा ॥

३--पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चर्चाने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया, जैसे पानी की नाली ने उद्यान के वृक्षों को ॥

४--उसके अभिषेक के लिये इकट्ठी की हुई सामग्री कठोर मनोरथवाली केकयी ने राजा के शोक के तत्ते आंसुओंसे दूषित करदी ॥

५--कहते हैं कि भर्ता की लड़्याई हुई उस चंडी ने उसके प्रतिज्ञा किए हुए दो वरदान उगले, जैसे इन्द्र की भिगोई हुई भूमि ने बिल में बैठे हुए दो सांप ॥

---

१ बूढ़े राजा की उपमा सबेरे के दीपक से दी है विषय इन्द्रिय अथवा दीपा, स्नेह मोह अथवा तेल, दशा अवस्था अथवा बत्ती, निर्वाण मुक्ति अथवा बुझना ॥

६—तयोश्चतुर्दशैकेन रामं प्राव्राजयत् समाः।
द्वितीयेन सुतस्यैच्छद् वैधव्यैकफलां श्रियम्॥

७—पित्रा दत्तां रुदन् रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत्॥

८—दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः॥

९—स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद् गुरुमलोपयन्।
विवेश दण्डकारण्यं प्रत्येकञ्च सतां मनः॥

१०—राजापि तद्वियोगार्त्तः स्मृत्वा शापं स्वकर्मजम्।
शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभममन्यत॥

११—विप्रोषितकुमारं तत् राज्यमस्तमितेश्वरम्।
रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषामामिषतां ययौ॥
१२—अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम्।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः॥

६—उनमेंसे एकसे राम को चौदह वर्ष के लिये वनवास कराया दूसरेसे बेटे के लिये केवल (अपने) रंडापे रूपी फल देनेवाली राजलक्ष्मी मांगी ॥

७—पिताकी दी हुई पृथ्वी पहले राम ने रोते हुए स्वीकार की पीछे "वनको जाओ" यह उसकी आज्ञा प्रसन्न होकर ली ॥

८—आनन्द के वस्त्र पहने हुए और वृक्षकी छाल ओढ़े हुए उस (राम) के मुख की कान्ति लोगोंने चकित होकर एकसी देखी ॥

९—पिता को सत्य से न डिगाकर उसने सीता और लक्ष्मण सहित दंडकवन में और प्रत्येक सत्पुरुष के मन में प्रवेश किया ॥

१०—उसके वियोग के दुःखी राजा ने भी अपने कर्म से उपजा हुआ शाप सुध करके शरीर छोड़ने ही से प्रायश्चित्त माना ॥

११—गए हुए कुमारोंवाला मरेहुए राजावाला वह राजछिद्र देखने में चतुर वैरियों का भोजन हुआ ॥

१२—तब अनाथ मंत्रियों ने ननहाल में बसते हुए भरत को आंसू रोके हुए दूतों के द्वारा बुलवाया ॥

---

१० सरवन के मारने की सुधि राजा को आई ॥

१२ दूतों से कह दिया गया था कि राजा का मरना भरतको न सुनावें ॥

१३--श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं कैकेयीतनयः पितुः।
मातुर्न केवलं स्वस्याः श्रियोऽप्यासीत् पराङ्मुखः॥

१४--ससैन्यश्चान्वगाद्रामं दर्शितानाश्रमालयैः।
तस्य पश्यन् ससौमित्रेरुदश्रुर्वसतिद्रुमान्॥

१५--चित्रकूटवनस्थश्च कथितस्वर्गतिर्गुरोः।
लक्ष्म्या निमन्त्रयाञ्चक्रे तमनुच्छिष्टसम्पदा॥

१६--स हि प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे।
परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद्भुवः॥

१७--तमशक्यमपाक्रष्टुं निदेशात् स्वर्गिणः पितुः।
ययाचे पादुके पश्चात् कर्त्तुं राज्याधिदेवते॥

१८--स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा भ्रात्रा नैवाविशत् पुरीम्।
नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक्॥

१९--दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः।
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत्॥

१३--केकयी के बेटे ने पिता का उस भांति मरना सुनकर केवल अपनी माताही से नहीं राजलक्ष्मी से भी मुख मोड़ा ॥

१४--और सेना समेत राम के पीछे गया, वनवासियों के दिखलाए हुए उस लक्ष्मण सखा के निवास स्थानों के वृक्षों को देखकर आंसू डालता हुआ ॥

१५--और उस चित्रकूट के वन में ठहरे हुए से पिता का स्वर्ग जाना कहकर अछूती राजलक्ष्मी (भोगने) के लिये लौटने को कहा ॥

१६--उस जेठे भाई के राजलक्ष्मी न बरने में उसने पृथ्वी स्वीकार करने से अपने को परिवेत्ता माना ॥

१७--फिर स्वर्गवासी पिता की आज्ञा से उस न लौटनेवाले से राज्य के अधिदेवता बनाने के लिये खड़ाउवोंको मांगता भया ॥

१८--"ऐसाही हो" यह कह कर भाई का छोड़ा हुआ वह पुरी में न गया नन्दिग्राम में जाकर उसके राज्य को धरोहर की नाईं रखाने लगा ॥

१९--बड़े भाई में दृढ़ भक्तिवाले, राज्यतृष्णा से मुख फेरे हुए, भरत ने मानो इस भांति माता के पाप का प्रायश्चित्त किया ॥

---

१६ बड़े भाई से पहले जो छोटे का ब्याह होजाय तो वह छोटा दोषी होता है और परिवेत्ता कहलाता है ॥

१७ अधिदेवता अर्थात् मान लिया हुआ देवता ॥

२०–रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्त्तयन्।
चचार सानुजः शान्तो वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा॥

२१–प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स वनस्पतिम्।
कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किञ्चिदिव श्रमात्॥

२२–ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः।
प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन्॥

२३–तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामावबोधितः।
आत्मानं मुमुचे तस्मादेकनेत्रव्ययेन सः॥

२४–रामस्त्वासन्नदेशत्वाद् भरतागमनं पुनः।
आशङ्क्योत्सुकसारङ्गां चित्रकूटस्थलीं जहौ॥

२५–प्रययावातिथेयेषु वसन्नृषिकुलेषु सः।
दक्षिणां दिशमृक्षेषु वार्षिकेष्विव भास्करः॥

२६–बभौ तमनुगच्छन्ती विदेहाधिपतेः सुता।
प्रतिषिद्धापि कैकेय्या लक्ष्मीरिव गुणोन्मुखी॥

२७–अनसूयातिसृष्टेन पुण्यगन्धेन काननम्।
सा चकाराङ्गरागेण पुष्पोच्चलितषट्पदम्॥

---

२२ द्विजः=पक्षी॥

२०—छोटे भाई समेत शान्तिमान् जुवान राम ने भी वनकी वस्तुओं से वृत्ति करके सीताके साथ वन में बूढ़े इक्ष्वाकु-वंशियों का व्रत आचरण किया ॥

२१—प्रभाव से थामी हुई छायावाले वृक्ष का आसरा लिए हुए वह एक समय सीता की गोद में सोगया, जैसे कुछ थकावट से ॥

२२—कहते हैं कि ऐन्द्रि पक्षी (कव्वे) ने खोटापन करके उसके स्तनों को पति के नखक्षतों में नखों से कुरेदा ॥

२३—सीता के जगाए हुए राम ने उस में सींक का अस्त्र मारा, वह एक नेत्र देकर उससे छूटा ॥

२४—निकट स्थान होने के कारण राम ने भरत के फिर आने की शंका करके प्रीति करते हुए हरिणोंवाली चित्रकूट की भूमि छोड़ी ॥

२५—अतिथिसत्कारी ऋषियों के आश्रमों में बसता हुआ वह दक्षिण दिशा को गया, जैसे वर्षा के नक्षत्रों में (बसता हुआ) सूर्य ॥

२६—उसके पीछे चलती हुई विदेहराज की बेटी सुशोभित हुई, मानो केकयी की रोकी हुई भी गुणग्राहिणी राज-लक्ष्मी ॥

२७—अनसूया के दिए हुए अच्छे गन्धवाले अंगराग से उस ने वन को फूल छोड़ते हुए भौंरोंवाला किया (अर्थात्) वन में भौंरे फूलों को छोड़ छोड़ सीता की ओर गए ॥

---

२० इक्ष्वाकुवंशियों की रीति थी कि बुढ़ापे में वनवासी होते थे ॥
वृत्ति करना = आजीविका करना ॥

२८–सन्ध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः।
अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दोरिव ग्रहः॥

२९–स जहार तयोर्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः।
नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे॥

३० तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थौ पुरा दूषयति स्थलीम्।
गन्धेनाशुचिना चेति वसुधायां निचख्नतुः॥

३१–पञ्चवट्यां ततो रामः शासनात् कुम्भजन्मनः।
अनपोढस्थितिस्तस्थौ विन्ध्याद्रिः प्रकृताविव॥

३२–रावणावरजा तत्र राघवं मदनातुरा।
अभिपेदे निदाघार्त्ता व्यालीव मलयद्रुमम्॥

३३–सा सीतासन्निधावेव तं वव्रे कथितान्वया।
अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः॥

३४–कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे।
इति रामो वृषस्यन्तीं वृषस्कन्धः शशास ताम्॥

२८—सांझ के लाल बादल समान विराध नाम राक्षस राम का मार्ग रोककर खड़ा हुआ, मानो चन्द्रमा का राहु ॥

२९—उस लोकसुखानेवाले ने उन दोनों के बीच से सीता हरी, मानो अवग्रहने श्रावण भादोंके (बीच) से वर्षा ॥

३०—और उस को मार कर दोनों काकुत्स्थों ने "आगे अपवित्र गन्धि से आश्रम की भूमिको दूषित करेगा" इसलिये धरती में गाड़ दिया ॥

३१—फिर अगस्त्य के कहने से मर्यादा उल्लङ्घन न करने वाला राम पञ्चवटी में ठहरा, जैसे विन्ध्याचल अपनी पहली अवस्था में ॥

३२—वहां रावण की छोटी बहन कामदेव की माती राघव के पास पहुँची, मानो निदाघ की सताई नागिन मलया-गिरि के वृक्षके पास ॥

३३—उसने सीता के सामनेही (अपना) वंश वर्णन करके उस से बरने को कहा; स्त्रियों का प्रबल कामदेव अवसर का अज्ञानी होताही है ॥

३४—"हे बाला! मैं स्त्रीवन्तहूं तू मेरे छोटे भाई को जांच" यह उस पुरुष चाहनेवाली को बैल केसे कन्धेवाले राम ने कहा ॥

---

२९ अवग्रह=वर्षा की रुकावट ॥

३१ जब विन्ध्याचल बहुत बढ़ने लगा तो अगस्त्य मुनि ने उसका बढ़ना रोक दिया था ॥

३२ निदाघ=ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप ॥

३५–ज्येष्ठाभिगमनात् पूर्वं तेनाप्यनभिनन्दिता ।
साभूद्रामाश्रया भूयः नदीवोभयकूलभाक् ॥

३६–संरम्भं मैथिलीहासः क्षणसौम्यां निनाय ताम् ।
निवातस्तिमितां वेलां चन्द्रोदय इवोदधेः ॥

३७–फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम् ।
मृग्याः परिभवो व्याघ्र्याम् इत्यवेहि त्वया कृतम् ॥

३८–इत्युक्त्वा मैथिलीं भर्तुः अङ्के निविशतीं भयात् ।
रूपं शूर्पणखानाम्नः सदृशं प्रत्यपद्यत ॥
३९–लक्ष्मणः प्रथमं श्रुत्वा कोकिलामञ्जुवादिनीम् ।
शिवाघोरस्वनां पश्चात् बुबुधे विकृतेति ताम् ॥

४०–पर्णशालामथ क्षिप्रं विकृष्टासिः प्रविश्य सः ।
वैरूप्यपौनरुक्त्येन भीषणां तामयोजयत् ॥
४१–सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया ।
अंकुशाकारयांगुल्या तावतर्जयदम्बरे ॥

४२–प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम् ।
रामोपक्रममाचख्यौ रक्षःपरिभवं नवम् ॥

३५—पहले बड़े भाई के पास जाने से उस (छोटे) की भी अनादर की हुई वह फिर राम के आश्रय जाकर दोनों तटों की ओर चलनेवाली नदी के समान हुई ॥

३६—सीता के हँसने ने उस क्षणमात्र की सुशीला को कोपित किया, जैसे चन्द्रमा के उदय ने समुद्र की निर्वात निश्चल मर्यादा को ॥

३७—"मेरी ओर देख, इस हँसी का फल तू तुरन्त पावेगी; अपने किये को तू ऐसा जान जैसे सिंहनी में हरिणीका किया हुआ तिरस्कार" ॥

३८—डर से पति की गोदमें जाती हुई सीताको ऐसा कहकर सूपनखा ने अपने नाम सदृश रूप लिया ॥

३९—लक्ष्मण ने पहले उसको कोकिला की नाईं मीठा बोलती हुई पीछे गीदड़ी की नाईं भयंकर शब्द करती हुई सुन कर "कपट करनेवाली है" यह जाना ॥

४०—तब पर्णकुटी में तुरन्त जाकर उस खड्ग निकाले हुएने वह भयावनी दुगुनी कुरूपा करदी ॥

४१—उसने उन दोनोंको टेढ़े नखोंवाली अंगुली से, बांसमान कठोर पोरोंवाली से, अंकुश के आकारवाली से, आकाश में धमकाया ॥

४२—और तुरन्त जनस्थान में जाकर खर इत्यादि को राम का यह पहला करतब, राक्षसों का नया तिरस्कार, सुनाया ॥

---

३६ क्षणमात्र सुशीला = माया करके थोड़ीदेर को सुशीला बनी हुई ॥

३८ सूपनखा ॥ जिसके नुंह सूप से थे ॥

४३—मुखावयवलूनां तां नैर्ऋता यत् पुरो दधुः।
रामाभियायिनां तेषां तदेवाभूदमङ्गलम् ॥

४४—उदायुधानापततः तान् दृप्तान् प्रेक्ष्य राघवः।
निदधे विजयाशंसां चापे सीताञ्च लक्ष्मणे ॥

४५—एको दाशरथिः कामं यातुधानाः सहस्रशः ॥
ते तु यावन्त एवाजौ तावांश्च ददृशे स तैः ॥

४६—असज्जनेन काकुत्स्थः प्रयुक्तमथ दूषणम्।
न चक्षमे शुभाचारः स दूषणमिवात्मनः ॥

४७—तं शरैः प्रतिजग्राह खरत्रिशिरसौ च सः।
क्रमशस्ते पुनस्तस्य चापात् सममिवोद्ययुः ॥

४८—तैस्त्रयाणां सितैर्बाणैः यथापूर्व्वविशुद्धिभिः।
आयुर्देहातिगैः पीतं रुधिरन्तु पतत्रिभिः ॥

४९—तस्मिन् रामशरोत्कृत्ते बले महति रक्षसाम्।
उत्थितं ददृशेऽन्यच्च कबन्धेभ्यो न किञ्चन ॥

४३–मुख के अङ्ग (नाक कान) कटी हुई उसको जो राक्षसों ने आगे किया सोई राम के ऊपर उन चढ़ाई करनेवालों को अशकुन हुआ ॥

४४–उन गर्वधारियों को सामने हथ्यार लिये हुए आते देख कर राघव ने जीत की आशा धनुष को सौंपी और सीता लक्ष्मण को ॥

४५–सच है राम अकेला था और राक्षस सहस्रों थे, परन्तु संग्राम में जितने वे थे उतनेही उन्हों ने राम देखे ॥

४६–तब दुष्टों के भेजे हुए दूषण (नाम राक्षस) को उस शुद्ध आचारवाले काकुत्स्थ ने न सहा जैसे अपने दूषण को ॥

४७–उसको और खर और त्रिशिर को उसने आगे बढ़कर बाणों से लिया फिर वे (बाण) उसके धनुष के आगे पीछे छुटे हुए एकही साथ छोड़े हुए से गए ॥

४८–उन तीक्ष्ण बाणों ने, देह को बेधकर शुद्ध निकले हुओं ने, उन तीनों की आयु पीली, लोहू पक्षियों ने पिया ॥

४९–राम के बाणों से कटी हुई उस बड़ी राक्षससेना में रुंडों के विना और कुछ खड़ा हुआ दिखलाई न दिया ॥

---

४६ दूषण नाम राक्षस था ॥ असज्जन वैरी अथवा बुरे मनुष्य ॥
४७ बाणों का एक साथ निकलता दीखना हाथ की फुरती दिखाता है ॥
४८ जैसे थे वैसेही अर्थात् लोहू से न भीगे हुए ॥

५०—सा बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा सुरद्विषाम्।
अप्रबोधाय सुष्वाप गृध्रच्छाये वरूथिनी॥
५१—राघवास्त्रविदीर्णानां रावणं प्रति रक्षसाम्।
तेषां शूर्पणखैवैका दुष्प्रवृत्तिहराभवत्॥
५२—निग्रहात्स्वसुराप्तानां वधाच्च धनदानुजः।
रामेण निहितं मेने पदं दशसु मूर्द्धसु॥

५३—रक्षसा मृगरूपेण वञ्चयित्वा स राघवौ।
जहार सीतां पक्षीन्द्र-प्रयासक्षणविघ्नितः॥

५४—तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपश्यताम्।
प्राणैर्दशरथप्रीतेः अनृणं कण्ठवर्त्तिभिः॥

५५—स रावणहृतां ताभ्यां वचसाचष्ट मैथिलीम्।
आत्मनःसुमहत् कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितः॥

५६—तयोस्तस्मिन्नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः।
पितरीवाग्निसंस्कारात् परा ववृतिरे क्रियाः॥

५७—वधनिर्द्धूतशापस्य कबन्धस्योपदेशतः।
मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ॥

५०–राक्षसों की वह सेना बाणवर्षी राम से लड़कर गिद्धों की छाया में फिर न जगने के लिये सोई ॥

५१–राम के अस्त्र से मरेहुए उन राक्षसों का बुरा वृत्तान्त रावण के पास लेजानेवाली अकेली सूपनखाही हुई ॥

५२–बहन के दंड से (नाक कान कटने से) और प्यारों के मारे जाने से कुबेर के भाई ने राम का पैर (अपने) दस सीसों पर रक्खा हुआ माना ॥

५३–हरिण रूप राक्षस (मारीच) से दोनों राघवों को धोखा दिलाकर वह (रावण) पक्षिराज (जटायु) के युद्ध का विघ्न क्षणमात्र सहकर सीता को हर ले गया ॥

५४–सीता के ढूंढ़नेवाले उन दोनों ने पंख कटा हुआ गिद्ध कंठवर्ती प्राणों से दशरथ की मित्रता का ऋण चुकाते हुए देखा ॥

५५–उसने उन दोनों को रावणकी हरीहुई जानकी वाणी से बतलाई (और) अपमान बड़ा करतब घावों से जताकर मरगया ॥

५६–उस में पिता मरण का शोक नया मानेहुए उन दोनों को अग्निसंस्कार से लेकर पीछे तक के कर्म पिता ही के से करने पड़े ॥

५७–मर कर शाप से छूटे हुए कबन्ध के बतलाने से राम की मित्रता तुल्य विथावाले कपि (सुग्रीव) के साथ हुई ॥

---

५० अर्थात् लोथों पर गिद्ध छा गए ॥

५६ अर्थात् जटायु के मृतककर्म्म राम लक्ष्मण ने किए ॥

५७ सुग्रीव भी सहाई चाहता था ॥

५८–स हत्वा वालिनं वीरः तत्पदे चिरकांक्षिते ।
धातोःस्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत् ॥

५९–इतस्ततश्च वैदेहीम् अन्वेष्टुं भर्तृचोदिताः ।
कपयश्चेरुरार्त्तस्य रामस्येव मनोरथाः ॥

६०–प्रवृत्तावुपलब्धायां तस्याः सम्पातिदर्शनात् ।
मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्म्ममः ॥

६१–दृष्टा विचिन्वता तेन लङ्कायां राक्षसीवृता ।
जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः ॥

६२–तस्यै भर्तुरभिज्ञानम् अंगुलीयं ददौ कपिः ।
प्रत्युद्गतमिवानुष्णैः तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः ॥

६३–निर्वाप्य प्रियसन्देशैः सीतामक्षवधोद्धतः ।
स ददाह पुरीं लङ्कां क्षणसोढारिनिग्रहः ॥

६४–प्रत्यभिज्ञानरत्नञ्च रामायादर्शयत्कृती ।
हृदयं स्वयमायातं वैदेह्या इव मूर्त्तिमत् ॥

५८—उस (राम) वीर ने बालि को मारकर उसकी पदवी पर, बहुत काल से आकांक्षा की हुई पर, धातु के स्थान पर आदेश की नाईं सुग्रीव को स्थापित किया ॥

५९—स्वामी के भेजे हुए बन्दर सीता के खोजनेको जहां तहा गए, मानो दुःखी राम के मनोरथ ॥

६०—सम्पाति के दर्शन से (अर्थात् उसके मुख से) सीताका वृत्तान्त जानकर पवनसुत (हनुमान्) समुद्र को उतर गया, जैसे ममता त्यागा हुआ संसार को ॥

६१—उस ढूंढ़ते हुए ने लंका में सीता को राक्षसियोंसे घिरी हुई देखी, मानो विष की बेलों से घिरी हुई महौषधि ॥

६२—कपि ने उसको भर्त्ता की चिह्नानी मुंदरी दी मानो उसके आनन्द के शीतल आसुओं से आदर होती हुई ॥

६३—सीता को पति के संदेशों से ढांढस बँधाकर उस अक्ष के वध से गर्व बढ़े हुए ने क्षणमात्र वैरी की पीडा सहकर लंकापुरी जलाई ॥

६४—पलटे की चिह्नानी का रत्न उस कृतकृत्य ने राम को (लाकर) दिखलाया, मानो वैदेही का आप आया हुआ मूर्तिमान् हृदय ॥

---

५८ जब धातु के स्थानपर आदेश होता है-तो धातु का रूप सर्वस्व पलट जाता है जैसे अस्तिधातु को आदेश हो तो उस के पलटे भू होजाता है ॥

६० सम्पाति जटायु का भाई था ॥

६३ अक्ष नाम रावण का बेटा था उसके मारने से हनुमान् को गर्व हुआ ॥ वैरी की पीड़ा से तात्पर्य ब्रह्मास्त्र से है जिस में हनुमान् को मेघनाद ने बांधा था ॥

६५–स प्राप हृदयन्यस्त–मणिस्पर्शनिमीलितः।
अपयोधरसंसर्गां प्रियालिङ्गननिर्वृतिम्॥

६६–श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मेने तत्सङ्गमोत्सुकः।
महार्णवपरिक्षेपं लङ्कायाः परिखालघुम्॥

६७–स प्रतस्थेऽरिनाशाय हरिसैन्यैरनुद्रुतः।
न केवलं धरापृष्ठे व्योम्नि सम्बाधवर्त्तिभिः॥

६८–निर्विघ्नमुदधेः कूले तं प्रपेदे विभीषणः।
स्नेहाद्राक्षसलक्ष्म्येव बुद्धिमाविश्य चोदितः॥

६९–तस्मै निशाचरैश्वर्य्यं प्रतिशुश्राव राघवः।
काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः॥

७०–स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि।
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः॥

७१–तेनोत्तीर्य्य पथा लङ्कां रोधयामास पिङ्गलैः।
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः॥

६५—छाती पर रक्खी हुई मणि के स्पर्श से मूर्छित होकर उसने पयोधर स्पर्श के विना प्यारी के आलिंगन का सुख माना ॥

६६—प्यारी का वृत्तांत सुनकर उसके मिलने के उत्साही राम ने लंका के महासमुद्र रूपी घेरे को छोटी खाई की नाईं समझा ॥

६७—वैरी के नाश निमित्त वह न केवल पृथ्वी पर किन्तु आकाश में भी संकोच से जानेवाली बानर सेना का आगे किया हुआ चला ॥

६८—समुद्र के तटपर उस ठैरेहुए को विभीषण मिला, मानो बुद्धि में बैठ कर राक्षसलक्ष्मी का स्नेह से प्रेराहुआ ॥

६९—राघव ने उसको निशाचरों का राज्य देने की प्रतिज्ञा की ॥ उचित समय वर्ती हुई नीति निश्चय फल देती ही है ॥

७०—उसने बन्दरों से खारी जल (समुद्र) में पुल बँधवाया, मानो विष्णु के सोने के लिये रसातल से ऊपर आया हुआ शेषनाग ॥

७१—(और) उस मार्ग से उतर कर लंका को सुनहरी बन्दरों से, सोने का दूसरा परकोटासा बनाते हुओं से, घिराया ॥

---

६७ तात्पर्य यह है कि राम की सेना में इतने बन्दर थे कि उन के चलने को धरती और आकाश में भी पूरी जगह न थी ॥

७२—रणः प्रववृते तत्र भीमः प्लवगरक्षसाम्।
दिग्विजृम्भितकाकुत्स्थ-पौलस्त्यजयघोषणः॥
७३—पादपाविद्धपरिघः शिलानिष्पिष्टमुद्गरः।
अतिशस्त्रनखन्यासः शैलरुग्णमतङ्गजः॥

७४—अथ रामशिरश्छेद दर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम्॥
सीतां मायेति शंसन्ती त्रिजटा समजीवयत्॥

७५—कामं जीवति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम्।
प्राङ्मत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता॥

७६—गरुड़ापातविश्लिष्ट-मेघनादास्त्रबन्धनः।
दाशरथ्योः क्षणक्लेशः स्वप्नवृत्त इवाभवत्॥

७७—ततो बिभेद पौलस्त्यः शक्त्या वक्षसि लक्ष्मणम्।
रामस्त्वनाहतोऽप्यासीत् विदीर्णहृदयः शुचा॥

७८—स मारुतिसमानीत-महौषधिहतव्यथः।
लङ्कास्त्रीणां पुनश्चक्रे विलापाचार्य्यकं शरैः॥

७२–वहां बन्दरों और राक्षसों का घोर युद्ध, राम और रावणके जयकारों को दिशाओं में फैलानेवाला, हुआ, ॥

७३–वृक्षों से अर्गला टूटनेवाला, पत्थरों से मुदगर चूर होनेवाला, नख के खोंसों से अस्त्रों का तिरस्कार करनेवाला, पहाड़ों से हाथी मरनेवाला ॥

७४–फिर राम का कटा शिर देखने से मूर्छा में गईहुई सीता को त्रिजटा ने यह कहकर कि यह माया है जीता रक्खा ॥

७५–"मेरा पति जीता है" इससे उसने शोक तौ छोड़ा (परन्तु) "पहले मैं उसका मरना सत्य मानकर जीती रही" इससे लजाई ॥

७६–गरुड़ के आने से ढीले होनेवाले मेघनाद के अस्त्र बन्धन का क्षणमात्र क्लेश दशरथकुमारों को स्वप्न का सा हुआ ॥

७७–तिस पीछे रावण ने लक्ष्मण को शक्ति से छाती में मारा; राम तौ विना मारे ही शोक से हृदय छिदा हुआ होगया ॥

७८–पवनसुत की लाई हुई महौषधि से व्यथा मिटे हुए उस (लक्ष्मण) ने फिर लंका की स्त्रियों के विलाप आचार्य का काम बाणों से कराया ॥

---

७३ इस श्लोक में युद्ध के विशेषण कहे हैं रीछ बन्दरों ने लोहा लगीहुई अर्गलाओं को वृक्षों से तोड़ा, गदाओं को पत्थरों से चूरकिया, अस्त्रों को नखों से तिरस्कारदिया, हाथियों को पहाड़ फेंककर मारा ॥

७९—स नादं मेघनादस्य धनुश्चेन्द्रायुधप्रभम्।
मेघस्येव शरत्कालो न किञ्चित् पर्य्यशेषयत्॥

८०—कुम्भकर्णः कपीन्द्रेण तुल्यावस्थः स्वसुः कृतः॥
रुरोध रामं शृङ्गीव टङ्कच्छिन्नमनःशिलः॥

८१—अकाले बोधितो भ्रात्रा प्रियस्वप्नो वृथा भवान्।
रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्रां प्रवेशितः॥

८२—इतराण्यपि रक्षांसि पेतुर्वानरकोटिषु।
रजांसि समरोत्थानि तच्छोणितनदीष्विव॥
८३—निर्ययावथ पौलस्त्यः पुनर्युद्धाय मन्दिरात्।
अरावणमरामं वा जगदद्येति निश्चितः॥

८४—रामं पदातिमालोक्य लङ्केशञ्च वरूथिनम्॥
हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरन्दरः॥
८५—तमाधूतध्वजपटं व्योमगंगोर्म्मिवायुभिः।
देवसूतभुजालम्बी जैत्रमध्यास्त राघवः॥

८६—मातलिस्तस्य माहेन्द्रम् आमुमोच तनुच्छदम्।
यत्रोत्पलदलक्लैव्यं अस्त्राण्यापुः सुरद्विषाम्॥

4

७९—उसने मेघनाद का गरजना औ इन्द्रधनुष के समान
चमकता हुआ धनुष कुछ न हने दिये जैसे शरद्ऋतु
ने बादल के ॥

८०—कुम्भकर्ण ने जिसको सुग्रीव ने बहन की सी दशा को
पहुंचाया था (अर्थात् नाक कान काट लिये थे) राम
को रोका, मानो टांके से कटे हुए मनसिल वाले
पहाड़ ने ॥

८१—"तुम्ह निद्रावश को भाई ने वृथा कुसमयमें दीर्घ निद्रा
मानो ऐसा कहकर राम के बाणों ने
में पहुँचाया ॥ ... राक्षस गिरे, मानो उनके

८२—बन्दरों के दल में और ... से उठी हुई धूल ॥
लोहू की नदियों में ... रावण घर से फिर निकला "आज

८३—तब युद्ध के ... बिना अथवा राम बिना होगा" ऐसा
जगत् रा...
निश्चय करके ॥
रामको पैदल और रावण को रथी देखकर इन्द्र ने उस

८४—के लिये सुनहरी घोड़े जुता हुआ रथ भेजा ॥
आकाश गंगा की तरंगों की पवन से हिलती हुई ध्वजा

८५—वाले उस जय शील (रथ) पर इन्द्र के सारथी का
हाथ पकड़कर राघव चढ़ा ॥

८६—मातलि ने उसको इन्द्र का कवच पहनाया जिस में
असुरों के अस्त्र कमल दल की असमर्थता को पहुँचे ॥

---

८१ दीर्घ निद्रा अर्थात् मृत्यु ॥
८६ उस कवच पर असुरों के बाण फूल से लगते थे ॥

८७–अन्योन्यदर्शनप्राप्त-विक्रमावसरं चिरात्।
रामरावणयोर्युद्धं चरितार्थमिवाभवत्॥

८८–भुजमूर्द्धोरुबाहुल्यात् एकोऽपि धनदानुजः।
ददृशे ह्ययथापूर्वो मातृवंश इव स्थितः॥

८९–जेतारं लोकपालानां स्वमुखैरर्चितेश्वरम्।
रामस्तुलितकैलासं अरातिं बहुमन्यत॥

९०–तस्य स्फुरति पौलस्त्यः सीतासङ्गमशंसिनि।
निचखानाधिकक्रोधः शरं सव्येतरे भुजे॥

९१–रावणस्यापि रामास्तः भित्त्वा हृदयमाशुगः।
विवेश भुवमाख्यातुम् उरगेभ्य इव प्रियम्॥

९२–वचसैव तयोर्वाक्यम् अस्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः।
अन्योऽन्यजयसंरम्भः ववृधे वादिनोरिव॥

९३–विक्रमव्यतिहारेण सामान्याभूद् द्वयोरपि।
जयश्रीरन्तरा वेदिः मत्तवारणयोरिव॥

८७—बहुत काल पीछे परस्पर के दर्शन से पराक्रम का अवसर पाया हुआ राम रावण का युद्ध मानो सफल हुआ ॥

८८—भुजाओं और पैरों और सिरों के बहुतपन से कुबेर का भाई पहली अवस्था से विरुद्ध अकेला भी माता कुल में खड़ा हुआ सा दिखलाई दिया ॥

८९—राम ने (उस) वैरी को, लोकपालों के जीतने वाले को, अपने सीसों से महादेव के पूजनेवाले को, कैलास के उठानेवाले को, बहुत माना ॥

९०—सीता का मिलाप जतानेवाली फड़कती हुई उसकी दाहनी भुजा में अधिक क्रोधवान रावण ने बाण मारा ॥

९१—राम का फेंका हुआ बाण भी रावण के हृदय को वेधकर धरती में धस गया, मानो सांपों से प्यारी बात कहने के लिये ॥

९२—बचन को बचन से अस्त्र को अस्त्र से काटनेवाले उन दोनों का कोप अपनी अपनी जीत के लिये बढ़ा जैसे शास्त्रार्थ करनेवालों का ॥

९३—पराक्रम की उलटा पलटी से जीत की लक्ष्मी दोनोंही को सामान्य हुई जैसे बीच की भीति दो (लड़नेवाले) मत्तहाथियों को ॥

---

८८ पहली अवस्था के विरुद्ध अर्थात् राक्षस सेना के बिना ॥ माता कुल=राक्षस कुल क्योंकि रावण की मा राक्षसी थी ॥

९४—कृतप्रतिकृतप्रीतैः तयोर्मुक्ता सुरासुरैः।
परस्परशरत्राताः पुष्पवृष्टिं न सेहिरे॥

९५—अयःशंकुचितां रक्षः शतघ्नीमथ शत्रवे।
हृतां वैवस्वतस्येव कूटशाल्मलिमाक्षिपत्॥

९६—राघवो रथमप्राप्तां तामाशाञ्च सुरद्विषाम्।
अर्द्धचन्द्रमुखैर्बाणैः चिच्छेद कदलीसुखम्॥

९७—अमोघं सन्दधे चास्मै धनुष्येकं धनुर्द्धरः।
ब्राह्ममस्त्रं प्रियाशोक-शल्यनिष्कर्षणौषधम्॥

९८—तद् व्योम्नि शतधाभिन्नं ददृशे दीप्तिमन्मुखम्।
वपुर्महोरगस्येव करालफणमण्डलम्॥

९९—तेन मन्त्रप्रयुक्तेन निमेषार्द्धादपातयत्।
स रावणशिरः पङ्क्तिम् अज्ञातव्रणवेदनाम्॥

१००—बालार्कप्रतिमेवाप्सु वीचिभिन्ना पतिष्यतः।
रराज रक्षःकायस्य कण्ठच्छेदपरम्परा॥

९४—प्रहारों और प्रतिप्रहारों से प्रसन्न होकर सुरों और असुरों की छोड़ी हुई पुष्प बरसा को उन दोनों की परस्पर बाण बरसा ने न सहा॥

९५—तब राक्षस ने लोहे की कीलों से जड़ी हुई शतघ्नी वैरी पर चलाई, मानो छीनकर (अथवा चुराकर) लाई हुई यम की कूट शाल्मली॥

९६—उस रथ तक न पहुंची हुई (शतघ्नी) को, और असुरों की आसाको, राघव ने अर्धचन्द्र मुख बाणों से केले की नाईं सहज काट दिया॥

९७—और उसके ऊपर चलाने को श्रेष्ठ धनुषधारी ने अमोघ ब्रह्मास्त्र, प्यारी का शोक रूपी कांटा निकालने का उपाय, धनुष पर चढ़ाया॥

९८—वह चमकते हुए मुखवाला सौ मुख होकर आकाश में शेष नाग के कराल फण मंडलवाले शरीर की नाईं दिखलाई दिया॥

९९—उस मन्त्र सहित छोड़े हुए अस्त्र से उसने रावण के सिरों की पंक्ति घाव की पीड़ा सहे बिनाही आधे पल में गिरा दी॥

१००—राक्षस के गिरे हुए मुंडों की पंक्ति शोभायमान हुई, जैसे जल में तरंगों की अलग अलग की हुई सबेरे के सूरज की प्रतिमा॥

---

९४ बाणों की बरसा ने फूलोंकी बरसा रोक दी॥

९५ शतघ्नी एक प्रकार की गदा होती थी॥ कूट शाल्मली उस लाठी का नाम है जिससे यमलोक में कुकर्मी पीटे जाते हैं इस छड़ी में लोह के कांटे लगे हैं और सेमल की डालकी बनी है॥

१०१—मरुतां पश्यतां तस्य शिरांसि पतितान्यपि।
मनो नाति विशश्वास पुनः सन्धानशङ्किनाम्॥

१०२—अथ मदगुरुपक्षैर्लोकपालद्विपानाम्।
अनुगतमलिवृन्दैर्गण्डभित्तीर्विहाय।
उपनतमणिबन्धे मूर्ध्नि पौलस्त्यशत्रोः।
सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षं पपात॥

१०३—यन्ता हरेः सपदि संहृतकार्मुकज्यम्।
आपृच्छ्य राघवमनुष्ठितदेवकार्य्यम्।
नामाङ्क-रावणशराङ्कितकेतुयष्टिम्।
ऊर्ध्वं रथं हरिसहस्रयुजं निनाय॥

१०४—रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धां प्रगृह्य प्रिया।
प्रियसुहृदि विभीषणे संगमय्य श्रियं वैरिणः।
रविसुतसहितेन तेनानुयातः ससौमित्रिणा।
भुजविजितविमानरत्नाधिरूढः प्रतस्थे पुरीम्॥

इति श्रीरघुवंशे द्वादशः सर्गः समाप्तः।

१०१—उसके सिरों को पड़ा देखते हुए भी फिर जुड़जाने के शंकामान देवताओं के मन ने पूरा विश्वास न किया ॥

१०२—तब देवताओं की छोड़ी हुई, सुगन्धित फूलों की बरसा, लोकपालों के हाथियों की फटी कनपटी त्याग कर मद भरे पंखों से पीछेलगे हुए भौंरोंवाली, रावण के वैरी के सीसपर, मुकुट रखने का समय पहुंचे हुए पर, गिरी ॥

१०३—फिर इन्द्रका सारथी देवताओं का कारज सिद्ध करके तुरन्त धनुष से प्रतिंचा उतारे हुए से पूछकर सहस्र घोड़े जुते हुए रथ को, रावण नाम के चिह्नित बाणों से छिदी हुई ध्वजा यष्टी वाले को, उपर लेगया ॥

१०४—रघुपति भी अपनी अग्नि में शुद्धता दिखलाई हुई प्यारी को लेकर (और) प्यारे विभीषण मित्र को वैरी की लक्ष्मी देकर लक्ष्मण और सुग्रीव सहित उस को साथ लिए हुए अपमी भुजा से जीते हुए श्रेष्ठ विमान पर चढ़ा हुआ पुरी को सिधारा ॥

बारहवां सर्ग समाप्त हुआ

---

१०२ राम के सिर पर फूलों की बरसा हुई कैसे सिर पर जिस को मणिजटित मुकुट थोड़ेही दिन में मिलनेवाला था ॥

१०४ लक्ष्मण और सुग्रीव समेत विभीषण राम का अनुयायी अर्थात् संग चलनेवाला हुआ ॥

त्रयोदशः सर्गः

लंकायाः रामस्य अयोध्यां प्रत्यागमनम्

१—अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः ।
पदं विमानेन विगाहमानः ।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां ।
रामाभिधानो हरिरित्युवाच ॥

२—वैदेहि पश्यामलयात् विभक्तं ।
मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नम् ।
आकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥

३—गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये ।
रसातलं संक्रमिते तुरंगे ।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः ।
पूर्वैः किलायं परिवर्द्धितो नः ॥

४—गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्मात् ।
विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।
अविन्धनं वह्निमसौ बिभर्त्ति ।
प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ॥

---

४ गर्भं = जलं ॥

तेरहवां सर्ग

लंका से राम का अजुध्या को लौटना

१—फिर अपने शब्द गुणवाले मार्ग (आकाश) को विमान से गाहता हुआ वह राम नामवाला विष्णु, गुणों का ज्ञानी, रत्नाकर सागर को देखकर पत्नी से एकान्त में यों बोला ॥

२—"हे वैदेही मेरे पुल से मलयागिरि तक बटे हुए फेन वाले जल समूह (समुद्र) को, छायामार्ग के विभाग किए हुए चमकते तारोंवाले शरद के उज्जल आकाश समान को, देख" ॥

३—"कहते हैं कि यह हमारे पुरखों का, यज्ञाभिलाषी पिता के पवित्र घोड़े को कपिल के पाताल पहुंचाने पर उसके लिये पृथ्वी खोदते हुओं का, बढ़ाया हुआ है" ॥

४—"सूरज की किरण इससे गर्भ (जल) लेती हैं, रत्न इस में बढ़ते हैं, पानीरूपी ईंधनवाली अग्नि (बड़वानल) को यह धारण करता है, आनन्द की जोति (चन्द्रमा) इससे उत्पन्न हुआ है" ॥

---

२ छाया मार्ग अर्थात् आकाश में वह स्वेत मंडल जिसको ऐरावत की गैल अथवा मंदाकिनी अथवा स्वर्ग की नसेनी कहते हैं ॥

५—तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं।
स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयम्।
ईदृक्तया रूपमियत्तया वा॥

६—नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन।
संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः।
संहृत्य लोकान् पुरुषोऽधिशेते॥

७—पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः।
शरण्यमेनं शतशो महीध्राः।
नृपा इवापेप्लविनः परेभ्यः।
धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते॥

८—रसातलादादिभवेन पुंसा।
भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं।
मुहूर्त्तवक्त्राभरणं बभूव॥

९—मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः।
स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः।
पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः॥

---

५ ताम् ताम् अवस्थां=प्रलयाद्यवस्थां॥
७ आत्तगन्धाः=हृतंगभाः॥
८ आदिभवेन=वराहावतारेण॥

५—"अनेक अवस्थाओं को जानेवाला, दसो दिशा में महिमा सहित व्याप्त होकर ठैरा हुआ, इस का रूप इतने पन से अथवा ऐसे पन से अकथ है, जैसे विष्णु का" ॥

६—"नाभि से उपजेहुए कमल पर बैठनेवाले प्रथम प्रजापति (ब्रह्मा) से स्तुत होता हुआ, युग के अन्तमें योगनिद्रा को जानेवाला पुरुष (विष्णु), लोकों को संहार करके इस में सोता है" ॥

७—"पंख काटनेवाले इन्द्रसे गर्व मिटे हुए सैकड़ों पहाड़ इस शरण देनेवाले के आसरे रहते हैं, जैसे वैरियों से डरे हुए राजा उत्तम धर्म्मवाले मध्यस्थ भूपाल के" ॥

८—रसातल से आदि वराह की उठाई हुई पृथ्वी को इसका प्रलय में बढ़ा हुआ निर्म्मल जल क्षणमात्र घूँघट बना था" ॥

९—"स्त्रियों में औरों से निराले व्यवहारवाला, तरंगरूपी अधर देने में निपुण यह आप (तरंगाधर) पीता है और मुख देने में ढीठ स्वभाव वाली नदियों को पिलाता है" ॥

५ अनेक अवस्था अर्थात् प्रलय इत्यादि ॥
९ तरंगाधर अर्थात् तरंगरूपी होठ ॥

१०—ससत्वमादाय नदीमुखाम्भः।
संमीलयन्ती विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैः।
ऊर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान्॥

११—मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिः।
भिन्नान् द्विधा पश्य समुद्रफेनान्।
कपोल संसर्पितया य एषां।
व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम्॥

१२—वेलानिलाय प्रसृता भुजंगाः।
महोर्म्मिविस्फूर्ज्जथुनिर्व्विशेषाः।
सूर्य्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैः।
व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः॥

१३—तवाधरस्पर्द्धिषु विद्रुमेषु।
पर्य्यस्तमेतत् सहसोर्म्मिवेगात्।
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखं कथञ्चित्।
क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम्॥

१४—प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुम्।
आवर्त्तवेगाद् भ्रमता घनेन।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः।
प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः॥

---

१२ प्रसृताः=निर्गताः॥

१०—"खुले मुख होने के कारण संगम के जलों को जीव जन्तुओं समेत निगल कर ये मुँह मूंदे हुए तिमिजाति के मच्छ छेदोंवाले शिरों से जलके प्रवाहों को ऊपर फेंकते हैं" ॥

११—"बलसे उठते हुए मतङ्गाकार मगरों के दो भाग किए हुए समुद्र के झागों को देख जो उनकी कनपटियों पर फैल कर क्षणमात्र कानों के चमर बनते हैं" ॥

१२—"तीर की पवन लेने के लिए निकले हुए, बड़ी तरंगों के उठान सदृश, ये सांप सूर्य्य की किरणों के मिलाप से बढ़ी हुई चमकवाली मणियों से, फनों में रक्खी हुइयों से, जाने जाते हैं" ॥

१३—"तेरे होठों की रीस करनेवाली विद्रुम लताओं में तरंगों के वेग का फेंका हुआ, खड़े अंकुरों में मुख छिदाहुआ यह शंखों का समूह कैसे दुःख से पीछे को लौटता है" ॥

१४—"जल पीने ही को झुके हुए बादल से, आवर्त्त के वेग से घूमते हुए से, यह समुद्र अति शोभा पाता है, मानो (मंदराचल) पहाड़ से फिर मथन होता हुआ" ॥

---

१० तिमि एक प्रकारकी मछली है जिसकी लम्बाई कहानियों में १०० योजन कही है ॥

१२ सांपों का आकार तरंगों का सा है परन्तु उनके फनों में मणि हैं इससे जाने जाते हैं कि ये सांप हैं ॥

१५—दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी ।
तमालतालीवनराजिनीला ।
आभाति वेलालवणाम्बुराशेः ।
धारानिबद्धेव कलङ्करेखा ॥
१६—वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते ।
सम्भावयत्याननमायताक्षि ।
मामक्षमं मण्डनकालहानेः ।
वेत्तीव बिम्बाधरबद्धतृष्णम् ॥
१७—एते वयं सैकतभिन्नशुक्ति ।
पर्य्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।
प्राप्ता मुहूर्त्तेन विमानवेगात् ।
कूलं फलावर्ज्जितपूगमालम् ॥
१८—कुरुष्व तावत् करभोरु पश्चात ।
मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम् ।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात् ।
सकानना निष्पततीव भूमिः ॥
१९—क्वचित् पथा सञ्चरते सुराणां ।
क्वचिद् घनानां पततां क्वचिच्च ।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः ।
प्रवर्त्तते पश्य तथा विमानम् ॥

---

१९ पततां = पक्षिणां ॥

१५—"खारी समुद्र की वेला, ताल और तमाल के वनों की पांति से नीली, दूर होने के कारण पतली दीखती है, मानो लोहे के चक्र की धार पर जमी हुई कोट की रेखा" ॥

१६—"हे दीर्घनैनी! समुद्रतीर की पवन तेरे मुखको केतकी के परागों से रचती है, मानो बिम्बाधर की तृष्णा में बँधे हुए मुझ को सिंगार कराने में समय का बिताना सहने को असमर्थ जान कर" ॥

१७—"समुद्र के इस तट पर, रेती में फटी हुई सीपियों के फैलाए हुए मोतियों के ढेरवाले पर, फलों से झुकी हुई पूगलतावाले पर, हम विमान के वेग के कारण क्षणमात्र में आ पहुंचे हैं" ॥

१८—"हे सूंड़ समान जांघोंवाली हे मृगनैनी! अब गए हुए मार्ग में दृष्टि कर, यह वनों सहित धरती दूर रहते हुए समुद्र से निकलती सी दीखती है" ॥

१९—"कभी देवताओं के मार्ग में कभी बादलों के में और कभी पक्षियों के में जैसी मेरे मन की रुचि होती है देख उसी विधि से विमान चलता है" ॥

---

१५ वेला अर्थात् समुद्र का तट ॥

१९ आकाश में सब से ऊपर देवताओं का मार्ग है जिससे नीचे बादलों का और उससे भी नीचे पक्षियों का ॥

२०—असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिः।
त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थान्।
आचामति स्वेदलवान् मुखे ते॥
२१—करेण वातायनलम्बितेन।
स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या।
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयम्।
उद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते॥
२२—अमी जनस्थानमपोढविघ्नं।
मत्वा समारब्धनवोटजानि।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं।
चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि॥
२३—सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां।
भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द।
विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्॥
२४—त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता।
तं मार्गमेताः कृपया लता मे।
अदर्शयन् वक्तुमशक्नुवन्त्यः।
शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः॥

२०–"ऐरावत के मद से सुगन्धित, गङ्गाजी की तरङ्गों के स्पर्श से शीतल, यह आकाश की पवन तेरे मुख पर दुपहरी में उठे हुए पसीने की बूंदों को सुखाती है" ॥

२१–"हे चंडी! झरोखे में लटकती हुई बांहसे तुझ कुतूहलवती का छुआ हुआ, चमकती बिजली का भुजबन्द फेंकता हुआ, बादल तुझे मानो दूसरा गहना देताहै" ॥

२२–"ये छाल ओढ़नेवाले (तपस्वी) जनस्थान को विघ्न रहित जानकर अपने अपने आश्रम मण्डलों में, नई बनाई हुई पर्णकुटीवालों में बहुत दिन के छोड़े हुओं में, बसते जाते हैं" ॥

२३–"यह स्थान वह है जहां तुझे ढूँढ़ते हुए मैंने एक बिछुआ धरती में पड़ा पाया था, मानो तेरे चरणारविन्द के वियोग की पीड़ा से मौन साधा हुआ" ॥

२४–"हे भीरु! जिस मार्ग से तुझे राक्षस हर लेगया था सो दया करके मुझे इन लताओं ने, बोलने की सामर्थ्य न रखनेवालियों ने, झुके हुए पत्तोंवाली डालियों से दिखलाया था" ॥

---

२१ चंडी अर्थात् बहुत कोपनेवाली ॥
२४ भीरु अर्थात् डरनेवाली ॥

मृग्यश्च दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षाः।
२५–तवागतिज्ञं समबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्याम्।
उत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि॥
२६–एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तात्।
आविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम्।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च।
त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम्॥
२७–गन्धश्च धाराहतपल्वलानां।
कादम्बमर्द्धोद्गतकेसरञ्च।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुः।
यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे॥
२८–पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र।
कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम्।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि।
मया कथञ्चिद्घनगर्ज्जितानि॥
२९–आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगात्।
मामक्षिणोद् यत्र विभिन्नकोशैः।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते।
विवाहधूमारुणलोचनश्रीः॥

२५—"और घासके अंकुरों में चाह छोड़ कर हरिणियों ने तेरे मार्ग के मुझ अज्ञानीको बताने के लिये ऊंचे पलकों वाले नेत्र दक्षिण दिशा में चलाये थे" ॥

२६—"आकाश से लगाहुआ यह आगे माल्यवत का शिखर दिखाई देता है जिसमें बादल ने नया मेह और मैंने तेरे विरह का आंसू एक साथ गिराये थे" ॥

२७—"और जिसमें मेहकी छिड़की हुई पोखरों की सुगन्धि और अधखिली मञ्जरियों वाले कदम्ब पुष्प और मोरों के मीठे आलाप मुझे तेरेबिना असह्य हुए थे" ॥

२८—"और जिसमें हे भीरु आगेभोगेहुए तेरे कम्प सहित आलिंगनों को सुध करके मैंने गुफाओं में बढ़ी हुई बादल की गरज जैसे तैसे बिताई थी" ॥

२९—"जिसमें मेह की भिगोई भूमि की भाप का योग पाकर नई खिली कन्दलियों से होड़ होती हुई तेरी नेत्र शोभा ने, व्याह के धुएं से अरुणता को पहुंची हुई ने, (स्मरण होकर) मुझे पीड़ा दी थी" ॥

---

२८ आलिंगन अर्थात् गले लगना ॥

२९ धरती की भाप लगीहुई नई कन्दली मानो व्याह का धुआं लगे नेत्रों की होड़ करती है ॥

३०—उपान्तवानीरवनोपगूढ़ा।
न्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदात्।
अमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः॥

३१—अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नां।
अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्त्तिना ते।
मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि॥

३२—इमां तटाशोकलताञ्च तन्वीं।
स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्।
त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः।
सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः॥

३३—अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां।
श्रुत्वास्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यः।
गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम्॥

३४—एषा त्वया पेशलमध्ययापि।
घटाम्बुसंवर्द्धितबालचूता।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा।
दृष्टा चिरात् पञ्चवटी मनो मे॥

३०—"पंपासर के इन जलों को, तट के वानीर बनों से ढके हुओं को, कुछ एक दीखते हुए चंचल सारसवालों को दूर गई हुई दृष्टि मानो खेद से पीती है"॥

३१—"यहाँ परस्पर कमल के केसर देते हुये चकवा चकवी के संयोगी जोड़े हे प्यारी तेरे मुझ बियोगी ने प्रेम से देखे थे"॥

३२—"और इस तट की पतली अशोक लताको, स्तन सदृश मनोहर गुच्छों से झुकी हुई को, तेरे मिलापके भ्रम से आलिंगन करनेके इच्छामान मुझ आंसू गिराते हुए को लक्ष्मण ने बरजा था"॥

३३—"बिमान में लटकते हुए सोने के घुंघरुओं का शब्द सुनकर मानो गोदावरी के सारसों की यह पंक्ति आकाश में उड़ती हुई तेरे सन्मुख आती है"॥

३४—"तुझ पेशल मध्या के भी घड़ों के जल से सिंचे हुए आम के पौधोंवाली, मुंह उठाए हुए मृगोंवाली, बहुत दिन पीछे देखी हुई, यह पंचबटी मेरे मनको आनन्द देती है"॥

---

३० खेदसे पीना अर्थात् देखने से तृप्त न होना॥ वानीर अर्थात् नरसल॥
३२ वियोग की दशा में राम ने अशोकलता को सीता सदृश देखकर छाती से लगाने को हाथ बढ़ाया तब लक्ष्मण ने रोका कि यह सीता नहीं है लता है॥
३४ पेशल मध्या, अर्थात् पतली कटिवाली॥

३५—अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तः।
तरंगवातेन विनीतखेदः।
रहस्त्वदुत्संगनिषण्णमूर्द्धा।
स्मरामि वानीरगृहेषुसुप्तः॥

३६—भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः।
प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धिहेतोः।
भौमो मुनेःस्थानपरिग्रहोऽयम्॥

३७—त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्त्तेः।
तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम्।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः।
समश्नुते मे लघिमानमात्मा॥

३८—एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः।
पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि।
आभाति पर्य्यन्तवनं विदूरात्।
मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम्॥

३९—पुरा स दर्भांकुरमात्रवृत्तिः।
चरन् मृगैः सार्द्धमृषिर्मघोना।
समाधिभीतेन किलोपनीतः।
पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम्॥

३५—"यहां गोदावरी के तट पर मृगया से निवट कर तरंगों की पवन से थकावट मिटाहुआ नरसल की कुटी में एकान्त तेरी गोद में सिर रक्ख के सोया हुआ मैं सुध करता हूं" ॥

३६—"भौंह मरोड़ने ही से जिसने नहुष को इन्द्र की पदवी से भ्रष्ट किया था उस मुनि का, मैले जलों को निर्मल करनेवाले का, यह धरती पर किया हुआ घर है" ॥

३७—"उस अनिन्दित कीर्त्तिके तीन अग्नियों के इस उत्तम धुएंको, हव्य की सुगन्धि लिए हुए को, विमान के मार्ग में आते हुए को, सूंघ कर मुझ रजोगुण रहित का अन्तःकरण लघुता को जाता है" ॥

३८—"हे मानिनी शातकर्णी मुनि का पंचाप्सर नाम विहार सरोवर वनों से घिरा हुआ वह चमकता है, मानो बादलों के बीच में दूर से कुछ एक दीखता हुआ चन्द्रबिम्ब" ॥

३९—"कहते हैं कि आगे उस दाभ के अंकुर मात्र भोजन करनेवाले को, मृगों के संग फिरते हुए को, तपस्या से डरनेवाले इन्द्र ने पांच अप्सराओं के यौवन रूपी कपट जाल में फँसाया था" ॥

---

३६ अगस्त मुनिका आश्रम ॥
३७ लघुता को जाना अर्थात् शुद्ध होना ॥

४०–तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः।
प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः।
क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति॥

४१–हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां।
मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी।
नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः॥

४२–अमुं सहासप्रहितेक्षणानि।
व्याजार्द्धसन्दर्शितमेखलानि।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं।
सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि॥

४३–एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां।
कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः।
सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते॥

४४–वाचंयमत्वात् प्रणतिं ममैषः।
कम्पेन किञ्चित् प्रतिगृह्य मूर्ध्नः।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां।
पुनः सहस्रार्च्चिषि सन्निधत्ते॥

४०—"उस जल के भीतर मन्दिर में बैठे हुए के सङ्गीत मृदङ्ग की यह ध्वनि आकाश तक उठकर प्रतिध्वनि से पुष्पक की चन्द्रशाला को क्षण मात्र गुंजारती है" ॥

४१—"चार प्रज्वलित अग्नियों के बीच में यह दूसरा तपसी सूरज से ललाट तपानेवाला नाम का सुतीक्षण कर्मका सौम्य तपता है" ॥

४२—"इस इन्द्र की शङ्का उपजानेवाले के डिगाने को अप्सराओं के विलास चरित्र, मुसकानि सहित फेंकी हुई दृष्टियोंवाले, मिस से आधी मेखला दिखलाते हुए, समर्थ न हुए" ॥

४३—"यह ऊंची बाँहवाला तपसी मेरे सत्कार निमित्त रुद्राक्ष की माला के भुजबन्दवाली, हरिणों को खुजलानेवाली, कुशा की सुइयों की तोड़नेवाली, दाहनी भुजा अनुकूल करता है" ॥

४४—"मौन के नियम के कारण कुछ हिलतेहुए सिर से यह मेरा प्रणाम लेकर बीच में विमान आनेसे छुटी हुई दृष्टि को फिर सूरजमें लगाता है" ॥

---

४० चन्द्रशाला अर्थात् रथ की गुमटी ॥
४३ अनुकूल अर्थात् सीधा ॥

४५—अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नः।
तपोवनं पावनमाहिताग्नेः।
चिराय सन्तर्प्य समिद्भिरग्निं।
यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्॥
४६—छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु।
भूयिष्ठसम्भाव्यफलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुना सपर्य्या।
स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु॥
४७—धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ।
शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुः।
दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः॥
४८—एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा।
सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भातिनगोपकण्ठे।
मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः॥
४९—अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः।
प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।
यवांकुरापाण्डुकपोलशोभी।
मयावतंसः परिकल्पितस्ते॥

४५—"यह शरण देनेवाला पुनीत तपोवन शरभंग नाम तपस्वी का है जिसने बहुत कालतक अग्निको समिधों से तृप्त करके मन्त्रों से पवित्र किया हुआ शरीर भी हवन कर दिया था" ॥

४६—"उसका अतिथि सत्कार इन सपूत पूतों के समान वृक्षों में, छाया से मार्ग का परिश्रम मिटानेवालों में, बहुत फल देनेवालों में, अबतक वर्त्तमानहै" ॥

४७—"झरनों की ध्वनि निकालती हुई गुफा रूपी मुखवाला, शिखर की नोक पर लगे हुए बादल रूपी क्रीड़ा की कीचवाला, यह चित्रकूट मेरी दृष्टि को हे ऊंचे अंगों वाली ! खैंचता है, मानो ठाटवाला गर्वीला बैल" ॥

४८—"वह निर्मल निश्चल प्रवाहवाली मन्दाकिनी नदी दूर का अन्तर होने के कारण पहाड़ की तलहटी में पतली दीखती है, मानो पृथ्वी के गले में पड़ी हुई मोतियों की माला" ॥

४९—"यह पहाड़ के निकट सुन्दर तमाल वह है जिसका सुगन्धित पत्ता लेकर मैंने तेरे जवांकुर रक्खे हुए कुछ पीले कपोल को शोभित करने के लिए करन फूल बनाया था" ॥

---

४६ उस मुनि के लगाए हुए वृक्ष भी अतिथियों का सत्कार करते हैं ॥
४७ पहाड़ की उपमा बैल से दी है ॥

५०—अनिग्रहत्रासविनीतसत्वम्।
अपुष्पलिंगात् फलबन्धिवृक्षम्।
वनं तपः साधनमेतदत्रेः।
आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्॥

५१—अत्राभिषेकाय तपोधनानां।
सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्।
प्रवर्त्तयामास किलानुसूया।
त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम्॥

५२—वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाम्।
अमी समध्यासितवेदिमध्याः।
निर्वातनिष्कम्पतया विभान्ति।
योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि॥

५३—त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः।
सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां।
सपद्मरागः फलितो विभाति॥

५४—क्वचित् प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैः।
मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानाम्।
इन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव॥

५०—"दण्ड के त्रास बिना भी सुशीलता सीखे हुए पशुओं वाला, फूलों के चिह्न विनाही फलों से लदे हुए वृक्षों वाला, उदग्र प्रताप प्रकटकरनेवाला, यह वन अत्रिमुनि के तप का साधन है"॥

५१—"कहते हैं कि यहां तपस्वियों के न्हाने के लिये अनसूया ने सप्तऋषियों के हाथ से निकाले हुए हेम कमलोंवाली महादेवकी सिरमाला (गंगा) बहाई थी"॥

५२—"वीरासन लगा कर ध्यान में बैठनेवाले ऋषियों के ये वृक्ष भी वेदियों के मध्य में खड़े हुए बिना पवन की निश्चलता के कारण योग में ध्यान लगाए हुए से दीखते हैं"॥

५३—"जो श्याम नामवाला वट का वृक्ष तैंने आगे पूजा था सो फलकर चुन्नियों सहित पन्नों के ढेरकी नाईं वह चमकता है"॥

५४—"कहीं फैली हुई कान्तिवाले नीलकों के साथ गुंथे हुए मुक्ताहार की नाईं, कहीं नीले कमलों के साथ पुही हुई स्वेत कमलों की माला की नाईं"॥

---

५४ इस श्लोक से लेकर ५७ तक में गंगा यमुना के संगम की उपमा है॥

५५–क्वचित् खगानां प्रियमानसानां।
कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा।
भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव॥

५६–क्वचित् प्रभा चान्द्रमसी तमोभिः।
छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा।
रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा॥

५७–क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव।
भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गंगा।
भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः॥

५८–समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते।
पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयः।
तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः॥

५९–पुरंनिषादाधिपतेरिदं तत्।
यस्मिन् मया मौलिमणिं विहाय।
जटासु बद्धास्वरुदत् सुमन्त्रः।
कैकेयि कामाः फलितास्तवेति॥

५५—"कहीं कल हंसों सहित मानसरोवर के उत्साही पक्षियों (राजहंसों) की पंक्ति की नाईं, कहीं कालागुर की रेखा लगी हुई पृथ्वी की चन्दन रचनाकी नाईं" ॥

५६—"कहीं छाया में बैठे हुए अंधेरे की कबरी की हुई चांदनी की नाईं, कहीं रन्ध्रों में आकाश दिखाती हुई शरद् घन की स्वेत पंक्ति की नाईं" ॥

५७—"और कहीं काले सांप के भूषणवाले भस्म के अंगराग वाले महादेव के शरीर की नाईं, हे निर्दोष अंगवाली देख यमुना की तरंगों से प्रवाह टूटी हुई गंगा शोभायमान है" ॥

५८—"कहते हैं कि यहां समुद्र की दो पत्नियों के जल संगम में स्नान करने से तत्वज्ञान के बिना भी पवित्र आत्मा पुरुषों का फिर देह सम्बन्ध नहीं होताहै" ॥

५९—"यह निषादों के राजा का वह गांव है जहां मुझे सिर की मणि उतार कर जटाजूट बांधते हुए देख कर सुमन्त रोया था कि ले केकई अब तेरे मनोरथ सिद्ध हुए" ॥

---

५८ समुद्र की दो पत्नी अर्थात् गंगा और यमुना ॥

६०—पयोधरैः पुण्यजनांगनानां।
निर्व्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचः।
बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति॥

६१—जलानि या तीरनिखातयूपा।
वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्।
तुरंगमेधावभृतावतीर्णैः।
इक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि॥

६२—यां सैकतोत्संगसुखोचितानां।
प्राज्यैःपयोभिः परिवर्द्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे।
सम्भावयत्युत्तरकोशलानाम्॥

६३—सेयं मदीया जननीव तेन।
मान्येन राज्ञा सरयूर्व्वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां।
तरङ्गहस्तैरुपगूहतीव॥

६४—विरक्तसन्ध्याकपिशं पुरस्तात्।
यतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते।
शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः।
प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः॥

६० पुण्यजन=यक्ष॥ आप्तवाचः=मुनयः॥
अव्यक्तं=महत्तत्वं॥

६०—"जिस (नदी) का करता मुनीलोग यक्षों की स्त्रियों के कुचों की भीगी हुई कमल रजवाले मानसरोवर को कहते हैं, जैसे बुद्धि का महत्तत्व को" ॥

६१—"जो तट पर खड़े हुए यज्ञ खम्भोंवाली, अश्वमेध के अन्तस्नानों से इक्ष्वाकुवंशियों के अधिक पवित्र किए हुए जलों को अयोध्या राजधानी के निकट बहाती है" ॥

६२—"जिसको तटरूपी गोद का सुख लेनेवाले उमगते हुए पयों से पले हुए, उत्तर कोशलाधीशों की साधारण धाय की भांति मेरा मन सम्भावना करता है" ॥

६३—"सो यह सरयू मेरी माता की नाईं उस पूज्यमान राजा की छोड़ी हुई मुझ दूर बसे हुए को मानो ठण्ढी पवन वाले तरंगरूपी हाथों से अंक में भरती है" ॥

६४—"इस हेतु से कि रंग पलटी हुई सन्ध्या की नाईं पृथ्वी की पीली धूल आगे उड़ती है मैं शंका करता हूं कि हनूमान् से वृत्तान्त सुना हुआ भरत सेना सहित मेरे लिये आता है" ॥

६५—अद्धा श्रियं पालित संगराय।
प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः।
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन्।
संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे॥

६६—असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः।
पश्चादवस्थापितवाहिनीकः।
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासाः।
मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति॥

६७—पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः।
श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रं।
अभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम्॥

६८—एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीयाम्।
इच्छां विमानमधिदेवतया विदित्वा।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभिः।
उद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतानुगाभि॥

६९—तस्मात् पुरःसरविभीषणदर्शितेन।
सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः।
यानादवातरददूरमहीतलेन।
मार्गेणभंगि रचितस्फटिकेन रामः॥

---

६५ संगर=प्रतिज्ञा॥ मृधे=युद्धे॥

६५–"निश्चय वह साधू रक्षा की हुई अछूती राजलक्ष्मी मुझ प्रतिज्ञा पालनेवाले को सौंपेगा, जैसे रणमें खरादिक का नाश करके लौटे हुए को लक्ष्मण मे तू (सौंपी) " ॥

६६–" गुरू को आगे और सेना को पीछे किए हुए, छाल के वस्त्र ओढ़े हुए, हाथ में अर्घ लिये हुए, वह भरत बूढ़े मन्त्रियों सहित मेरी ओर पैदल आता है" ॥

६७–"जिसने युवान होकर भी पिता की दी हुई गोद में आई हुई लक्ष्मी मेरी भक्ति के कारण अनभोगी रक्खी, मानो इतने वर्ष उसके साथ कठिन आसिधार व्रत साधा" ॥

६८–"दशरथ सुत के इतने कहने पर विमान उसकी इच्छा को अधिदेवतापन से जान कर भरत के पीछे चलती हुई आश्चर्यमान प्रजा के देखते हुए आकाश से उतरा" ॥

६९–"सेवा चतुर सुग्रीव का हाथ पकड़कर राम उस विमान से अग्रगामी विभीषण की दिखलाई हुई, पृथ्वी पर रक्खी हुई, स्फटिक मणि जटित डंडोंवाली, सीढ़ी से उतरा" ॥

---

६७ आसिधार व्रत अर्थात् खड्ग की धार का व्रत " युवायुवत्यासार्द्धं यत् मुग्धभर्तृवदाचरेत् । अन्तर्निवृत्तसंगःस्यात् आसिधारव्रतं हितत् " ॥

६८ अधिदेवतापन अर्थात् मान लिया हुआ देवतापन ॥

७०—इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य।
सभ्रातरं भरतमर्घ्यपरिग्रहान्ते।
पर्य्यश्रुरस्वजत मूर्द्धनि चोपजघ्रौ।
तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके॥

७१—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियांश्च।
प्लक्षान् प्ररोहजटिलानिव मंत्रिवृद्धान्।
अन्वग्रहीत् प्रणमतः शुभदृष्टिपातैः।
वार्त्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा॥

७२—दुर्ज्जातबन्धुरयमृक्षहरीश्वरो मे।
पौलस्त्य एष समरेषु पुरः प्रहर्त्ता।
इत्यादृतेन कथितौ रघुनन्दनेन।
व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे॥

७३—सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैनम्।
उत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिंग।
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन।
क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुरःस्थलेन॥

७४—रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं।
कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान्।
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः।
शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते॥

७०–इक्ष्वाकु वंश के गुरू को प्रणाम करके उस विनीतवान् ने अर्घ लेने से पीछे भाई सहित भरत को आँसू गिरा कर छाती से लगाया और अपनी भक्ति के कारण पिता के राज्य का महा अभिषेक त्यागनेवाला मस्तक सूंघा ॥

७१–और जटा बढ़े हुए, बड़ के वृक्षों की नाईं डाढ़ी बढ़ने से मुख का रूप पलटे हुए, बिनती करते हुए, बूढ़े मंत्रियों पर प्रसन्नता की दृष्टि से और कुशल पूछ कर मीठी वाणी से अनुग्रह किया ॥

७२–"यह रीछ बन्दरों का राजा (सुग्रीव) मेरा आपत्य का मित्र है, यह संग्राम में प्रथम प्रहार करनेवाला पौलस्त्य (विभीषण) है" इस प्रकार रघुनन्दन के आदर सहित बखाने हुए दोनों को भरत ने लक्ष्मण को छोड़कर नमस्कार किया ॥

७३–इससे पीछे वह सुमित्रासुतसे मिला और उस विनती करते हुए को लेकर बल से छाती लगाया मानो इन्द्रजीत के प्रहारों के बड़े घावोंवाले से उसके कर्कश उरस्थल अपनी भुजा का मध्य दुखाने के लिये ॥

७४–तब राम की आज्ञा से बन्दर सेना के स्वामी मनुष्य रूप होकर बड़े हाथियों पर चढ़; उनके बहुत ठौर से मद की धारा बरसाने पर उन्हों ने पहाड़ के चढ़ने का सुख अनुभव किया ॥

७५—सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां।
भेजे रथान् दशरथप्रभवानुशिष्टः।
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयैः।
न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः॥

७६—भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताकम्।
अध्यास्त कामगति सावरजो विमानम्।
दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्यः।
तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम्॥

७७—तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वीं।
वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः।
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रात्।
प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरतो ववन्दे॥

७८—लङ्केश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतं तत्।
वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलञ्च शिरोऽस्य साधोः।
अन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य॥

७९—क्रोशार्द्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा।
काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण।
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्य्यमार्य्यः।
साकेतोपवनमुदारमध्युवास॥

इति श्री रघुवंशे त्रयोदशः सर्गः समाप्तः॥

७५—निशाचरों का स्वामी भी दशरथसुत की आज्ञा से साथियों समेत रथों पर चढ़ा जिनकी शोभा यद्यपि कृत्रिम थी तौ भी उसके माया कल्पित रथों से तोले न गए॥

७६—फिर इच्छापूर्वक चलते हुए सुन्दर पताकावाले कामगति विमान पर रघुपति भाइयों सहित चढ़े, मानो सांझ समय चमकती हुई बिजलीवाले बादल पर बुद्ध और बृहस्पति के योग से शोभायमान चन्द्रमा॥

७७—वहां मानो प्रलय से आदि वराह की उद्धारी हुई पृथ्वी को; मानो बादलों की घटा से (उद्धारी हुई) शरद् चांदनी को, दशकण्ठ के संकट से राम की उद्धारी हुई धैर्यवती सीता को भरत ने बन्दना की॥

७८—तब रावण की विनती भंग करके पतिव्रत रखनेवाला जानकी के चरणों का वह पूज्यमान जोड़ा और बड़े भाई की भक्तिमें जटा बढ़ा हुआ उस साधू का सीस दोनों मिलकर एक दूसरे को पवित्र करनेवाले हुए॥

७९—प्रजा के पीछे हौले हौले चलते हुए पुष्पक पर श्रेष्ठ काकुत्स्थ ने आध कोस जाकर शत्रुघ्न के सजाए हुए तम्बुओंवाले अयोध्या के बड़े उपवन में डेरा किया॥

तेरहवां सर्ग समाप्त हुआ

---

७५ राम के रथ यद्यपि मनुष्यों के बनाए थे तौ भी उनकी शोभाको विभीषण के माया से बने हुए रथों की शोभा न पहुंची॥

७६ राम के साथ भरत और लक्ष्मण दो भाई रथ पर चढ़े॥

चतुर्दशः सर्गः

सीतापरित्यागः

१–भर्तुःप्रणाशादथ शोचनीयं ।
दशान्तरं तत्र समं प्रपन्ने ।
अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ ।
छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ ॥

२–उभावुभाभ्यां प्रणतौ हतारी ।
यथाक्रमं विक्रमशोभिनौ तौ ।
विस्पष्टमस्त्रान्धतया नदृष्टौ ।
ज्ञातौ सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् ॥

३–आनन्दजः शोकजमश्रुबाष्पः ।
तयोरशीतं शिशिरो बिभेद ।
गंगासरय्वोर्जलमुष्णतप्तं ।
हिमाद्रिनिस्यन्द इवावतीर्णः ॥

४–ते पुत्रयो नैर्ऋतशस्त्रमार्गान् ।
आर्द्रानिवांगे सदयं स्पृशन्त्यौ ।
अपीप्सितं क्षत्रकुलाङ्गनानां ।
न वीरसूशब्दमकामयेताम् ॥

चौदहवां सर्ग

सीताका वनोवास

१—तिस पीछे पति के मरने से सोग की दशाको पहुँची हुई दोनों जननी वहां दोनों दशरथकुमारों ने एक साथ देखीं, मानों जिस वृक्षका आसरा था उसके कट जाने से दो लता ॥

२—क्रम से उन दोनों विनती करते हुओं को, वैरियों के मारनेवालों को, पराक्रमों से शोभायमानों को दोनों (माताओं) ने आंसुओं के धुन्धलेपन के कारण स्पष्ट न देखा पुत्र स्पर्श के सुख के अनुभव से अपने अपने को जाना ॥

३—आनन्द से उपजेहुए उनके ठण्ढे आँसूने दुःखका तत्ता आंसू तोड़ दिया मानों हिमालय के झरने ने घाम का तपाया हुआ गङ्गा सरयू का जल ॥

४—पुत्रों के अङ्ग में राक्षस के अस्त्रों चिह्नों को गीलों की नाईं दया छूते हुए उन्हों ने क्षत्रिय जातिकी स्त्रियों की आकांक्षा की हुई भी वीरसू पदवी न चाही ॥

---

४ वीरसू अर्थात् सूरवीर जननेवाली ॥

५—क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाहं।
सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यौ।
अभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे॥

६—उत्तिष्ठ वत्से ननु सानुजोऽसौ।
वृत्तेन भर्त्ता शुचिना तवैव।
कृच्छ्रं महत् तीर्ण इति प्रियार्हां।
तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या॥

७—अथाभिषेकं रघुवंशकेतोः।
प्रारब्धमानन्दजलैर्जनन्योः।
निर्वर्त्तयामासुरमात्यवृद्धाः।
तीर्थाहृतैः काञ्चनकुम्भतोयैः॥

८—सरित्समुद्रान् सरसीश्च गत्वा।
रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि।
तस्यापतन् मूर्ध्नि जलानि जिष्णोः।
विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः॥

९—तपस्विवेषक्रिययापि तावत्।
यः प्रेक्षणीयः सुतरां बभूव।
राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा।
तस्योदितासीत् पुनरुक्तदोषा॥

५—"पति को दुःख देनेवाली मैं कुलच्छनी सीता हूं" ऐसे अपना नाम लेती हुई वधू ने स्वर्गवासी सुसर की दोनों रानियों को समान भक्ति से बन्दना की ॥

६—"हे बेटी! उठ निश्चय भाई सहित यह भर्ता तेरेही पवित्र आचरण के प्रताप से बड़े दुःख को पार हुआ है" ऐसे उस प्यार करने योग्य से उन्हों ने प्यारा वचन भी सत्य कहा ॥

७—फिर रघुवंश की ध्वजा (रामचन्द्र) का अभिषेक जननियों के आनन्द के आंसुओं से आरम्भ पाया हुआ बूढ़े मंत्रियों ने तीर्थों से लाए हुए सोने के कलसों के जलों से पूरा किया ॥

८—नदियों और सागरों और सरोवरों को जाकर राक्षसों और बन्दरों के स्वामियों के लाए हुये जल उस जयशील के सीस पर गिरे, जैसे बादलों के पानी विन्ध्याचल के (सीस) पर ॥

९—जो तब तक तपस्वी के भेस की रचना में भी अति सुन्दर था उसके राजेन्द्र रूप की सजावट से उठी हुई शोभा पुनरुक्तदोषा (अर्थात् दुगुनी) हुई ॥

---

६ सच्चा वचन बहुधा कड़वा होता है ॥

१०—स मौलरक्षोहरिभिः ससैन्यः ।
तूर्य्यस्वनानन्दितपौरवर्गः ।
विवेश सौधोद्गतलाजवर्षाम् ।
उत्तोरणामन्वयराजधानीम् ॥

११—सौमित्रिणा सावरजेन मन्दम् ।
आधूतबालव्यजनो रथस्थः ।
धृतातपत्रो भरतेन साक्षात् ।
उपायसंघात इव प्रवृद्धः ॥
१२—प्रासादकालागुरुधूमराजिः ।
तस्याः पुरो वायुवशेन भिन्ना ।
वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन ।
मुक्ता स्वयं वेणिरिवाबभासे ॥
१३—श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेशां ।
कर्णीरथस्थां रघुवीरपत्नीम् ।
प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः ।
साकेतनार्य्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः ॥

१०–वह सेना का स्वामी मंत्रियों और राक्षसों और बन्दरों समेत तुरहियों की धुनि से पुरबासियों के समूह को आनन्द देता हुआ पुरखों की राजधानी में, भवनों से खीलों की बरसा होती हुई में, ऊंचे तोरनोंवाली में, गया॥

११–भाई (शत्रुघ्न) समेत लक्ष्मण ने मन्द मन्द चमर किया है और भरत ने छत्र फेरा है जिस पर ऐसा रथ पर बैठा हुआ, मानो साक्षात् साम इत्यादि (उपायों) का पूरा समुदाय॥

१२–पवन की तोड़ी हुई कालागुर के धुएं की रेखा भवनों में शोभायमान दीखी, मानों बन से लौटे हुए रघुबरकी आप खोली हुई उस पुरी की बेणी॥

१३–सासुओं की सुन्दर वेश रचाई हुई, कर्णी रथ में बैठी हुई, रघुपति की पत्नी को अयोध्या की नारियों ने भवनों के झरोखों में दीखती हुई अंजुलियों से प्रणाम किया॥

---

१२ यहां पुरी को पत्नीभाव में रक्खा है जब तक पति परदेश में हो स्त्री बेणी नहीं खोलती॥

१३ कर्णी एक प्रकार का छोटा रथ स्त्रियों के बैठने का होताहै॥

१४–स्फुरत्प्रभामण्डलमानुसूयं।
सा बिभ्रती शाश्वतमंगरागम्।
रराज शुद्धेति पुनः स्वपुर्य्यै।
सन्दर्शिता वह्निगतेव भर्त्रा॥

१५–वेश्मानि रामः परिवर्हवन्ति।
विश्राण्य सौहार्दनिधिः सुहृद्भ्यः।
वाष्पायमाणो वलिमन्निकेतम्।
आलेख्यशेषस्य पितुर्विवेश॥

१६–कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब सत्यात्।
नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद्गुरुर्नः।
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति।
जहार लज्जां भरतस्य मातुः॥

१७–तथैव सुग्रीवविभीषणादीन्।
उपाचरत् कृत्रिमसंविधाभिः।
सङ्कल्पमात्रोदितसिद्धयस्ते।
कांता यथा चेतसि विस्मयेन॥

१८–सभाजनायोपगतान् स दिव्यान्।
मुनीन् पुरस्कृत्य हतस्य शत्रोः।
शुश्राव तेभ्यः प्रभवादि वृत्तं।
स्वविक्रमे गौरवमादधानम्॥

१४—कान्तिमान प्रभामंडलवाला अनसूया का दिया हुआ सदारहनेवाला अंगराग धारण किए हुए वह शोभायमान दिखलाई दी मानो "शुद्ध है" यह कह कर अपनी पुरी को पति की दिखलाई हुई फिर अग्नि में विराजमान॥

१५—मित्रता के सागर राम ने मित्रों को सामग्री सहित स्थान देकर चित्रमात्र बचे हुए पिता के पूजागृह में आंसू गिराते हुए प्रवेश किया॥

१६—वहां हाथ जोड़ कर "हे माता! हमारा पिता जो स्वर्गरूपी फलवाले सत्य से न डिगा यह सोचने योग्य तेराही सुकृत है" यह कह कर भरत की महतारी की लज्जा हरी॥

१७—और सुग्रीव विभीषण इत्यादि का सत्कार बनाई हुई सामग्रियों से ऐसा किया कि चाही हुई वस्तु तुरन्त मिलने के कारण वे मन में अचम्भे से दब गये॥

१८—सत्कार निमित्त आए हुए दिव्यमुनियों को उसने आगे बिठाकर मारे हुए वैरी का जन्म पर्यन्त वृत्तान्त, अपने पराक्रम में गौरव देनेवाला, उन से सुना॥

---

१४ प्रभामण्डल अर्थात् चमक का घेरा॥

१५ दशरथ का चित्रही रहा था आप स्वर्गवासी होचुका था॥

१८ जीतेहुए वैरी के पराक्रम की बड़ाई से जीतनेवाले का पराक्रम बढ़ता है॥

१९—प्रतिप्रयातेषु तपोधनेषु ।
सुखादविज्ञातगतार्द्धमासान् ।
सीतास्वहस्तोपहृताग्य्रपूजान् ।
रक्षःकपीन्द्रान् विससर्ज्ज रामः ॥

२०—तच्चात्मचिन्तासुलभं विमानं ।
हृतं सुरारेः सहजीवितेन ।
कैलासनाथोद्वहनाय भूयः ।
पुष्पं दिवः पुष्पकमन्वमंस्त ॥

२१—पितुर्नियोगाद्वनवासमेवं ।
निस्तीर्य्य रामः प्रतिपन्नराज्यः ।
धर्म्मार्थकामेषु समां प्रपेदे ।
यथा तथैवावरजेषु वृत्तिम् ॥

२२—सर्व्वासु मातृष्वपि वत्सलत्वात् ।
स निर्व्विशेषप्रतिपत्तिरासीत् ।
षडाननापीतपयोधरासु ।
नेता चमूनामिव कृत्तिकासु ॥

२३—तेनार्थवान् लोभपराङ्मुखेन ।
तेन घ्नता विघ्नभयं क्रियावान् ।
तेनास लोकः पितृमान् विनेत्रा ।
तेनैव शोकापनुदेन पुत्री ॥

१९—मुनियों के लौटजाने पर राम ने राक्षसों और बन्दरों के स्वामियों को, सुख से आधा महीना बीता न जाने हुओं को, सीता के और अपने हाथ से उत्तम भेट पाए हुओं को, जाने की आज्ञा दी ॥

२०—और अपनी इच्छा से तुरन्त मिलनेवाला, देवताओं के बैरी से जीव सहित लिया हुआ, वह आकाश के फूल समान पुष्पक विमान फिर कुवेर के चढ़ने को भेज दिया ॥

२१—पिता की आज्ञा से इस प्रकार बनबास भुगत कर राज्य पर बैठे हुए राम ने जैसे धर्म अर्थ काम में वैसेही भाइयों में समान व्यवहार वर्त्ता ॥

२२—सब माताओं में भी वह प्यार के कारण तुल्य सत्कार करनेवाला हुआ, जैसे छः मुखों से क्षीर खैंची हुई कृत्तिकाओं में स्वामिकार्तिक ॥

२३—प्रजा उस निर्लोभी से धनवान हुई, विघ्नों का डर मेटने वाले से क्रियावान, उस नीति पर चलानेवाले से पितावान, उसी दुःख हरनेवाले से पुत्रवान ॥

---

२० आकाश का फूल अर्थात् आकाश की शोभा ॥ पुष्पक विमान पहले कुवेर का था रावण ने उस से छीन लिया था सो राम ने फिर कुवेर को दिया ॥

२४–स पौरकार्य्याणि समीक्ष्य काले।
रेमे विदेहाधिपतेर्दुहित्रा।
उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं।
कृत्वोपभोगोत्सुकयेव लक्ष्म्या॥
२५–तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थान्।
आसेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु।
प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु।
सञ्चिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन्॥
२६–अथाधिकस्निग्धविलोचनेन।
मुखेन सीता शरपाण्डुरेण।
आनन्दयित्री परिणेतुरासीत्।
अनक्षरव्यञ्जितदौर्हृदेन॥
२७–तामङ्कमारोप्य कृशाङ्गयष्टिं।
वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम्।
विलज्जमानां रहसि प्रतीतः।
पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम्॥

२४—एक समय प्रजाके कारज देखभाल कर उसने विदेह राज की बेटी के साथ विलास किया, मानो भोग के चाव से उसका सुन्दर भेस ली हुई लक्ष्मी के साथ॥

२५—चित्रसालाओं में इच्छापूर्वक इन्द्रियों का विषय भोगते हुए उन दोनों को दण्डकवन में पाये हुए दुःख भी स्मरण होकर सुख हुए॥

२६—तब सीता अधिक मनोहर नेत्रोंवाले मुख से, शरसमान पीले से, बोले विनाही गर्भ जतानेवाले से, पति को आनन्द की दाता हुई॥

२७—उस पतले अङ्गवाली को, रंग पलटे हुए पयोधरवाली को, लज्जावती रामा को, एकान्त में छाती से लगा कर (गर्भ) जाने हुए रमणशील ने मनोरथ पूछा॥

---

२५ चित्रशालाओं में दण्डकवन के स्थानों के चित्र लिखेहुएथे उनके देखने से वनकी सुधआई॥

२६ शरः=तृणविशेष॥ तात्पर्य्य यह है कि सीता उस समय गर्भवती थी॥

२७ पयोधरोंके मुखका रंग पलटाहुआ देखकर रामको प्रतीत हुई कि सीता गर्भवती है इसलिये उसके मनकी चाह पूछी॥

२८—सा दष्टनीवारबलीनि हिंस्रैः।
सम्बद्धवैखानसकन्यकानि।
इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं।
भागीरथीतीरतपोवनानि॥

२९—तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरः।
तदीप्सितं पार्श्वचरानुयातः।
आलोकयिष्यन् मुदितामयोध्यां।
प्रासादमभ्रं लिहमारुरोह॥

३०—ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्।
विगाह्यमानां सरयूञ्च नौभिः।
विलासिभिश्चाध्युषितानि पौरैः।
पुरोपकण्ठोपवनानि रेमे॥

३१—स किं वदन्दीं वदतां पुरोगः।
स्ववृत्तमुद्दिश्य विशुद्धवृत्तः।
सर्पाधिराजोरुभुजोऽपसर्पं।
पप्रच्छ भद्रं विजितारिभद्रः॥

३२—निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्व्वं।
स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम्।
अन्यत्र रक्षोभवनोषितायाः।
परिग्रहान्मानवदेव देव्याः॥

२८—उस ने गंगा तीर के दाभवाले तपोवनों को जिस में दुष्ट पशू धान की बलि खाते थे और जहां उस ने बन-वासियों की लड़कियों से बहनेला किया था, फिर जाने की इच्छा की ॥

२९—उसके उस मनोरथ को स्वीकार करके रघुबर टहलुए सहित प्रसन्न अयोध्या को देखता हुआ बादल से लगे हुए भवन पर चढ़ गया ॥

३०—उसने ऋद्धिमान हाटोंवाले राजमार्ग और नाव चलती हुई सरयू और विलासी पुरबासियों के बसाए हुए नगर निकट के उपवन देख देख कर मन बहलाया ॥

३१—उस बोलनेवालों के मुखिया ने, शुद्ध आचारवाले ने, शेषनाग समान जंघा और भुजावाले ने, बैरियों के जीतनेवालों में श्रेष्ठ ने, भद्रनाम दूत से अपने वृत्तान्त सम्बन्धी लोक चरचा पूछी ॥

३२—उस बारम्बार पूछे हुए ने कहा "हे नरदेव तुम्हारे सब चरितों को नगर के लोग सराहते हैं (परन्तु) राक्षस के घर में रही हुई रानी को ग्रहण करने के विना" ॥

---

२८ मास खानेवाले पशू भी तपोवन में न्यार खाते थे इन तपोवनों में सीताजी ने वनवासियों की लड़कियों से बहनेला जोड़ा था ॥

३३–कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवम्।
अभ्याहतं कीर्त्तिविपर्य्ययेण।
अयोघनेनाय इवाभितप्तं।
वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे॥

३४–किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे।
जायामदोषामुत सन्त्यजामि।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वात्।
आसीत् स दोलाचलचित्तवृत्तिः॥

३५–निश्चित्य चानन्यनिवृत्तिवाच्यं।
त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छत्।
अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात्।
यशोधनानां हि यशो गरीयः॥

३६–ससन्निपात्यावरजान् हतौजाः।
तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान्।
कौलीनमात्माश्रयमाचचक्षे।
तेभ्यः पुनश्चेदमुवाच वाक्यम्॥

३७–राजर्षिवंशस्य रविप्रसूतेः।
उपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम्।
मत्तः सदाचारशुचेः कलङ्कः।
पयोदवातादिव दर्पणस्य॥

३३–कहते हैं कि पत्नी की निन्दा के इस बड़े अपयश से वैदेही के प्यारे का चोट लगा हुआ हृदय विदीरन होगया, मानो लोहे के घन से तपा हुआ लोहा॥

३४–"क्या अपने अपयश की कथा सुनी अनसुनी करूं अथवा निर्दोष पत्नी को त्यागूं" इस प्रकार एक पक्ष के आश्रय की असमर्थता के कारण वह भूले की नाईं चलायमान चित्त वृत्तिवाला हुआ॥

३५–और अपवाद को दूसरे उपाय से न मिटनेवाला निश्चय करके उसको पत्नी के त्याग से मिटाना चाहा क्योंकि इन्द्रियों के विषय से क्या अपने देह से भी प्यारा यश के धनियों को यश होता है॥

३६–उस तेज घटे हुए ने भाइयों को, उसका बिगड़ा रूप देखकर हर्ष मिटे हुओं को, इकट्ठा करके अपनी निन्दा उनसे कही और फिर यह बचन कहा॥

३७–"देखो मुझ शुद्ध आचरणवाले से यह कलंक राज ऋषियों के वंश को, सूरज के कुल को, कैसा लगा मानो मेह की पवन से दर्पण को"॥

---

३४ एक पक्ष का आश्रय अर्थात् दोनों बातों में एक को स्वीकार करना॥

३८—पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तम्।
अपां तरङ्गेष्विव तैलबिन्दुम्।
सोढुं न तत् पूर्व्वमवर्णमीशे।
आलानिकं स्थाणुमिव द्विपेन्द्रः॥
३९—तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तौ।
उपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः।
त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्।
समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव॥
४०—अवैमि चैनामनघेति किन्तु।
लोकापवादो बलवान् मतो मे।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वे।
नारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः॥
४१—रक्षोवधान्तो न च मे प्रयासः।
व्यर्थः स वैरप्रतिमोचनाय।
अमर्षणः शोणितकांक्षया किं।
पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः॥
४२—तदेष सर्गः करुणार्द्रचित्तैः।
न मे भवद्भिः प्रतिषेधनीयः।
यद्यर्थिता निर्हृतवाच्यशल्यान्।
प्राणान् मया धारयितुं चिरं वः॥

३८—"सो पुरवासियों में पानी की लहरों में तेल की नाईं फैले हुए इस प्रथम अपवाद के सहने को मैं समर्थ नहीं हूं, जैसे बंधने के खम्भ को हाथी" ॥

३९—"इसके मिटाने के लिये मैं फल की उत्पत्ति के निकट पहुंची हुई में भी निस्पृही होकर जनकसुता को त्यागूंगा, जैसे आगे पिता की आज्ञा से पृथ्वी (त्यागी)" ॥

४०—"और 'यह निर्दोष है' ऐसा मैं जानता हूं परन्तु मेरे मत में लोकापवाद प्रबल है; पृथ्वी की छाया ही को प्रजा ने निर्मल चन्द्रमा का कलङ्क ठहराया है" ॥

४१—"और राक्षस वध पर्यन्त मेरा परिश्रम व्यर्थ न था, वह बैर लेने के लिये था; क्या पैरसे छूनेवाले को कोपित सांप लोहू की आकांक्षा से डसता है" ॥

४२—"इसलिये जो अपवाद के बाण से छिदे हुए प्राणों को मुझसे कुछ दिन रखाया चाहते हो तौ मेरा यह निश्चय तुम करुणा चित्तवालों के बरजने योग्य नहीं है" ॥

---

३९ फलकी उत्पत्ति के निकट पहुंची हुई अर्थात् गर्भवती ॥

४३—इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां।
नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम्।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तः।
निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा॥

४४—स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्व्वजन्मा।
विलोक्य लोकत्रयगीतकीर्त्तिः।
सौम्येति चाभाष्य यथार्थभाषी।
स्थितं निदेशे पृथगादिदेश॥

४५—प्रजावती दोहदशंसिनी ते।
तपोवनेषु स्पृहयालुरेव।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां।
प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम्॥

४६—स शुश्रुवान् मातरि भार्गवेण।
पितुर्नियोगात् प्रहृतं विषद्वत्।
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तत्।
आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया॥

४७—अथानुकूलश्रवणप्रतीताम्।
अत्रस्नुभिर्युक्तधुरं तुरङ्गैः।
रथं सुमन्त्रप्रतिपन्नरश्मिम्।
आरोप्य वैदेहसुतां प्रपस्थे॥

४३—ऐसे कहते हुए स्वामी को, जानकी में अत्यन्त कठोरता ठाने हुए को, बरजने अथवा प्रवृत्त करने के लिये उन भाइयों में कोई समर्थ न हुआ ॥

४४—उस तीन लोक में गाई हुई कीर्त्तिवाले ने, लक्ष्मण के बड़े भाई ने, यथार्थ वक्ता ने, आज्ञाकारी लक्ष्मण को देखकर और हे सौम्य ऐसा कहकर एकान्त में आज्ञा दी ॥

४५—"तेरीगर्भवती भावज निश्चय तपोवनों में चाह रखती है सो उस मिस से इस लेजाने योग्य को तू रथ में लेकर बाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आ" ॥

४६—पिता की आज्ञा से माता को बैरी की नाईं परसराम का मारना सुने हुए उस (लक्ष्मण) ने जेठे भाई की वह आज्ञा अंगीकार की, क्योंकि बड़ों की आज्ञा सोच विचार के योग्य नहीं होती ॥

४७—तब मन चाही बात के सुन्ने से सन्तोषवती जानकी को विना भड़कनेवाले घोड़े जुते हुए रथ पर, सुमन्त के रास पकड़े हुए पर, चढ़ाकर (लक्ष्मण) सिधारा ॥

---

५४ गर्भवती की चाह पूरी करने से पुत्र होता है इस मिस से सीता को बन में छोड़ना उचित है ॥

४८—सा नीयमाना रुचिरान् प्रदेशान्।
प्रियङ्करो मे प्रिय इत्यनन्दत्।
नाबुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय।
जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम्॥

४९—जुगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्।
सव्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा।
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखम्।
अत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन॥

५०—सा दुर्निमित्तोपगताद् विषादात्।
सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा।
राज्ञः शिवं सावरजस्य भूयात्।
इत्याशशंसे करणैरबाह्यैः॥

५१—गुरोर्नियोगाद् वनितां वनान्ते।
साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन्।
अवार्य्यतेवोत्थितवीचिहस्तैः।
जह्नोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात्॥

५२—रथात् स यन्त्रा निगृहीतवाहात्।
तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य्य।
गंगां निषादाहृतनौविशेषः।
ततार सन्धामिव सत्यसन्धः॥

४८—मनोहर स्थानों में पहुंचाई हुई सीता ने "मेरा पति मेरा मनोरथ पूरा करनेवाला है" इस प्रकार आनन्द माना, उसको अपने में कल्पवृक्षपन छोड़ कर असि-पत्रपन लिया हुआ न जाना॥

४९—जिस होनहार भारी दुःख को मार्ग में उस्से लक्ष्मण ने छुपाया सो उसको फड़कती हुई दाहनी आंख ने, बहुत काल के लिये प्यारे का दर्शन खोई हुई ने, जता दिया॥

५०—बुरे शकुन के सोच से उस तुरन्त कुम्हलाएहुए मुखार-बिन्दवाली ने "भाइयों सहित राजा को कुशल हो" ऐसे अन्तःकरण से असीस दी॥

५१—बड़े की आज्ञा से सुशीला स्त्री को वन के बीच में छो-ड़ते हुए लक्ष्मण से आगे बहती हुई गंगा ने मानो तरंग रूपी बांह उठाकर निषेध किया॥

५२—सारथी के रोके हुये घोड़ोंवाले रथ से उस भावज को तट पर उतार कर केवट की लाई हुई नाव से वह सच्ची प्रतिज्ञावाला गंगा को उतर गया, जैसे अपनी प्रतिज्ञा को॥

---

४८ असिपत्र नाम एक वृक्ष का है जिसके पत्ते खड्गके आकार होते हैं॥

५१ मानों गंगा ने लक्ष्मण को कहा कि तू सीता को बन में छोड़ता है यह अनुचित है॥

५३—अथ व्यवस्थापितवाक् कथञ्चित्।
सौमित्रिरन्तर्गतवाष्पकण्ठः।
औत्पातिकं मेघ इवाश्मवर्षं।
महीपतेः शासनमुज्जगार॥

५४—ततोऽभिषंगानिलविप्रविद्धा।
प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना।
स्वमूर्त्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं।
लतेव सीता सहसा जगाम॥

५५—इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां।
त्यजेदकस्मात् पतिरार्य्यवृत्तः।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै।
ददौ प्रवेशं जननी न तावत्॥

५६—सालुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं।
प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धः।
मोहादभूत कष्टतर प्रबोधः॥

५७—न चावदद्भर्त्तुरवर्णमार्या।
निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि।
आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजं।
पुनः पुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द॥

५८—आश्वास्य रामावरजः सतीं ताम्।
आख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः।
निघ्नस्य मे भर्त्तुनिदेशरौक्ष्यं।
देवि क्षमस्वेति बभूव नम्रः।

५३—फिर जैसे तैसे वाणी संभालकर आंसुओंसे कण्ठ भरेहुए लक्ष्मण ने राजा का आदेश उगला, मानो बादल ने उत्पात की पाषाण वर्षा ॥

५४—तब तिरस्कार रूपी लू की मारी, गिरते हुए गहने रूपी फूलोंवाली लता, की नाईं सीता अपनी जननी भूमि पर तुरन्त गिरी ॥

५५—"इक्ष्वाकुवंशी शुद्ध आचरणी पति ने तुझे अकस्मात् क्यों छोड़ा," मानो इस प्रकार शंका करती हुई धरती माता ने उसे उसी समय प्रवेश न दिया (अर्थात् धरती ने समाने को ठौर न दिया) ॥

५६—मूर्छित रहते हुए उसने दुःख न जाना फिर चैतन्य होकर अन्तःकरण में जली; सुमित्रा सुत के उपायसे पाई हुई चेतना उसको मूर्च्छा से अधिक दुःखदायी हुई ॥

५७—और बिना अपराध भी न्यारी करने के इच्छामान पति को सुशीलाने कुबचन न कहा, बारम्बार सदा के दुखिया अपने दुष्कृती आपे की निन्दा की ॥

५८—राम के छोटे भाई ने बाल्मीकि के आश्रम का मार्ग बतलानेवाले ने उस सती को ढाढस देकर "हे देवी स्वामी की आज्ञा से किया हुआ मुझ पराधीन का कठोरपन क्षमा करना" ऐसे कह कर सीस नवाया ॥

५९–सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं।
प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव।
बिडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन।
भ्रात्रा यदित्थं परवानसित्वम्॥

६०–श्वश्रूजनं सर्व्वमनुक्रमेण।
विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः।
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं।
सूनोरनुध्यायत चेतसेति॥

६१–वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा।
वह्नौ विशुद्धामपि यत् समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः।
श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य॥

६२–कल्याणबुद्धेरथवा तवायं।
न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां।
विपाकविस्फूर्ज्जथुरप्रसह्यः॥

६३–उपस्थितां पूर्व्वमपास्य लक्ष्मीं।
वनं मया सार्द्धमसि प्रपन्नः।
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोषात्।
सोढ़ास्मि न त्वद्भवने वसन्ती॥

६४–निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां।
तपस्विनीनां भवतः प्रसादात्।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं।
कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने॥

५९—सीता ने उसे उठाकर वचन कहा "हे सौम्य मैं तुझसे प्रसन्नहूं तू चिरंजीव रह" क्योंकि जैसे विष्णु इन्द्र का ऐसे तू जेठे भाई का आधीन है ॥

६०—"सब सासुओं को क्रम से मेरा प्रणाम पहुंचा कर 'तुम्हारे पुत्र का गर्भ मुझ में वर्त्तमान है इसकी कुशल हृदय से मनाओ" यह कहना" ॥

६१—"उस राजा से मेरा कहा हुआ कहना कि, आंख के सामने भी मुझ अग्नि में शुद्ध हुई को लोक अपवाद सुन कर त्यागा क्या यह प्रसिद्ध कुल के योग्य है" ॥

६२—"और मुझमें तुम अच्छी बुद्धिवालेका यह (त्याग) मन से होना शङ्का के योग्य नहीं है 'मेरेही जन्मान्तर के पापों के फल का प्रबल उदय है" ॥

६३—"'पाई हुई लक्ष्मी को त्यागकर आगे तुम मेरे साथ वन में रहे थे इसलिये तुम्हारे घर में मुझ प्रतिष्ठा सहित बसती हुई को वह अति क्रोध के कारण न सहसकी"॥

६४—"'निशाचरों के सताये हुए पतियोंवाली तपस्विनियों को तुम्हारे प्रताप से शरण की दाता होकर (अब) मैं तुम्हारे होते हुए औरके शरण कैसे जाऊंगी" ॥

६५—किंवा तवात्यन्तवियोगमोघे।
कुर्य्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन्।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजः।
त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः॥

६६—साहं तपः सूर्य्य निविष्टदृष्टिः।
ऊर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि।
त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः॥

६७—नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्।
स एव धर्म्मो मनुना प्रणीतः।
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं।
तपस्विसामान्यमवेक्षणीया॥

६८—तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं।
रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभारात्।
चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः॥

६९—नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षाः।
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावम्।
अत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥

६५—"'अथवा इस तुच्छ जीतब में तुम्हारे वियोग के कारण निकम्मे में, निस्सन्देह चाह छोड़ देती कदाचित् कुक्षा में रक्खा हुआ रक्षा के योग्य तुम्हारा गर्भ मुझ को विघ्न न होता'" ॥

६६—"'सो मैं बालक जनने से पीछे सूरज में दीठि लगाकर ऐसा तप करूंगी जिससे फिर जन्मान्तर में भी तुमही मेरे भर्ता हो और वियोग न हो'" ॥

६७—"'वर्णाश्रमों की जो रक्षा है सोई मनु ने राजा का धर्म कहा है इसलिये तुम्हारी इस भांति निकाली हुई भी मैं तपस्वियों की नाईं तुम्हारे दृष्टि रखने योग्य हूं'" ॥

६८—"ऐसाही होगा" इस भांति उसकी बात ग्रहण करके दृष्टि से बाहर लक्ष्मण के जाने पर वह अति दुःख से कण्ठ खोलकर डरीहुई कुररी (कुञ्ज) की नाईं बहुत रोई ॥

६९—मोरोंने नाच छोड़ा वृक्षोंने फूल छोड़े हरिणियों ने मुँहमें ली हुई घास छोड़ी, उसके समान दुःखीपन को पहुंचे हुये वन में भी अत्यन्त रोना पड़ा ॥

---

६५ जीतब में चाह छोड़ना अर्थात् मरने से न डरना ॥

७०—तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी।
कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः।
श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।

७१—तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य।
सीता विलापाद्विरता ववन्दे।
तस्यै मुनिर्दोहदलिङ्गदर्शी।
दाश्वान् सुपुत्राशिषमित्युवाच॥

७२—जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां।
मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा।
तन्माव्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं।
प्राप्तासि वैदेहि पितुर्निकेतम्॥

७३—उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि।
सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वांप्रत्यकस्मात् कलुषप्रवृत्तौ।
अस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे॥

७४—तवोरुकीर्त्तिः श्वशुरः सखा मे।
सतां भवोच्छेदकरः पिता ते।
धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां।
किन्तन्न येनासि ममानुकम्प्या॥

७०—कुशा और ईंधन लाने के लिये जाता हुआ रोने की ओर चलता हुआ कवि (बाल्मीकि) उसके पास जा पहुँचा, जिस का शोक बहेलिये का बेधा हुआ पक्षी देखने से उत्पन्न होकर श्लोकता को गया था॥

७१—आंखों का रोकनेवाला आँसू पोंछकर विलाप त्यागी हुई सीता ने उसको वन्दना की; गर्भ के चिह्न जानने वाले मुनि ने उसको "सपूती हो" यह असीस देकर कहा॥

७२—"मैंने ध्यान करके जान लिया तू मिथ्या अपवाद से कोपे हुए पति की त्यागी है; हे वैदेहि! तू पिताही के दूसरे घर में आई है इसलिये सोच मत कर"॥

७३—"तीन लोकके कंटक मिटानेवाले पर भी, सत्य प्रतिज्ञाई पर भी, अपनी बड़ाई न करनेवाले पर भी, विना बात तेरे साथ अनर्थ करनेवाले राम पर भी, मेरा क्रोधही है"॥

७४—"तेरा बड़ा कीर्त्तिमान् ससुर मेरा मित्र था, तेरा पिता पण्डितों का आवागमन मिटानेवाला है, तू पतिव्रताओं में मुख्य है, फिर जिससे तू मेरी दया के योग्य न हो सो क्या है"॥

---

७० बाल्मीकि का आदि श्लोक यह है "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्"॥

७५–तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे।
तपोवने वीतभया वसास्मिन्।
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेः।
अपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते॥

७६–अशून्यतीरां मुनिसन्निवेशैः।
तमोऽपहन्त्रीं तमसां वगाह्य।
तत्सैकतोत्सङ्गबलिक्रियाभिः।
सम्पत्स्यते ते मनसः प्रसादः॥

७७–पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यः।
बीजञ्च बालेयमकृष्टरोहि।
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषङ्गाम्।
उदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम्॥

७८–पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्।
संवर्द्धयन्ती स्वबलानुरूपैः।
असंशयं प्राक् तनयोपपत्तेः।
स्तनन्धयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्॥

७९–अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां।
बाल्मीकिरादाय दयार्द्रचेताः।
सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वं।
स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय॥

७५—"तपस्वियों के सत्संग से सुशीलता सीखे हुए जीवों वाले इस तपोवन में तू निधड़क रह, यहां तुझ सुख पूर्वक जन्नेवाली की सन्तान के जातकर्म होंगे" ॥

७६—"तपस्वियों की कुटियों से भरे हुए तीरवाली में, पापों (अथवा शोकों) की हरनेवाली तमसा में स्नान करके उसके तटों पर पूजन करने से तेरेमंन को प्रसन्नता होगी" ॥

७७—"ऋतु के फूल फल और विना बोए उपजे हुए पूजा के अन्न लाती हुई अच्छा बोलनेवाली मुनिकन्या तुझ नए दुःखवाली को आनन्द देंगी" ॥

७८—"अपने बल के अनुसार पानी के घड़ों से आश्रम के पौधों को सींचती हुई तू निश्चय सन्तान की प्राप्ति से पहले ही अञ्चल पीनेवाले का प्रेम जानेगी" ॥

७९—उस दया सराहती हुई को दयावान् बालमीकि ने ले जाकर सांझ समय अपने आश्रम में बैठे हुए हरिणों से घिरी हुई वेदीवाले में, शान्त पशुओंवाले में, पहुंचाया ॥

---

७८ अञ्चल पीनेवाला अर्थात् पुत्र ॥

८०–तामर्पयामास च शोकदीनां।
तदागमप्रीतिषु तापसीषु।
निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोः।
अन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु॥
८१–ता इंगुदीस्नेहकृतप्रदीपम्।
आस्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः।
तस्यै सपर्य्यानुपदं दिनान्ते।
निवासहेतोरुटजं वितेरुः॥
८२–तत्राभिषेकप्रयता वसन्ती।
प्रयुक्तपूजा विधिनातिथिभ्यः।
वन्येन सा वल्कलिनी शरीरं।
पत्युः प्रजासन्ततये बभार॥
८३–अपिप्रभुः सानुशयोऽधुना स्यात्।
किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता।
शशंस सीता परिदेवनान्तम्।
अनुष्ठितं शासनमग्रजाय॥
८४–बभूव रामः सहसा सवाष्पः।
तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता।
न तेन वैदेहसुता मनस्तः॥
८५–निगृह्यशोकं स्वयमेव धीमान्।
वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः।
सभ्रातृसाधारणभोगमृद्धं।
राज्यं रजोरिक्तमना: शशास॥

८०—और उस शोक की सताई हुई को उसीके आने से हर्षित तपस्वियों में सौंपा जैसे अमावस ने पितरों की सार खैंचीहुई पिछली चन्द्रकला को ओषधियों में ॥

८१—उन्हों ने हिंगोट के तेलसे उजालीहुई, भीतर पवित्र मृगचर्म्म के बिछौनेवाली कुटी, उसको रहने के लिये दिनके अन्त पर सन्ध्या पूजन से पीछे दी ॥

८२—वहां स्नान के नियम से उस बसती हुई ने, छाल के वस्त्र ओढ़ती हुई ने, शास्त्रअनुसार अतिथों का सत्कार करती हुई ने, पति का वंश रखने के लिये वन की वस्तुओं (कन्द मूलों) से शरीर पाला ॥

८३—"स्वामी को कहीं अबभी पछतावा आवे" इसबातका उत्साही इन्द्रजीत के मारनेवाले ने भी उसकी आज्ञा पूरी करने का वृत्तान्त सीता के विलाप तक बड़े भाई से कहा ॥

८४- राम तुरन्त आंसुओं सहितहुआ (अर्थात् रोया) मानो ओसबरसानेवाला पूस का चन्द्रमा, (क्योंकि) उस अपवाद से डरे हुए ने जानकी घर से निकाली थी मनसे नहीं ॥

८५—शोक को आपही रोककर उस धीमान् ने, वर्ण आश्रम की चौकसी में जागते हुए ने, रजोगुण रहित मनवाले ने, ऋद्धिमान् राज्य को भाइयों सहित भोगते हुए मर्यादा में रक्खा ॥

८६–तामेकभार्य्यां परिवादभीरोः।
साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य।
वक्षस्यसङ्घट्टसुखं वसन्ती।
रेजे सपत्नीरहितेव लक्ष्मीः॥

८७–सीतां हित्वा दशमुखरिपोर्नोपयेमे यदन्यां।
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत् क्रतूनाजहार।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्त्तुः।
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे।

इति श्रीरघुवंशे चतुर्दशःसर्गःसमाप्तः॥

८६—अपवाद से डरकर उस अकेली सुशीलापत्नी के भी त्यागनेवाले राजा की गोद में अतिसुख से बसती हुई दीप्तिमान हुई, मानो विना सौतवाली ॥

८७—जो कि सीताको त्याग कर रावण के वैरी ने और (स्त्री) न ब्याही और उसी की प्रतिमा का साथी बनकर यज्ञ किए, कानों में पहुंचे हुए पति के इस वृत्तांत से उसने परित्याग का कठिन दुःख जैसे तैसे सहा ॥

चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ

पञ्चदशः सर्गः ॥

रामस्य स्वर्गारोहणम् ॥

१ — कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम् ।
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम् ॥
२ — लवणेन विलुप्तेज्याः तामिस्रेण तमभ्ययुः ।
मुनयो यमुनाभाजः शरण्यं शरणार्थिनः ॥
३ — अवेक्ष्य रामं ते तस्मिन् न प्रजह्रुः स्वतेजसा ।
त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्व्वन्ति तपसो व्ययम् ॥

४ — प्रतिशुश्राव काकुत्स्थः तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् ।
धर्म्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः ॥

५ — ते रामाय वधोपायम् आचख्युर्विबुधद्विषः ।
दुर्जयो लवणः शूली विशूलःप्रार्थ्यतामिति ॥

६ — आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः ।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥

---

५ प्रार्थ्यताम् = अभिगम्यताम् ॥

पन्द्रहवां सर्ग

राम का स्वर्ग जाना ॥

१—सीता को त्याग कर उस पृथ्वीपालक ने केवल रत्नाकर समुद्ररूपी तागड़ीवाली पृथ्वी कोही भोगा ॥

२—लवण निशाचर के यज्ञ मिटाए हुए यमुनावासी मुनि उस शरण देनेवाले के पास शरण मांगते हुए पहुंचे ॥

३—राम को विद्यमान देखकर उन्हों ने उस (राक्षस) में अपने तेज से प्रहार न किया रखवाले के न होनेही पर शाप के बली तप का व्यय करते हैं ॥

४—काकुत्स्थ ने उनसे विघ्न मिटाने की प्रतिज्ञा की ॥ धर्म की रक्षाही के निमित्त धनुषधारी (विष्णु) का औतार पृथ्वी पर होता है ॥

५—"शूल सहित लवण अजित है विना शूल हो तब उसपर प्रहार करो" इस प्रकार उन्हों ने देवताओं के वैरी के मारने का उपाय राम को बतलाया ॥

६—तब उनकी रक्षा के लिये राघव ने शत्रुघ्न को आज्ञा दी, मानो शत्रु मारने से उसका नाम यथार्थ करने के लिये ॥

---

५ लवण को वरदान था कि जब तक हाथ में शूल रहेगा किसी से मारा न जायगा ॥

७—यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परन्तपः।
अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः॥
८—अग्रजेन प्रयुक्ताशीः ततो दाशरथी रथी।
ययौ वनस्थलीः पश्यन् पुष्पिताः सुरभीरभीः॥

९—रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थसिद्धये।
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत्॥

१०—आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः स गच्छंस्तपतां वरः।
विरराज रथप्रष्ठैः वालखिल्यैरिवांशुमान्॥

११—तस्य मार्गवशादेका बभूव वसतिर्यतः।
रथस्वनोत्कण्ठमृगे वाल्मीये तपोवने॥

१२—तमृषिः पूजयामास कुमारं क्लान्तवाहनम्।
तपःप्रभावसिद्धाभिः विशेषप्रतिपत्तिभिः॥

---

११ वसतिः = रात्रिः॥

७—रघुवंशियों में कोई हो वैरियों के नाश को अकेला ही समर्थ होता है, जैसे उत्सर्ग को अपवाद ॥

८—तब जेठे भाई का असीस दिया हुआ निडर दशरथ कुमार रथी होकर सुगन्धित फूलोंवाले वनों को देखता हुआ गया ॥

९—राम की आज्ञा से पीछे चलती हुई सेना उसका प्रयोजन साधने में अध्ययनार्थक धातु के पीछे अधिकी नाईं हुई ॥

१०—रथ के आगे चलतेहुए मुनियों का मार्ग दिखलाया हुआ वह तेजस्वियों का मुखिया चलने में शोभायमान हुआ, जैसे वालखिल्यों का (मार्ग दिखलाया हुआ) सूरज ॥

११—मार्ग वश से उस जाते हुए का एक रात ठैरना वाल्मीकि के तपोवन में, रथ की ध्वनि से मुख उठाए हुए मृगोंवाले में, हुआ ॥

१२—ऋषि ने उस वाहनथकेहुए कुमार को तपस्या के प्रभाव से प्राप्त होनेवाली उत्तम सामग्रियों से सत्कार किया ॥

---

७ व्याकरण में साधारण नियम को उत्सर्ग कहते हैं और जब वह नियम किसी आदेश से टूटता है तो तोड़नेवाला आदेश अपवाद कहलाताहै ॥

९ इङ् धातु का अर्थ आपही अध्ययन अर्थात् पढ़नाहै उसके साथ अधि उपसर्ग मिलाने से कुछ प्रयोजन नहीं निकलता परन्तु फिर भी अवश्य मिलायाही जाताहै ऐसेही यद्यपि शत्रुघ्न के साथ सेनाके जाने से कुछ प्रयोजन न था फिरभी रामने सेना साथ भेजी ॥

१३–तस्यामेवास्य यामिन्याम् अन्तर्वत्नी प्रजावती।
सुतावसूत सम्पन्नौ कोशदण्डाविव क्षितिः॥
१४–सन्तानश्रवणाद्भ्रातुः सौमित्रिः सौमनस्यवान्।
प्राञ्जलिर्मुनिमामन्त्र्य प्रातर्युक्तरथो ययौ॥

१५–स च प्राप मधूपघ्नं कुम्भीनस्याश्च कुक्षिजः।
वनात् करमिवादाय सत्त्वराशिमुपस्थितः॥

१६–धूमधूम्रो वसागन्धी ज्वालाबभ्रुशिरोरुहः।
क्रव्याद्गणपरीवारश्चिताग्निरिव जङ्गमः॥

१७–अपशूलं तमासाद्य लवणं लक्ष्मणानुजः।
रुरोध संमुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम्॥

१८–नातिपर्याप्तमालक्ष्य मत्कुक्षेरद्य भोजनम्।
दिष्ट्या त्वमसि मे धात्रा भीतेनेवोपपादितः॥
१९–इति सन्तर्ज्य शत्रुघ्नं राक्षसस्तज्जिघांसया।
प्रांशुमुत्पाटयामास मुस्तास्तम्बमिव द्रुमम्॥

२१–सौमित्रेर्निशितैर्बाणैः अन्तरा शकलीकृतः।
गात्रं पुष्परजः प्राप न शाखी नैर्ऋतेरितः॥

१३—उसी रात में उसकी गर्भवती भावजने पूरे दिनों दो पुत्र जने, जैसे पृथ्वी ने कोश और दण्ड ॥

१४—भाई की सन्तान सुनने से हर्षवान् सुमित्रासुत सबेरे हाथ जोड़कर मुनि की आज्ञा लेता हुआ रथ जोत चल दिया ॥

१५—वह मधुपघ्न (नाम नगर) में पहुंचा और कुम्भीनसी का बेटा वनसे पशुओं का समूह भेट की नाईं लिये हुए आता मिलगया, ॥

१६—धुएं के समान धुंधले रंगवाला, बसकी गन्धिवाला ज्वाला समान लाल केशोंवाला मांसाहारियों से घिरा हुआ, मानो चिता की चलती हुई अग्नि ॥

१७—शूल रहित पाकर उस लवण को लक्ष्मण के छोटे भाई ने रोका; रन्ध्रप्रहारियों को जीत सन्मुख ही रहती है ॥

१८—"मेरे पेट को आज थोड़ा भोजन देखकर मानो डरेहुए विधाता ने मेरे भाग्य से तुझे भेजा है" ॥

१९—इस प्रकार शत्रुघ्न को भय दिखाकर राक्षस ने उसके मारने के लिये बड़ा पेड़ मोथे के तिनके की नाईं उखाड़ा ॥

२०—शत्रुघ्न के पैने बाणों से बीचही में कटकर राक्षस का फेंका हुआ पेड़ (उसके) शरीर तक न पहुंचा फूलों की रज (पहुंची) ॥

---

१५ रावण की बहन कुम्भीनसी का बेटा लवणासुर था ॥

१७ रन्ध्रप्रहारी = दुर्बल ठौरपर मारनेवाला ॥

२१—विनाशात् तस्य वृक्षस्य रक्षस्तस्मै महोपलम्।
प्रजिघाय कृतान्तस्य मुष्टिं पृथगिव स्थितम्॥
२२—ऐन्द्रमस्त्रमुपादाय शत्रुघ्नेन स ताडितः।
सिकतात्वादपि परां प्रपेदे परमाणुताम्॥
२३—तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षिणं दोर्निशाचरः।
एकताल इवोत्पात पवनप्रेरितो गिरिः॥

२४—कार्ष्णेन पत्रिणा शत्रुः स भिन्नहृदयः पतन्।
आनिनाय भुवः कम्पं जहाराश्रमवासिनाम्॥

२५—वयसा पङ्क्तयः पेतुः हतस्योपरि विद्विषः।
तत्प्रतिद्वन्द्विनो मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमवृष्टयः॥
२६—स हत्वा लवणं वीरः तदा मेने महौजसः।
भ्रातुः सोदर्य्यमात्मानम् इन्द्रजिद्वधशोभिनः॥

२७—तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः।
शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीडयावनतं शिरः॥

२८—उपकूलं स कालिन्द्याः पुरीं पौरुषभूषणः।
निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मथुरां मधुराकृतिः॥

२१–उस वृक्षके टूटने से राक्षस ने उस पर बड़ा पत्थर फेंका, मानो यम की अलग की हुई मुट्ठी ॥

२२–शत्रुघ्न ने इन्द्र का अस्त्र उठाकर उसपर मारा (वह पत्थर) रेतपन से भी परे परमाणुपन को पहुंचा ॥

२३–दाहिनी भुजा उठाकर राक्षस उसपर दौड़ा, मानो उत्पात की पवनका फेंका हुआ अकेले ताड़वृक्ष वाला पहाड़ ॥

२४–कृष्ण के बाण से छिदे हुए हृदयवाले उस वैरीने गिरते हुए पृथ्वी का कम्प उपजाया आश्रमवासियों का मिटाया ॥

२५–मरे हुए राक्षस के ऊपर पक्षियों की पंक्ति गिरी (और) उसके वैरी के शीश पर फूलों की दिव्य वर्षा ॥

२६–उस वीर ने लवण को मारकर अपने को इन्द्रजीत के मारने से शोभा पानेवाले महातेजस्वी भाई का सहोदर माना ॥

२७–कृतार्थी तपस्वियों के उस सराहेहुए का शिर, प्रताप से उठा हुआ, नम्रता से झुका हुआ, शोभा को पहुंचा ॥

२८–कालिन्दी के तटपर उस पुरुषार्थरूपी भूषणवाले ने, विषयों में चाह न रखनेवाले ने, सौम्य रूप ने, मथुरा पुरी बसाई, ॥

---

२२ परमाणु = धूल का अत्यन्त छोटा टुकड़ा ॥

२३ राक्षस का शरीर था सोई मानो पहाड़ था उसने भुजा उठाई थी सोई ताड़का वृक्ष था ॥

२९—या सौराज्यप्रकाशाभिः बभौ पौरविभूतिभिः।
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशिता॥

३०—तत्र सौधगतः पश्यन् यमुनां चक्रवाकिनीम्।
हेमभक्तिमतीं भूमेः प्रवेणीमिव पिप्रिये॥

३१—सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत्।
सञ्चस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि॥

३२—स तौ कुशलवोन्मृष्ट-गर्भक्लेदौ तदाख्यया।
कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः॥

३३—साङ्गञ्च वेदमध्याप्य किञ्चिदुत्क्रान्तशैशवौ।
स्वकृतिं गापयामास कविः प्रथमपद्धतिम्॥

३४—रामस्य मधुरं वृत्तं गायन्तौ मातुरग्रतः।
तद्वियोगव्यथां किञ्चित् शिथिलीचक्रतुः सुतौ॥

२९—जो अच्छे राज्य के कारण पुरवासियों की प्रकाशवान विभूतियों से सुशोभित दिखलाई दी, मानो स्वर्ग में न समानेवाले मनुष्य लाकर बसाई हुई ॥

३०—वहां मन्दिर में बैठे हुएने चक्रवाकिनी यमुना को पृथ्वी की सुवर्णजटित वेणी की नाईं देखकर आनन्द माना ॥

३१—दशरथ के और जनक के सखा मुनि ने भी दोनों की प्रीति से जानकी के पुत्रों का संस्कार विधिपूर्वक किया ॥

३२—कहते हैं कि उस कवि ने कुशाओं से और लवों से (अर्थात् दाभों और गऊ की पूंछ के बालों से) गर्भ की पीड़ा मिटे हुए उन दोनों को उन्हीं के नाम से कुश और लव नाम किया ॥

३३—और बालपन से कुछ निकले हुओं को अङ्गों सहित वेद पढ़ा कर अपनी रची हुई कविता, कवियों की पहली सीढ़ी उनसे गवाई ॥

३४—माता के आगे राम का वृत्तान्त मीठे स्वर से गाकर दोनों बेटों ने उसकी विरहव्यथा कुछ घटाई ॥

---

३० श्यामवर्ण यमुना है सोई मानो पृथ्वीरूपी नायिका की वेनी है और उसके तटपर चकवा चकवी हैं सोई सोने के वेनीबन्द हैं ॥

३३ अङ्गों सहित वेद अर्थात् वेद और वेदाङ्ग ॥

३५—इतरेऽपि रघोर्वंश्याः त्रयस्त्रेताग्नितेजसः।
तद्योगात् पतिवत्नीषु पत्नीष्वासन् द्विसूनवः॥

३६—शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः सुबाहौ च बहुश्रुते।
मथुराविदिशे सून्वोः निदधे पूर्वजोत्सुकः॥

३७—भूयस्तपोव्ययो माभूत् वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात्।
मैथिलीतनयोद्गीत-निःस्पन्दमृगमाश्रमम्॥

३८—वशी विवेश चायोध्यां रथ्यासंस्कारशोभिनीम्।
लवणस्य वधात् पौरैः ईक्षितोऽत्यन्तगौरवम्॥

३९—स ददर्श सभामध्ये सभासद्भिरुपस्थितम्।
रामं सीतापरित्यागात् असामान्यपतिं भुवः॥

४०—तमभ्यनन्दत् प्रणतं लवणान्तकमग्रजः।
कालनेमिवधात् प्रीतः तुराषाडिव शार्ङ्गिणम्॥

३५—तीन अग्नियों के तेज समान और भी तीनों रघुवंशी अपने अपने संयोग से गर्भवतीस्त्रियों में दो दो पुत्र वाले हुए ॥

३६—बड़े भाई में उत्साह रखनेवाले शत्रुघ्न ने शत्रुघाती और सुबाहु दो बहुश्रुत पुत्रों को मथुरा और विदिशा सौंपी ॥

३७—"वाल्मीकि के तप में फिर हानि न हो" इसलिये सीता के बेटों का गाना सुनने में ध्यान लगाए हुए हरिणों वाले आश्रम को वह छोड़ गया ॥

३८—और (उस) बली ने, लवणवध के कारण पुरवासियों के अत्यन्त गौरव से देखेहुए ने, मार्ग रचनाओं से शोभायमान अयोध्या में प्रवेश किया ॥

३९—उसने सभा के बीच सभासदों सहित बैठा हुआ, सीता के त्याग से पृथ्वी का अनोखास्वामी, राम देखा ॥

४०—जेठे भाई ने उस लवण के मारनेवाले को, प्रणाम करते हुए को, सराहा, जैसे कालनेमि के वधसे प्रसन्न होकर इन्द्रने विष्णुको ॥

---

३५ भरत और लक्ष्मण और शत्रुघ्न के भी दो दो पुत्र हुए ॥
३६ बहुश्रुत = जिसने बहुत शास्त्र सुना हो अथवा पढ़ा हो ॥

४१—स पृष्टः सर्व्वतो वार्त्तम् आख्यद्राज्ञेन सन्ततिम्।
प्रत्यर्पयिष्यतः काले कुबेराद्यस्य शासनात्॥

४२—अथजानपदो विप्रः शिशुमप्राप्तयौवनम्।
अवताय्र्याङ्कशय्यास्थं द्वारि चक्रन्द भूपतेः॥

४३—शोचनीयासि वसुधे या त्वं दशरथाच्च्युता।
रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात् कष्टतरं गता॥

४४—श्रुत्वा तस्य शुचो हेतुं गोप्ता जिह्राय राघवः।
नह्यकालभवो मृत्युः इक्ष्वाकुपदमस्पृशत्॥

४५—समुहूर्त्तं क्षमस्वेति द्विजमाश्वास्य दुःखितम्।
यानं सस्मार कौबेरं वैवस्वतजिगीषया॥

४६—आत्तशस्त्रस्तदध्यास्य प्रस्थितः सरघूद्वहः।
उच्चचार पुरस्तस्य गूढरूपा सरस्वती॥

४१—उस पूछे हुए ने राजा से सब वार्त्ता कही (परन्तु) किसी समय आपही अर्पण करने के इच्छावान् आदि कवि की आज्ञा से सन्तान का (वृत्तान्त) न कहा ॥

४२—तिसपीछे कोई ग्रामीणब्राह्मण यौवनअवस्था को न पहुँचा हुआ बालकको गोद रूपी शय्या में रक्खे हुआ राजा के द्वार पर उतारकर चिल्लाया ॥

४३—"हे पृथ्वी! तू अभागी है जो दशरथ से पीछे राम के हाथों में पहुँचकर अधिक से अधिक कष्टको प्राप्तहुई" ॥

४४—उसके शोक का कारण सुनकर रक्षाकरनेवाला राघव लज्जितहुआ क्योंकि (तबतक) अकाल मृत्यु ने इक्ष्वाकुओं का देश नहीं देखाथा ॥

४५—"थोड़ीदेर क्षमाकरो" ऐसे दुःखी ब्राह्मण को आशा देकर उसने यमके जीतने की इच्छा से कुबेर का विमान (अर्थात् पुष्पक) मँगाया ॥

४६—हथ्यार बांधे हुए उसपर चढ़कर वह रघुवंशियों का नायक चला, उसके सामने गुप्तरूप सरस्वती ने कहा ॥

---

४१ वाल्मीकि ने शत्रुघ्न से कहदिया था कि रामचन्द्र से लवकुश के जन्मका वृत्तान्त मत कहना क्योंकि किसी दिन इन बालकों को मैं आपही राम के अर्पण करूंगा ॥

४६ गुप्तरूप सरस्वती ने कहा अर्थात् आकाशवाणी हुई ॥

४७–राजन् प्रजासु ते कश्चित् अपचारःप्रवर्त्तते ।
तमन्विष्य प्रशमयेः भवितासि ततः कृती ॥
४८–इत्याप्तवचनाद्रामो विनेष्यन् वर्णविक्रियाम् ।
दिशः पपात पत्रेण वेगनिष्कम्पकेतुना ॥

४९–अथ धूमाभिताम्राक्षं वृक्षशाखावलम्बिनम् ।
ददर्श कञ्चिदैक्ष्वाकः तपस्यन्तमधोमुखम् ॥

५०–पृष्टनामान्वयो राज्ञा स किलाचष्ट धूमपः ।
आत्मानं शम्बुकं नाम शूद्रं सुरपदार्थिनम् ॥

५१–तपस्यनधिकारित्वात् प्रजानां तमथावहम् ।
शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियन्ता शस्त्रमाददे ॥

५२–स तद्वक्त्रं हिमक्लिष्ट-किञ्जल्कमिव पङ्कजम् ।
ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु कण्ठनालादपातयत् ॥

५३–कृतदण्डः स्वयं राज्ञा लेभे शूद्रः सतां गतिम् ।
तपसा दुश्चरेणापि न स्वमार्गविलङ्घिना ॥
५४–रघुनाथोऽप्यगस्त्येन मार्गसन्दर्शितात्मना ।
महौजसा संयुयुजे शरत्काल इवेन्दुना ॥

४७—"हे राजा तेरे राज्य में कुछ दुराचार होरहा है उसको खोज कर मिटादे तब तू कृतकृत्य होगा" ॥

४८—इस आप्त बचन (आकाश वाणी) से वर्ण विकार के मिटाने के लिये राम विमान पर, वेग के कारण निश्चल ध्वजावाले पर, दिशाओं को गया ॥

४९—निदान इक्ष्वाकुवंशी ने धुएं से लाल आंखोंवाला, वृक्ष की शाखा से लटकता हुआ, एक अधोमुख तपसी देखा ॥

५०—कहते हैं कि राजा के नाम और वंश पूछे हुए उस धुआं पीनेवालेने अपने को स्वर्ग का आकांक्षी शम्बुक नाम शूद्र बतलाया ॥

५१—तपस्या में अधिकारी न होने के कारण प्रजा में उस दुःख पहुंचानेवाले को सिर काटने के योग्य निश्चय करके राजा ने हथ्यार लिया ॥

५२—आग की चिनगारियों से झुलसी हुई डाढ़ीवाले उसके सिरको, राम ने पाले के मारे केसरोंवाले कमल की नाईं कण्ठरूपी नाल से गिरा दिया ॥

५३—शूद्र ने निज राजा के हाथ से दण्ड पाकर अच्छों की गति पाई, न कि स्वधर्म उल्लंघी कठिन भी तप से ॥

५४—रघुनाथ को भी महा तेजस्वी अगस्त्य मार्ग में आप दर्शन देनेवाला मिला, मानो शरद ऋतु को चन्द्रमा ॥

५५—कुम्भयोनिरलंकारं तस्मै दिव्यपरिग्रहम्।
दद‍ौ दत्तं समुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्क्रयम्॥

५६—तं दधन्मैथिलीकण्ठ—निर्व्यापारेण बाहुना।
पश्चान्निववृते रामः प्राक् परासुर्द्विजात्मजः॥

५७—तस्य पूर्व्वोदितां निन्दां द्विजः पुत्रसमागतः।
स्तुत्या निवर्त्तयामास त्रातुर्वैवस्वतादपि॥

५८—तमध्वराय मुक्ताश्वं रक्षःकपिनरेश्वराः।
मेघाः शस्यमिवाम्भोभिः अभ्यवर्षन्नुपायनैः॥

५९—दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनम् अभिजग्मुर्महर्षयः।
नभौमान्येव धिष्ण्यानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यपि॥

६०—उपशल्यनिविष्टैस्तैः चतुर्द्वारमुखी बभौ।
अयोध्या सृष्टिलोकेव सद्यः पैतामही तनुः॥

५५—अगस्त्य ने उसको देवताओं के ग्रहण करने योग्य गहना, जो उसको समुद्र ने अपने देह के पलटे दिया था, दिया ॥

५६—उसको सीता के कण्ठ व्यापार रहित भुजा में पहन कर राम पीछे लौटा ब्राह्मण का मरा हुआ बालक पहले ॥

५७—पुत्र पाए हुए ब्राह्मण ने उस यम से भी रक्षा करने वाले की पहले कही हुई निन्दा स्तुति से निवारण की ॥

५८—उस यज्ञ के निमित्त घोड़ा छोड़नेवाले पर राक्षसों और बन्दरों और मनुष्यों के स्वामियों ने भेटों की बरसा की, जैसे नाज पर बादलों ने पानी की ॥

५९—और न्योते हुए महर्षी लोग भूमिही के स्थानों को नहीं नक्षत्र रूपी स्थानों को भी छोड़ छोड़कर उसके पास दिशाओं से पहुंचे ॥

६०—उपशल्यों में (अर्थात् नगर के बाहर की भूमियों में) बैठे हुए उन मुनियों से चार द्वाररूपी चारमुखों वाली अजुध्या तुरन्त लोकसृष्टा ब्रह्मा की मूर्ति के समान शोभायमान हुई ॥

---

५५ समुद्र को तीन चुल्लू करके अगस्त्य मुनि पीगया था फिर पेटसे निकाला तब समुद्र ने अपने जीवदान के पलटे अगस्त्य को बड़े मोल का रत्न अर्पण किया ॥

५६ सीता के व्यापार रहित भुजा अर्थात् जिस भुजा को सीता का आलिंगन मिट गया था ॥

५७ पहले जो निन्दा की थी उसके पलटे स्तुति की ॥

५८ राक्षसों का स्वामी विभीषन ॥ बन्दरों का स्वामी सुग्रीव ॥ मनुष्यों के स्वामी राजा लोग ॥

६१--श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्वंशवासिनः।
अनन्यजानेः सैवासीत् यस्माज्जाया हिरण्मयी ॥

६२ विधेरधिकसम्भारः ततः प्रववृते मखः।
आसन् यत्र क्रियाविघ्नाः राक्षसा एव रक्षिणः॥

६३-अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्ततः।
मैथिलेयौ कुशलवौ जगतुः गुरुचोदितौ ॥
६४-वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद् येन मनोहर्तुम् अलं स्यातां न शृण्वताम्॥

६५-रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली ॥

६६-तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातः निर्वातेव वनस्थली ॥

६७-वयोवेशविसंवादि रामस्य च तयोस्तदा।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत ॥

६१—वैदेही का त्याग भी बड़ाई के योग्य हुआ क्योंकि यज्ञ शाला में बसते हुए, बिना दूसरी स्त्री वाले, पति की वही सोने की पत्नी बनी ॥

६२—तिस पीछे जितनी चाहिये उस से अधिक सामग्री वाला यज्ञ हुआ, जिसमें क्रिया बिगाड़नेवाले राक्षस ही रक्षक बने ॥

६३—फिर गुरू के भेजे हुए सीता के लव और कुश बेटों ने वाल्मीकि की रची हुई रामायण जहां तहां गाई ॥

६४—राम का वृत्तांत, वाल्मीकि का कथा हुआ, किन्नरों का सा उनका कंठ, फिर क्या था जिस्से वे सुन्नेवालों का मन मोहने को समर्थ न होते ॥

६५—उनके रूप और गीत की मधुरता, जान्नेवालों की सराही हुई, राम ने प्रसन्न होकर भाइयों समेत देखी और सुनी ॥

६६—उन का गाना सुनकर एकाग्रचित्तवाली अश्रुमुखी सभा शोभायमान दीखी, जैसे ओस टपकती हुई बिना पवन की बनभूमि ॥

६७—बैस और भेष के बिना (और सब भांति) उनकी और राम की साहश्यता देखकर लोग उस समय आंख खोले रह गए (अर्थात् अचम्भे में आगए) ॥

---

६६ अश्रुमुखी = आंसू गिराती हुई ॥

६८–उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्ये न विसिष्मिये।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा॥

६९–गेये को नु विनेता वां कस्य चेयं कृतिः कवेः।
इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम्॥

७०–अथ सावरजो रामः प्राचेतसमुपेयिवान्।
उरीकृत्यात्मनो देहं राज्यमस्मै न्यवेदयत्॥

७१–सतावाख्याय रामाय मैथिलेयौ तदात्मजौ।
कविः कारुणिको वव्रे सीतायाः सम्परिग्रहम्॥

७२–तात शुद्धा समक्षन्नः स्नुषा ते जातवेदसि।
दौरात्म्याद्राक्षसस्तान्तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः॥

७३–ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया॥

७४–इति प्रतिश्रुते राज्ञा जानकीमाश्रमान्मुनिः।
शिष्यैरानाययामास स्वसिद्धिं नियमैरिव॥

७५–अन्येद्युरथ काकुत्स्थः सन्निपात्य पुरौकसः
कविमाह्वाययामास प्रस्तुतप्रतिपत्तये॥

६८—लोग उनकी प्रवीणता से इतने चकित न हुए जितने कि राजा के प्रीतिपूर्वक दिए हुए दान में (उनके) निस्पृहीपन से ॥

६९—"गाने में कौन तुम्हारा गुरुहै और किस कवि की यह रचना है" इस प्रकार आपही राजाके पूछे हुए उन दोनों ने वाल्मीकि बतलाया ॥

७०—तब भाइयों सहित राम ने वाल्मीकि के पास जाकर देह के बिना सब राज्य उसको अर्पण किया ॥

७१—उस दयालु कवि ने राम को वे दोनों सीता सुत उसीके पुत्र बतलाकर सीता ग्रहण करने के लिये कहा ॥

७२—"हे तात तुम्हारी बधू (सीता) हमारे सामने अग्नि में शुद्ध होचुकी है परन्तु राक्षस की दुष्टताके कारण यहां की प्रजा ने उसको विश्वास नहीं किया" ॥

७३—"उनको अपने चरित्र बतला कर जानकी विश्वास करावे तब उस पुत्रवती को तुम्हारी आज्ञा से ग्रहण करूंगा" ॥

७४—राजा के इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर मुनि ने आश्रम से चेलों के द्वारा जानकी बुलवाई जैसे नियमों के द्वारा अपनी अर्थ सिद्धि ॥

७५—तब राम ने दूसरे दिन पुरवासी इकट्ठे करके ऊपर कहे हुए के प्रतिपादन निमित्त कवि को बुलवाया ॥

---

७० अर्थात् शरीर अर्पण न किया और सब कुछ दिया ॥

७६--स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया।
ऋचेवोदर्चिषं सूर्य्यं रामं मुनिरुपस्थितः॥

७७--काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा।
अन्वमीयत शुद्धेति शान्तेन वपुषैव सा॥
७८--जनास्तदालोकपथात् प्रतिसंहृतचक्षुषः।
तस्थुस्तेऽवाङ्मुखाः सर्व्वे फलिता इव शालयः॥
७९--तां दृष्टिविषये भर्तुः मुनिरास्थितविष्टरः।
कुरु निःसंशयं वत्से स्ववृत्ते लोकमित्यशात्॥

८०--अथ वाल्मीकिशिष्येण पुण्यमावर्ज्जितं पयः।
आचम्योदीरयामास सीता सत्यां सरस्वतीम्॥
८१--वाङ्मनःकर्म्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वम्भरे देवि मामन्तर्द्धातुमर्हसि॥
८२--एवमुक्ते तया साध्व्या रन्ध्रात् सद्योभवाद्भुवः।
शातह्रदमिव ज्योतिः प्रभामण्डलमुद्ययौ॥
८३--तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी।
समुद्ररशना साक्षात् प्रादुरासीद्वसुन्धरा॥

८४--सा सीतामङ्कमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम्।
मामेति व्याहरत्येव तस्मिन् पातालमभ्यगात्॥

७६—फिर पुत्रों समेत सीता के साथ मुनि तेजस्वी राम के सन्मुख गया जैसे स्वर और संस्कार समेत गायत्री ऋचा के साथ सूरज के सन्मुख ॥

७७—वह लाल वस्त्रों से ढके हुए, अपने चरणों में दीठि लगाए हुए शान्त शरीरही से "शुद्ध है" ऐसी जानी गई ॥

७८—उस समय उसकी ओर से दीठ हटाये हुए वे सब मनुष्य शिर झुकाये खड़े होरहे, मानो पके हुए धान ॥

७६—"हे बेटी पति के सामने लोगों को अपने वृत्तान्त में शङ्का रहित कर" यह आज्ञा उसको आसन पर बैठे हुए मुनि ने दी ॥

८०—तब बाल्मीकि के शिष्य का लाया हुआ पवित्र जल आचमन करके सीता ने सत्य बाणी कही ॥

८१—"मन से वचन से कर्मसे जो पति में मेरा व्यभिचार नहीं है तो हे भूमिदेवी तू मुझे समालेने को योग्यहै" ॥

८२—उस सती के ऐसे कहने पर पृथ्वी के नए छिद्र से बिजली के उजाले की भांति प्रकाश का पुंज निकला ॥

८३—उस में नागफण के ऊपर रक्खे हुए सिंहासन पर बिराजमान समुद्र की तागड़ी वाली साक्षात पृथ्वी प्रकट हुई ॥

८४—पति में दृष्टि लगाई हुई सीता को वह गोद में लेकर उस (राम) के "नहीं नहीं" ऐसा कहते कहते पाताल को गई ॥

---

८३ समुद्र है सोई मानो पृथ्वी की तागड़ी है ॥

८५–धरायां तस्य संरम्भं सीताप्रत्यर्पणैषिणः।
गुरुः विधिबलापेक्षी शमयामास धन्विनः॥

८६–ऋषीन् विसृज्य यज्ञान्ते सुहृदश्च पुरस्कृतान्।
रामः सीतागतं स्नेहं निदधे तदपत्ययोः॥

८७–युधाजितश्च सन्देशात् स देशं सिन्धुनामकम्।
ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः॥

८८–भरतस्तत्र गन्धर्व्वान् युधि निर्जित्य केवलम्।
आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम्॥

८९–स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्योस्तदाख्ययोः।
अभिषिच्यभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात् पुनः॥

९०–अङ्गदं चन्द्रकेतुञ्च लक्ष्मणोऽप्यात्मसम्भवौ।
शाशनाद् रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ॥

९१–इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जनेश्वराः।
भर्तृलोकप्रपन्नानां निवापान् विदधुः क्रमात्॥

९२–उपेत्य मुनिवेशोऽथ कालः प्रोवाच राघवम्।
रहः संवादिनौ पश्येत् आवां यस्तं त्यजेरिति॥

८५—सीता को फिर लेने के आकांक्षी का, उस धनुषधारी का, पृथ्वी के ऊपर कोप दैवशक्ति जाननेवाले गुरू ने शान्त किया॥

८६—यज्ञ के अन्त पर राम ने सत्कार किए हुए ऋषियों को और मित्रों को बिदा करके सीता का स्नेह उसके पुत्रों में रक्खा॥

८७—और उस प्रजापालक ने युधाजित के कहने से ऐश्वर्य्य-मान भरत को सिन्धुनाम देश दिया॥

८८—वहां भरत ने गन्धर्वों को युद्ध में जीतकर केवल वीणा उनसे ग्रहण कराई हथियार छुड़ा दिये॥

८९—वह तक्ष और पुष्कल दो पुत्रों को, अभिषेक के योग्यों को, इन्हीं नामों की दो राजधानियों में अभिषेक कराकर फिर राम के पास गया॥

९०—अङ्गद और चन्द्रकेतु दो अपने बेटों को लक्ष्मण ने भी रघुनाथ की आज्ञा से कारापथ देशका स्वामी किया॥

९१—इस प्रकार पुत्रोंको स्थापित करके उन नरेशों ने पति के लोक को गई हुई माताओं के श्राद्ध इत्यादि कर्म क्रम से किए॥

९२—तब राघव के पास मुनि के भेस में काल ने जाकर कहा "एकान्त में हम दोनों को बात चीत करते हुए जो कोई देखे उसको त्यागो"॥

---

८५ गुरू = ब्रह्मा॥

८७ युधाजित नाम भरत के मामा का था॥

८९ अभिषेक कराना = राज गद्दी पर बिठाना॥

९३–तथेति प्रतिपन्नाय विवृत्तात्मा नृपाय सः।
आचख्यौ दिवमध्यास्स्व शासनात् परमेष्ठिनः॥

९४-विद्वानपितयोर्द्वाःस्थः समयं लक्ष्मणोऽभिनत्।
भीतो दुर्वाससः शापात् रामसन्दर्शनार्थिनः॥

९५–स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित्।
चकारावितथां भ्रातुः प्रतिज्ञां पूर्वजन्मनः॥

९६–तस्मिन्नात्मचतुर्भागे प्राङ्नाकमधितस्थुषि।
राघवः शिथिलं तस्थौ भुवि धर्म्मस्त्रिपादिव॥

९७–स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागांकुशं कुशम्।
शरावत्यां सतां सूक्तैः जनिताश्रुलवं लवम्॥

९८–उदक् प्रतस्थे स्थिरधीः सानुजोऽग्निपुरःसरः।
अन्वितः पतिवात्सल्यात् गृहवर्ज्जमयोध्यया॥

९९–जगृहुस्तस्य चित्तज्ञाः पदवीं हरिराक्षसाः।
कदम्बमुकुलस्थूलैः अभिवृष्टां प्रजाश्रुभिः॥

९३—"ऐसाही हो" इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हुए राजा को उस निज रूप प्रकट किए हुए ने ब्रह्मा की आज्ञा से कहा।" स्वर्ग को चलो॥

९४—द्वारपर बैठे हुए लक्ष्मण ने प्रतिज्ञा जानते हुए भी रामदर्शन के अभिलाषी दुर्वासा के शाप से डरकर उनका संवाद भङ्ग किया॥

९५—सरयूतीर पर जाकर उस योगमार्ग के ज्ञानी ने बड़े भाई की प्रतिज्ञा देह त्याग से पूरी की॥

९६—अपने उस चौथाई भाग के पहिले स्वर्ग वासी होने पर राघव पृथ्वी में तीन पैरवाले धर्म की नाईं शिथिल रहगया॥

९७—वैरीरूपी हाथियों के अंकुश रूपी कुश को कुशावती में (और) मीठे वचनों से सत्पुरुषों के आंसू बहाने वाले लवको शरावती में स्थापित करके वह,॥

९८—स्थिरबुद्धि राम अग्निहोत्र को आगे और स्वामी की प्रीति से साथ चलनेवाली विना घरों की अजुध्या को पीछे लिए हुए भाइयों सहित उत्तर दिशा को चला॥

९९—चित्त की जाननेवाले राक्षसों और बन्दरों ने उसका मार्ग प्रजा के कदम्ब कलियों समान आंसुओं से छिड़का हुआ लिया॥

---

९४ संवाद भङ्गकिया अर्थात् जहां राम और काल एकान्त में बात चीत करते थे वहां दुर्वासा का आगमन कहने को लक्ष्मण गया॥

९८ विना घरों की अजुध्या अर्थात् अजुध्याकी प्रजा॥

१००–उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना।
चक्रे त्रिदिवनिःश्रेणिः सरयूरनुयायिनाम् ॥

१०१–यद्गोप्रतरकल्पोऽभूत् संमर्दस्तत्र मज्जताम्।
अतस्तदाख्यया तीर्थं पावनं भुवि पप्रथे ॥

१०२–स विभुर्विबुधांशेषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु।
त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गान्तरमकल्पयत् ॥

१०३–निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्य्यं सुराणां।
विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत् सर्व्वलोकप्रतिष्ठाम्।
लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा।
कीर्त्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च ॥

इति श्रीरघुवंशे पञ्चदशःसर्गः समाप्तः ॥

१००—उस विमान पाए हुए ने, भक्तों पर दया करने वाले ने पीछे चलनेवालों के लिये स्वर्ग की नसेनी सरयू बनाई ॥

१०१—वहां न्हाने वालों का संघट्ट गोप्रतर (अर्थात् गौत्रोंके उतारे) के समान हुआ इस लिये वह पवित्र तीरथ पृथ्वी में उसी नाम से विख्यात हुआ ॥

१०२—देवताओंके अंशवालों को अपनी अपनी मूर्त्ति मिलने पर उस प्रभूने देवतापन पायेहुये पुर वासियों के लिये दूसरा स्वर्ग बनाया ॥

१०३—इस प्रकार देवताओं का रावणवधरूपी कार्य्य सिद्ध करके और लङ्कापति (विभीषण) और पवनसुत (हनूमान) दोनों को दक्षिण और उत्तर पर्व्वतों में कीर्त्ति के दो खम्भों की नाईं स्थापित करके विष्णु ने अपनी सब लोकों को धारण करनेवाली मूर्ति में प्रवेश किया ॥

पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ

---

१०२ देवताओं के अंश वाले = सुग्रीव इत्यादि ॥

षोड़शः सर्गः

कुशवृत्तान्तम् पुनरयोध्याप्रतिष्ठापनञ्च

१—अथेतरे सप्त रघुप्रवीराः ।
ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च ।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं ।
सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारी ।
२—ते सेतुवार्त्तागजबन्धमुख्यैः ।
अभ्युच्छ्रिताः कर्मभिरप्यवन्ध्यैः ।
अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां ।
वेलां समुद्रा इव न व्यतीयुः ॥
३—चतुर्भुजांशप्रभवः स तेषां ।
दानप्रवृत्ते रनुपारतानाम् ।
सुरद्विपानामिव सामयोनिः ।
भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः ॥
४—अथार्द्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे ।
शय्यागृहे सुप्तजने प्रबुद्धः ।
कुशः प्रवासस्थकलत्रवेशाम् ।
अदृष्टपूर्व्वां वनितामपश्यत् ॥

---

२ कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम् ॥
खन्याकर धनादानम् शून्यानां च निवेशनम् ॥

सोलहवां सर्ग

कुश का वृत्तान्त और अयोध्या का फिर बसाना

१—तब और सातों रघुवंशी वीरों ने जेठ कुश को बड़ेपन के कारण और गुणों के कारण भाग में श्रेष्ठ वस्तु अधिक लेने वाला किया; सुभ्रातपन उन के कुल की रीतिही थी ॥

२—पुलबांधना, खेती बनजी की रक्षा करना, हाथी पकड़ना (इन) मुख्य गुणों वाले सफल कामों में अति समर्थ होकर भी उन्हों ने एक दूसरे की बटी हुई सीमा को उल्लंघन न किया जैसे समुद्रों ने बेला को ॥

३—विष्णु के अंश से उपजा हुआ उन निरन्तर दान प्रवृत्ति वालों का वह वंश सामयोनि सुरगजों की नाईं आठ ओर बट कर फैला ॥

४—एक दिन आधी रात के समय दीपक मिलकते हुए सोते मनुष्यों वाले शय्या घर में जगते हुए कुश ने आगे न देखी हुई स्त्री प्रोषितपतिका के भेषमें देखी ॥

---

१ सुभ्रातपन = भाइयों में प्रीति ॥

२ बेला = समुद्र की सीमा ॥

३ विष्णु के अंश = राम लछमण भरत शत्रुघ्न ॥ दानप्रवृत्ती के दो अर्थ हैं दान देना और मद बहाना पहला कुशलव इत्यादि से सम्बन्ध रखता है दूसरा सुरगजों से ॥ सामयोनि अर्थात् सामवेद से उत्पन्न होने वाला ॥

५—सा साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः।
स्थित्वा पुरस्तात् पुरुहूतभासः।
जेतुः परेषां जयशब्दपूर्व्वं।
तस्याञ्जलिं बन्धुमतो बबन्ध॥

६—अथानपोढार्गलमप्यगारं।
छायामिवादर्शतलं प्रविष्टाम्।
सविस्मयो दाशरथेस्तनूजः।
प्रोवाच पूर्व्वार्द्धविसृष्टतल्पः॥

७—लब्धान्तरा सावरणेऽपि गेहे।
योगप्रभावो नच लक्ष्यते ते।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां।
मृणालिनी हैममिवोपरागम्॥

८—का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा।
किं वा मदभ्यागमकारणं ते।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां।
मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति॥

९—तमब्रवीत् सा गुरुणानवद्या।
या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन।
तस्याः पुरः सम्प्रति वीतनाथा।
जानीहि राजन्नधिदेवतां माम्॥

५—उस सज्जन साधारण राजश्रीवाले के, इन्द्रसमान तेजस्वी के, बैरियों को जीतनेवाले, कुटुम्बीके सन्मुख खड़ी होकर उसने जयशब्द कहकर हाथ जोड़े ॥

६—तब अर्गला लगे हुए आदर्श मन्दिर में भी छाया की नाईं पहुंची हुई को दशरथसुत के चकित बेटे ने अगला आधा शरीर सेज से उठाकर कहा ॥

७—"तू गुप्त स्थान में भी आगई है और तेरा प्रभाव योग का सा नहीं दीखता है और तू दुखिया का रूप धारण कर रही है, मानो शीतके उपद्रव को कमलिनी" ॥

८—"हे सुन्दरी ! तू कौन है और किसकी स्त्री है और मेरे पास आने से क्या तेरा प्रयोजन है सो तू जितेन्द्री रघुवंशियों का मन पराई स्त्री के व्यवहार में बिमुख जान कर बतला" ॥

९—वह उससे बोली "हे राजा ! जिस निर्दोषपुरी के बासियों को तेरा पिता अपने पुर जाने का उत्साही लेगया उसी का अधिदेवता मुझ अनाथ को तू जान" ॥

---

५ सज्जन साधारण=सज्जनों के समान ॥
६ अर्गला=द्वार मूंदने की लकड़ी ॥

१०—वस्वौकसारामभिभूय साहं।
सौराज्यबद्धोत्सवया विभूत्या।
समग्रशक्तौ त्वयि सूर्य्यवंश्ये।
सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम्॥

११—विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेशः।
पर्य्यस्तशालः प्रभुणा विना मे।
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्य्यं।
दिनान्तमुग्रानिलभिन्नमेघम्॥

१२—निशासु भास्वत्कलनूपुराणां।
यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः।
स वाह्यते राजपथः शिवाभिः॥

१३—आस्फालितं यत् प्रमदाकराग्रैः।
मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत्।
वन्यैरिदानीं महिषैस्तदंभः।
शृङ्गाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम्॥

१४—वृक्षेशया यष्टिनिवासभंगात्।
मृदंगशब्दापगमादलास्याः।
प्रासादवोल्काहतशेषवर्हाः।
क्रीडामयूरा वनवर्हिणत्वम्॥

१०—अलका पुरी को सुराज्यपन के प्रताप से मैं नित्य उत्सवों की विभूति के द्वारा तिरस्कार करके तुझ पुरी शक्तिवाले सूर्य्यवंशी के होते हुए दीन दशा को पहुंची हूं" ॥

११—"गिरे हुए सैकड़ों अटे अटारीवाली, टूटे हुए पर कोटे वाली, मेरी बस्ती स्वामी के बिना अस्त में डूबते हुए सूरजवाली, प्रचण्ड पवन के बिथराए हुए बादलोंवाली, सन्ध्या को होड़ करती है" ॥

१२—"रातों में जो राजमार्ग मधुरशब्द करते हुए दीप्तमान नूपुरोंवाली अभिसारिकाओं के आने जाने का था उस में अब चिल्लाते मुख की चिनगारियों से मांस ढूंढ़ती हुई गीदड़ी फिरती हैं" ॥

१३—"जो बावड़ियों का जल प्रमदाओं की हथेलियों से चपेट खाकर मृदंग की गम्भीर ध्वनि की होड़ करता था सो अब बन के भैंसों के सींगों का झकोरा हुआ कठोर शब्द करता है" ॥

१४—"छत्रियों की बैठक मिटने से वृक्षों पर रहनेवाले, मृदङ्ग ध्वनि के अभाव से नाचना त्यागे हुए, दावानल की चिनगारियों से कुछ बचीहुई पूंछवाले, पालतू मोर जङ्गली मोरों की दशा को पहुंचे हैं" ॥

---

१२ अभिसारिका उस नायका को कहते हैं जो पति के पास आप जाय ॥

१५—सोपानमार्गेषु च येषु रामाः।
निक्षिप्तवत्यश्चरणान् सरागान्।
सद्यो हतन्यंकुभिरस्रदिग्धं।
व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे॥
१६—चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः।
करेणुभिर्दत्तमृणालभंगाः।
नखांकुशाघातविभिन्नकुम्भाः।
संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति॥
१७—स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानाम्।
उत्क्रांतवर्णक्रमधूसराणाम्।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति संगात्।
निर्मोकपट्यः फणिभिर्विमुक्ताः॥
१८—कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तम्।
इतस्ततो रूढतृणांकुरेषु।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि।
हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः॥
१९—आवर्ज्य शाखाः सदयञ्च यासां।
पुष्पाण्युपात्तानि विलासिनीभिः।
वन्यैः पुलिन्दैरिव वानरैस्ताः।
क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः॥

१५—"और मेरे जिन सीढ़ियोंवाले मार्गों में रमणशीला स्त्री महावर लगेहुए चरण रखती थीं उनमें (अब) तुरन्त हरिण मार कर लोहू भरे पैर नाहर धरते हैं" ॥

१६—चित्र के हाथी कमल के कुंजों में धसे हुए, हथनियों से मृणाल के टुकड़े लेते हुए, नखरूपी अंकुशों से मस्तक छिदे हुए, कोपित सिंहों का प्रहार सहते हैं" ॥

१७—"खम्भों में स्त्रियों की मूरतों को, रंगों का क्रम बिगड़ने से धूसरापन लीहुइयों को, सांपों की छोड़ी हुई केंचली लपट कर चोली बनी हैं" ॥

१८—"समय के अन्तर से मैले चूनेवाले मन्दिरों में, जहां तहां घास के अंकुर जमे हुओं में, रात के समय वे मुक्तमाल समान निर्मलचन्द्र किरण भी नहीं चमकती हैं" ॥

१९—"और जिनकी शाखाओं को विलासिनी स्त्री दया से झुका कर फूल चुन्ती थीं मेरी उन उद्यान लताओं को पुलन्दों की नाईं बन के बन्दर दुखाते हैं" ॥

---

१९ पुलन्द = म्लेच्छविशेष ॥

२०–रात्रावनाविष्कृतदीपभासः।
कान्तामुखश्रीवियुता दिवापि।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैः।
विच्छिन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः॥

२१–बलिक्रियावर्जितसैकतानि।
स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति।
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा।
शून्यानि दूये सरयूजलानि॥

२२–तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य।
मामभ्युपेतुं कुलराजधानीम्।
हित्वा तनुं कारणमानुषीं तां।
यथा गुरुस्ते परमात्ममूर्तिम्॥

२३–तथेति तस्याः प्रणयं प्रतीतः।
प्रत्यग्रहीत् प्राग्रहरो रघूणाम्।
पूरप्यभिव्यक्तमुखप्रसादा।
शरीरबन्धेन तिरोबभूव॥

२४–तदद्भुतं संसदि रात्रिवृत्तं।
प्रातर्द्विजेभ्यो नृपतिः शशंस।
श्रुत्वा त एनं कुलराज्यधान्या।
साक्षात् पतित्वे वृतमभ्यनन्दन्॥

२०—"रात में दीपक के उजाले से रहित, दिन में भी स्त्रियों के मुखों की कान्ति से सूने, धूएं का निकलना मिटे हुए, झरोखे मकड़ी के जालों से ढकगए हैं" ॥

२१—"पूजनक्रिया से रहित घाटोंवाले, स्नान के सोंधों का सत्संग न मिलनेवाले, तीर पर नरसलों की सूनी झोंपड़ियोंवाले, सरयू के जल देखकर मैं खेद पाती हूं" ॥

२२—"इसलिए इस पूरी को छोड़कर तू मुझ कुलराजधानी की ओर चलने को योग्य है, जैसे तेरा पिता उस कारणमात्र मानुषीदेह को त्याग कर विष्णु मूर्त्ति को" ॥

२३—"ऐसा ही होगा" इसप्रकार उसकी विनती को रघुवंशमणि ने प्रसन्न होकर स्वीकार किया; मुख से प्रसन्नता जताती हुई पुरी भी शरीर से अन्तर्द्धान हुई" ॥

२४—रात का वह अद्भुतवृत्तान्त राजा ने प्रातःकाल सभा में ब्राह्मणों से कहा उन्हों ने सुनकर उसको साक्षात् कुल की राजधानी का पति माना हुआ सराहा ॥

२१ स्नान का सोंधा = न्हाने से पहले जो सुगन्धि की वस्तु शरीर में लगाई जाती हैं ॥

२५–कुशावतीं श्रोत्रियसात् स कृत्वा।
यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः।
अनुद्रुतो वायुरिवाभ्रवृन्दैः।
सैन्यैरयोध्याभिमुखः प्रतस्थे॥

२६–सा केतुमालोपवना बृहद्भिः।
विहारशैलानुगतेव नागैः।
सेना रथोदारगृहा प्रयाणे।
तस्याभवज्जङ्गमराजधानी॥

२७–तेनातपत्रामलमण्डलेन।
प्रस्थापितः पूर्वनिवासभूमिम्।
बभौ बलौघः शशिनोदितेन।
वेलामुदन्वानिव नीयमानः॥

२८–तस्य प्रयातस्य वरूथिनीनां।
पीडामपर्याप्तवतीव सोढुम्।
वसुन्धरा विष्णुपदं द्वितीयम्।
अध्यारुरोहेवरजश्छलेन॥

२९–उद्यच्छमाना गमनाय पश्चात्।
पुरो निवेशे पथि च व्रजन्ती।
सा यत्र सेना ददृशे नृपस्य।
तत्रैव सामग्र्यमतिं चकार॥

२५—वह कुशावती को वेद जाननेवाले ब्राह्मणों की करके यात्राअनुकूल दिनमें सेना साथ लियेहुए रनवास समेत अयोध्या की ओर सिधारा, मानो बादल साथ लिये हुए पवन ॥

२६—उसके चलने में वह सेना ध्वजाओं की मालारूपी उपवनोंवाली, रथोंरूपी ऊंचे घरोंवाली, बड़े हाथियों रूपी विहार शैलोंवाली, चलती हुई राजधानी के समान दिखलाई दी ॥

२७—पहली निवासभूमि (अयोध्या) की ओर उस निर्मल छत्रमण्डलवाले का चलायाहुआ कटक शोभायमान हुआ, मानोतटकी ओर चन्द्रमा का चलायाहुआ समुद्र ॥

२८—उस चलते हुए की सेनाओं का कष्टसहने को असमर्थ सी होकर पृथ्वी मानो धूलकेमिस से विष्णु के दूसरे पद (आकाश) को चढ़ी ॥

२९—पीछे चलने के लिये और आगे पड़ाव में उतरने के लिये उद्योग करतीहुई और मार्ग में चलतीहुई जहां देखी गई वहीं राजा की वह सेना समस्तही दिखलाई दी ॥

---

२५ ब्राह्मणों की करके अर्थात् ब्राह्मणों को देकर ॥
२६ सेना की उपमा चलती हुई नगरी से दी है ॥

३०—तस्य द्विपानां मदवारिसेकात्।
खुराभिघाताच्च तुरङ्गमाणाम्।
रेणुःप्रपेदे पथि पङ्कभावं।
पङ्कोऽपि रेणुत्वमियाय नेतुः॥

३१—मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु।
वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना।
चकार रेवेव महाविरावा।
बद्धप्रतिश्रुन्ति गुहामुखानि॥

३२—स धातुभेदारुणयाननेमिः।
प्रभुः प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्य्यः।
व्यलङ्घयद् विन्ध्यमुपायनानि।
पश्यन् पुलिन्दैरुपपादितानि॥

३३—तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात्।
प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गङ्गाम्।
अयत्नबालव्यजनीबभूवुः।
हंसा नभोलङ्घनलोलपक्षाः॥

३४—स पूर्वजानां कपिलेनरोषात्।
भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम्।
सुरालयप्राप्तिनिमित्तमम्भः।
त्रैस्रोतसं नौलुलितं ववन्दे॥

३०—उस नायक के हाथियों के मद के छिड़काव से और घोड़ों की खुरताड़ से मार्ग में धूल ने कीचपन लिया (और) कीच भी धूलपन को पहुंची॥

३१—विन्ध्याचल की तराइयों में मार्ग खोजती हुई, बहुत भागों में बटीहुई, महाशब्द करती हुई, उस सेना ने रेवा की नाईं गुफाओं के मुख गुंजायमान किए॥

३२—गेरू इत्यादि धातुओं से रथ के लालपहियोंवाला, चलने की ध्वनि में मिले हुए तुरहियों के शब्दवाला, वह राजा पुलिन्दों की दी हुई भेटों को देखता हुआ विन्ध्याचल के पार गया॥

३३—उस (विन्ध्याचल) के घाट पर हाथियों का पुल बंधने से पश्चिमवाहिनी गंगा को उस उतरते हुए के लिये आकाश की ओर उड़ते हुए चञ्चल पंखोंवाले हंस विना यत्नही चमर बने॥

३४—कपिल के कोप से देह की भस्म बचे हुए पुरखों को स्वर्ग प्राप्त करानेवाले तीन सोतों के जल को, नावों से हिलते हुए को, उसने वन्दना की॥

---

३३ हाथियों का पुल बंधा इससे पूर्ववाहिनी गंगा पश्चिमवाहिनी होगई और हंस ऊपर को उड़े उनके पंख उस राजा के लिये मानो सहजही चमर बन गए॥

३४ तीन सोतोंवाला जल अर्थात् गंगाजल॥

३५—इत्यध्वनः कैश्चिदहोभिरन्ते।
कूलं समासाद्य कुशः सरय्वाः।
वेदिप्रतिष्ठान् विततावराणां।
यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम्॥

३६—आधूय शाखाः कुसुमद्रुमाणां।
स्पृष्ट्वा च शीतान् सरयूतरङ्गान्।
तं क्लान्तसैन्यं कुलराजधान्याः।
प्रत्युज्जगामोपवनान्तवायुः॥

३७—अथोपशल्ये रिपुमग्नशल्यः।
तस्याः पुरः पौरसखः स राजा।
कुलध्वजस्तानि चलध्वजानि।
निवेशयामास बली बलानि॥

३८—तां शिल्पिसङ्घाः प्रभुणा नियुक्ताः॥
तथागतां सम्भृतसाधनत्वात्।
पुरं नवीचक्रुरपां विसर्गात्।
मेघा निदाघग्लपितामिवोर्वीम्॥

३९—ततः सपर्य्यां सपशूपहारां।
पुरः परार्द्ध्यप्रतिमागृहायाः।
उपोषितैर्वास्तुविधानविद्भिः।
निर्वर्त्तयामास रघुप्रवीरः॥

३५—इस प्रकार कई दिन में मार्ग के अन्त पर सरयू का तीर प्राप्त करके कुश ने यज्ञशाली रघुवंशियों के सैकड़ों यज्ञखम्भ वेदियों में खड़े हुए देखे॥

३६—फूल के वृक्षों शी शाखाओं को कुछ हिला कर और सरयू की ठंढी लहरों से स्पर्श करके कुल राजधानी के उपवनों की पवन उस थकी हुई सेनावाले को आगे मिली॥

३७—तब उस पुरी के आस पास की भूमि में उस बली राजा ने, वैरियों में बाण मारनेवाले ने, पुरवासियों के सखा ने, कुल की ध्वजा ने, उन फहराती हुई ध्वजा वाली सेनाओं को ठहराया॥

३८—स्वामी के नियत किए हुए शिल्पकारों के झुंडों ने सामग्री इकट्ठी करके उस ऐसी दशा को गई हुई पुरी को नया करदिया मानों बादलों ने जल बरसाकर निदाघ की तपाई हुई भूमिको॥

३९—तिस पीछे रघुवंशी वीर ने उपासे वास्तुविधि जानने वालों से बड़े मोल की मूर्तियों के मन्दिरों वाली पुरी का पूजन पशुओं के बलिदान सहित कराया॥

---

३८ शिल्पकार =कारीगर॥ निदाघ = जेठ असाढ़ का घाम॥
३९ वास्तुविधि अर्थात् नये मन्दिर इत्यादि की पूजा की विधि॥

४०—तस्याः स राजोपपदं निशान्तम् ।
कामीव कान्ताहृदयं प्रविश्य ।
यथार्हमन्यैरनुजीविलोकं ।
सम्भावयामास यथाप्रधानम् ॥

४१—सा मन्दुरासंश्रयिभिस्तुरङ्गैः ।
शालाविधिस्तम्भगतैश्च नागैः ।
पूरावभासे विपणिस्थपण्या ।
सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी ॥

४२—वसन् स तस्यां वसतौ रघूणां ।
पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेयः स्पृहयाम्बभूव ।
भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ॥

४३—अथास्य रत्नग्रथितोत्तरीयम् ।
एकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम् ।
निःश्वासहार्य्यांशुकमाजगाम ।
घर्म्मः प्रियावेषमिवोपदेष्टुम् ॥

४४—अगस्त्यचिह्नादयनात् समीपं ।
दिगुत्तरा भास्वति सन्निवृत्ते ।
आनन्दशीतामिव वाष्पवृष्टिं ।
हिमस्रुतिं हैमवती ससर्ज्ज ॥

४०—उसने उस (नगरी) के राजभवन में कान्ता के हृदय में कामी की नाईं प्रवेश करके मन्त्री इत्यादि को यथोचित जैसी जिसकी प्रधानता थी दूसरे (भवन) देकर सन्मान किया ॥

४१—घुड़सालों में बँधे हुए घोड़ों से और गजसालों में विधिपूर्वक गड़े हुए खम्भों में बँधे हाथियों से वह पुरी, हाटों में रक्खी हुई बेचने बिसाहने की वस्तुओं वाली, शोभित हुई, मानो सब अङ्गों में गहना पहने हुए स्त्री ॥

४२—अगली शोभा को पहुंचाई हुई रघुवंशियों की उस नगरी में बसते हुए उस मैथिलीसुत ने न स्वर्ग का और न अलका का भी स्वामी होना चाहा ॥

४३—तब मानो उसको प्यारी का रत्न जटित ओढ़नी वाला, गोरे स्तनों पर बहुत लटकते हुए हारों वाला, स्वाससे उड़ते हुए वस्त्रों वाला, भेस दिखाने को घाम का समय आया ॥

४४—अगस्त्य के चिह्नवाले अयन से (अर्थात् दक्षिण से) लौट कर सूरज पास आने पर उत्तर दिशा ने हिमालय की ठण्ढी धारा छोड़ी, मानो आनन्द के शीतल आंसुओं की बरसा ॥

---

४० नगरी है सोई मानो कान्ता है और राजभवन है सोई उसका हृदय है ॥ जैसी जिसकी योग्यता थी वैसाही घर उसको रहनेके लिये कुशने दिया॥

४२ इन्द्र और कुबेर को भी कुश ने कुछ न गिना ॥

४३ घाम का समय अर्थात् ग्रीषमऋतु ॥

४४ मानो प्रोषितपति का नायका को पति का समागम हुआ ॥

४५–प्रवृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रम्।
अत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ।
जायापती सानुशयाविवास्ताम्॥
४६–दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात्।
सोपानपर्वाणि विमुञ्चदम्भः।
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां।
नारीनितम्बद्वयसं बभूव॥
४७–वनेषु सायन्तनमल्लिकानां।
विजृम्भणोद्गन्धिषुकुड्मलेषु।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदः सशब्दं।
संख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार॥
४८–स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षताङ्के।
भूयिष्ठसन्दष्टशिखं कपोले।
च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां।
शिरीषपुष्पं सहसा पपात॥
४९–यन्त्रप्रवाहैः शिशिरैः परीतान्।
रसेन धौतान् मलयोद्भवस्य।
शिलाविशेषानधिशय्य निन्युः।
धारागृहेष्वातपमृद्धिमन्तः॥

४५—अति ताप बढ़ा हुआ दिन और अतिही दुबली रात्री दोनों विरुद्ध आचरणों करके अलग होनेवाले पछताते हुए स्त्री पुरुष के समान हुए ॥

४६—घर की बावड़ियों का जल दिन पर दिन शिवाल उपजी हुई सीढ़ियों को नीचे छोड़ता हुआ, खड़ी डण्डी के कमलोंवाला, स्त्री की कटि तक (गहरा) रह गया ॥

४७—वनों के बीच सन्ध्या समय की चमेली की कलियों में, खिलने के कारण उत्कट सुगन्ध वालियों में, एक एक पर पैर रखते हुए गुंजारमान भौंरे ने मानो उनकी गिनती की ॥

४८—पसीने से भीगे हुए नए नखच्छत चिह्नवाले कामिनी के कपोल पर अत्यन्त केसरा लपटा हुआ सरस का फूल कान से छूटकर भी एकाएकी न गिरा ॥

४९—यन्त्र के ठण्ढे प्रवाहों से छिड़की हुई, मलयागिरि के जल से धोई हुई, विशेष प्रकार की चटानों पर जन मन्दिरों में सोकर धनवानों ने दुपहरी बिताई ॥

---

४५ विरुद्ध आचरण अर्थात् विनती कलह इत्यादि ॥
४८ केसरा अर्थात् फूल के ऊपर जो रोम से होते हैं ॥
४९ यन्त्र = बराबर कल जैसे पिचकारी इत्यादि ॥

५०—स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं।
विन्यस्तसायन्तनमल्लिकेषु।
कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्य्यः।
केशेषु लेभे बलमंगनानाम्॥
५१—आपिञ्जरा बद्धरजः कणत्वात्।
मञ्जर्य्युदारा शुशुभेऽर्ज्जुनस्य।
दग्ध्वापि देहं गिरिशेन रोषात्।
खण्डीकृता ज्येव मनोभवस्य॥
५२—मनोज्ञगन्धं सहकारभंगं।
पुराणशीधुं नवपाटलं च।
सम्बध्नता कामिजनेषु दोषाः।
सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टाः॥
५३—जनस्य तस्मिन् समये विगाढे।
बभूवतुर्द्वौ सविशेषकान्तौ।
तापापनोदक्षमपादसेवौ।
स चोदयस्थौ नृपतिः शशी च॥
५४—अथोर्म्मिलोलोन्मदराजहंसे।
रोधोलतापुष्पवहे सरय्वाः।
विहर्तुमिच्छा वनितासखस्य।
तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव॥

५०—स्नान सी गीले स्त्रियों के केशों में, सौंधा लगाने के लिये खोले हुओं में, सन्ध्या की चमेली रक्खे हुओं में, बसन्त बीतने से पराक्रम घटे हुए कामदेव ने बल पाया ॥

५१—रज के कण लगने से अर्जुन (वृक्ष) की अच्छी लाल मंजरी शोभायमान हुई, मानो देह जलाकर भी कोपित महादेव की तोड़ी हुई कामदेव की प्रतिज्ञा ॥

५२—मनोहर सुगन्धिवाले आमके पत्ते और पुरानी मदिरा और नए पाटेल के फूल इनको इकट्ठा करनेवाली ग्रीष्मऋतु ने कामी पुरुषों के सब दुःख मिटा दिए ॥

५३—उस कठिन समय में पाद सेवा से ताप मिटाने को समर्थ दो उदयवान प्रजा को अति प्यारे हुए, वह राजा और चन्द्रमा ॥

५४—तब तरङ्गों के लोभी उन्मत्त राजहंसोंवाले सरयू के जल में तीर की लताओं के फूल बहानेवाले में, ग्रीष्म के सुखकारी में उस स्त्रियों के सखा की इच्छा विहार करने की हुई ॥

---

५३ पादसेवा = चरणों अथवा किरणों की सेवा ॥ ताप = दुःख अथवा गरमी ॥

५५–स तीरभूमौ विहितोपकार्य्याम्।
आनायिभिस्तामपकृष्टनक्राम्।
विगाहितुं श्रीमहिमानुरूपं।
प्रचक्रमे चक्रधरप्रभावः॥

५६–सातीरसोपानपथावतारात्।
अन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः।
सनूपुरक्षोभपदाभिरासीत्।
उद्विग्नहंसा सरिदंगनाभिः॥

५७–परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां।
तासां नृपो मज्जनरागदर्शी।
नौसंश्रयः पार्श्वगतां किरातीम्।
उपात्तबालव्यजनां बभाषे॥

५८–पश्यावरोधैः शतशोमदीयैः।
विगाह्यमानो गलिताङ्गरागैः।
सन्ध्योदयः साभ्र इवैष वर्णं।
पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः॥

५९–विलुप्तमन्तःपुरसुन्दरीणां।
यदञ्जनं नौलुलिताभिरद्भिः।
तद्बध्नतीभिर्मदरागशोभां।
विलोचनेषु प्रतिमुक्तमासाम्॥

५५—तीर पर तने हुए तम्बूवाली, जालों से निकाले हुए मगरों वाली उस नदी को अपनी लक्ष्मी और महिमा के अनुसार वह विष्णु प्रभावी गाहने लगा॥

५६—तीर की सीढ़ियों का मार्ग उतरने में एक दूसरी के भुजबन्दों को रगड़ती हुई स्त्रियों से, बजते हुए नूपुरों सहित पैरों वाली से वह (नदी) भयभीत हंसों वाली हुई॥

५७—उन आपस में जल फेंकती हुइयों के न्हाने की शोभा देखने के अभिलाषी राजा ने, नावपर बैठे हुएने, चमर लिएहुए पास खड़ी हुई किराती से कहा॥

५८—"देख मेरे रनवास की सैकड़ों स्त्रियों से, अङ्गराग धुली हुइयों से, झकोरे पाकर सरयू की यह धारा अनेक रङ्ग दिखाती है, मानों बादलों सहित सन्ध्या का उदय"॥

५९—"रनवास की स्त्रियों का जो कज्जल नाव के हिलाए हुए जलों ने हर लिया था वही उनको मदराग की शोभा दरसाते हुए (जलों) ने फिर आंखों में दिया है"॥

---

५६ उस नदी के हंस डरगए॥
५७ किराती=चमर हिलानेवाली दासी॥

६०—एता गुरुश्रोणि पयोधरत्वात्।
आत्मानमुद्वोढुमशक्नुवन्त्यः।
गाढाङ्गदैर्बाहुभिरप्सु बालाः।
क्लेशोत्तरं रागवशात् प्लवन्ते॥
६१—अमी शिरीषप्रसवावतंसाः।
प्रभ्रंशिनो वारिविहारिणीनाम्।
पारिप्लवाः स्रोतसि निम्नगायाः।
शैवाललोलांश्छलयन्ति मीनान्॥
६२—आसां जलास्फालनतत्पराणां।
मुक्ताफलस्पर्द्धिषु शीकरेषु।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्य्यमाणाः।
संलक्ष्यते न च्छिदुरोऽपि हारः॥
६३—आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेः।
भङ्गी भ्रुवां द्वन्द्वचराङ्गनानाम्।
जातानि रूपावयवोपमाना।
न्यदूरवर्त्तीनि विलासिनीनाम्॥
६४—तीरस्थलीवर्हिभिरुत्कलापैः।
प्रास्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम्।
श्रोत्रेषु संमूर्च्छति रक्तमासां।
गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम्॥

६०—"भारी नितम्बों और स्तनों के कारण अपने शरीर के ले चलने में असमर्थ ये स्त्री खेल के वश दुःख सहती हुई भी गाढ़े भुजवन्द बँधी हुई बाहों से पैरती हैं" ॥

६१—"जल क्रीड़ा करनेवालियों के ये गिरे हुए सिरस फूल के चञ्चल गहने नदी की धारमें शिवाल की लोभिन मछलियोंको धोखा देते हैं" ॥

६२—"इन जल झकोरती हुइयों के टूटे हार भी मोतियों को लजानेवाली बूँदों में, स्तनों पर उछलती हुइयों में, टूटे नहीं जाने जाते" ॥

६३—"गहरी नाभि की शोभा की भ्रमर की शोभा, भौंहों को तरंग, स्तनों को चकवा चकवी के जोड़े, ये उपमा विलासिनियों के रूप के अवयवों को निकटही प्राप्त हैं" ॥

६४—"ऊंची पूंछवाले तीर के मधुरअलापी मोरों की सराही हुई इन स्त्रियों की पानी रूपी मृदंग की प्यारी ध्वनि, गीत के साथ चलनेवाली, कानों में पड़ती है" ॥

---

६१ सिरस फूलों को शिवाल जान कर मछली उछलती हैं ॥

६५–सन्दष्टवस्त्रेष्वबलानितम्बेषु।
इन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः।
अमी जलापूरितसूत्रमार्गाः।
मौनं भजन्ते रशनाकलापाः॥

६६–एताः करोत्पीडितवारिधाराः।
दर्पात् सखीभिर्वदनेषु सिक्ताः।
वक्रेतराग्रैरलकैस्तरुण्यः।
चूर्णारुणान् वारिलवान् वमन्ति॥

६७–उद्बन्धकेशश्च्युतपत्रलेखः।
विश्लेषिमुक्ताफलपत्रवेष्टः।
मनोज्ञ एव प्रमदामुखानाम्।
अम्भोविहाराकुलितोऽपि वेशः॥

६८–स नौविमानादवतीर्य्य रेमे।
विलोलहारः सह ताभिरप्सु।
स्कन्धावलग्नोद्धृतपद्मिनीकः।
करेणुभिर्वन्य इव द्विपेन्द्रः॥

६९–ततो नृपेणानुगताः स्त्रियस्ताः।
भ्राजिष्णुना सातिशयं विरेजुः।
प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः।
प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम्॥

६५—"अबलाओं के कपड़ा लपेटे हुए नितम्बों पर, ये कुन्दों में पानी भरे हुए तागड़ी के घुंघुरू चांदनी से ढके हुए तारों की नाईं मौन साध रहे हैं"॥

६६—"घमंड से पानी की धारा को हाथ से उछालती हुई, मुखों पर सखी की भिगोई हुई, ये तरुणी सीधी नोक की अलकों से कुमकुम के रंगवाली लाल बूंद बरसाती हैं"॥

६७—"छुटे केशों वाला, धुली हुई अंग रचनावाला, खुले मोतियों के कर्णफूलोंवाला, प्रमदाओं के मुख का भेष जलक्रीड़ा से व्याकुल भी मनोहर ही है"॥

६८—नाव रूपी विमान से उतर कर उस लटकते हुए हार वाले ने उनके साथ जल में विहार किया, जैसे उखाड़ी हुई कमलिनी को कंधेपर डाले हुए बन के हाथी ने हथनियों के साथ॥

६९—तब दीप्तमान राजा के संग वे स्त्रियां अति शोभायमान हुई, मोती पहले तो आपही मनोहर होते हैं फिर कान्तिमान इन्द्रनील (मणि) का साथ पाने पर क्या कहना है॥

६६ बालों में कुमकुम लगा था उससे पानी की लाल बूंद टपकी॥

७०—वर्णोदकैः काञ्चनशृंगमुक्तैः।
तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन्।
तथागतः सोऽतिरां बभासे।
सधातुनिष्यन्द इवाद्रिराजः॥

७१—तेनावरोधप्रमदासखेन।
विगाहमानेन सरिद्वरां ताम्।
आकाशगंगाराप्तिरप्सरोभिः।
वृतो मरुत्वाननुयातलीलः॥

७२—यत् कुम्भयोनेरधिगम्य रामः।
कुशाय राज्येन समं दिदेश।
तदस्य जैत्राभरणं विहर्त्तुः।
अज्ञातपातं सलिले ममज्ज॥

७३—स्नात्वा यथाकाममसौ सदारः।
तीरोपकार्य्यांगतमात्र एव।
दिव्येन शून्यं वलयेन बाहुम्।
अपोढनेपथ्यविधिर्ददर्श॥

७४—जयश्रियः संवननं यतस्तत्।
आमुक्तपूर्व्वं गुरुणा च यस्मात्।
सेहेऽस्य न भ्रंशमतो न लोभात्।
स तुल्यपुष्पाभरणो हि धीरः॥

७५—ततः समाज्ञापयदाशु सर्व्वान्।
आनायिनस्तद्विचये नदीष्णान्।
वन्ध्यश्रमास्ते सरयूं विगाह्य।
तमूचुरम्लानमुखप्रसादाः॥

७०—सोने की पिचकारी से छूटे हुए रंगीले जलों से उसको बड़ी आंखवालियों ने प्रेम सहित भिगोया; ऐसी अवस्था को जाकर वह अतिशोभायमान दीखा, जैसे गेरू इत्यादि धातु के झरनों सहित गिरिराज ॥

७१—उस रनवास की स्त्रियों के सखा ने, उस श्रेष्ठ नदी को गाहते हुए ने, आकाशगंगा में विहारकरनेवाले अप्सराओं के सखा इन्द्र की होड़ की ॥

७२—अगस्त्य से पाकर जो राम ने कुश को राज्य के साथ दिया था वह उस विहार करनेवाले का जयशील गहना विना जाने गिर कर जल में डूब गया ॥

७३—स्त्रियों सहित इच्छापूर्वक नहाकर तीर के तम्बू में जातेही उस विना कपड़े पलटे हुए ने दिव्य भुजबन्द से बांह सूनी देखी ॥

७४—इसलिये कि जयश्री का वशीकरण था और इसलिये कि आगे बाप का पहना हुआ था उस आभूषण का खोना (उसने) न सहा नकि लोभ से, क्योंकि उस विद्वान् को फूल और गहने तुल्य थे ॥

७५—तब नदी में धसनेवाले सब धीमरों को उसके ढूंढ़ने के लिये तुरन्त आज्ञा दी ॥ सरयू को गाह कर वे वृथा श्रमवाले, विना बिगड़ी हुई मुखकान्तिवाले, उससे बोले ॥

७६—कृतः प्रयत्नो न च देव लब्धं।
मग्नं पयस्याभरणोत्तमं ते।
नागेन लौल्यात् कुमुदेन नूनम्।
उपात्तमन्तर्ह्रदवासिना तत्॥

७७—ततः स कृत्वा धनुराततज्यं।
धनुर्द्धरः कोपविलोहिताक्षः।
गारुत्मतं तीरगतस्तरस्वी।
भुजङ्गनाशाय समाददेऽस्त्रम्॥

७८—तस्मिन् ह्रदः संहितमात्र एव।
क्षोभात् समाविद्धतरङ्गहस्तः।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः।
करीव वन्यः परुषं ररास॥

७९—तस्मात् समुद्रादिव मथ्यमानात्।
उद्वृत्तनक्रात् सहसोन्ममज्ज।
लक्ष्म्येव सार्द्धं सुरराजवृक्षः।
कन्यां पुरस्कृत्य भुजङ्गराजः॥

८०—विभूषणप्रत्युपहारहस्तम्।
उपस्थितं वीक्ष्य विशाम्पतिस्तम्।
सौपर्णमस्त्रं प्रतिसञ्जहार।
प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः॥

७६—"हे देव! यत्न किया गया परन्तु तुम्हारा जल में डूबा हुआ उत्तम गहना न मिला, निश्चय उसको दह के भीतर रहनेवाला कुमुदनाम नाग लोभ से लेगया" ॥

७७—तब धनुष को प्रत्यंचाचढ़ाहुआ करके उस धनुषधारी ने, कोप की लाल आंखों से तीर पर गये हुए बली ने, सांप के नाश निमित्त गरुडास्त्र लिया ॥

७८—उस (अस्त्र) के सन्धान होते ही डर के मारे तरंग रूपी हाथ जोड़े हुए दहने, तट को गिराते हुए ने, कठोरशब्द किया, मानो गढ़े में पड़े हुए वन के हाथी ने ॥

७९—मथन होते हुए समुद्र समान उस (दह) से, डरेहुए मगरोंवाले से, तुरन्त सांपों का राजा कन्या आगे लिये हुए निकला, मानो लक्ष्मी सहित इन्द्र का वृक्ष (पारिजात) ॥

८०—उस गहने की भेट हाथमें लियेहुए को सामने आया देखकर नरनाह ने गरुडास्त्र उतार लिया; सज्जन मनुष्य विनती करते हुओं पर शान्तकोप होतेही हैं ॥

---

७७ गरुडास्त्र = जो अस्त्र गरुड से मिला अथवा जिसका देवता गरुड था ॥

८१—त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्रभावात्।
कुशं द्विषामंकुशमस्त्रविद्वान्॥
मानोन्नतेनाप्यभिवन्द्य मूर्ध्ना
मूर्द्धाभिषिक्तं कुमुदो बभाषे॥
८२—अवैमि कार्य्यान्तरमानुषस्य।
विष्णोः सुताख्यामपरां तनुं त्वाम्।
सोऽहं कथं नाम तवाचरेयम्।
आराधनो यस्य धृतेर्विघातम्॥
८३—कराभिघातोत्थितकन्दुकेयम्।
आलोक्य बालातिकुतूहलेन।
ह्रदात् पतज्ज्योतिरिवान्तरिक्षात्।
आदत्त जैत्राभरणं त्वदीयम्॥
८४—तदेतदाजानुविलम्बिना ते।
ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन।
भुजेन रक्षापरिघेण भूमेः।
उपैतु योगं पुनरंसलेन॥
८५—इमां स्वसारञ्च यवीयसीं मे।
कुमुद्वतीं नार्हसि नानुमन्तुम्।
आत्मापराधं नुदतीं चिराय।
शुश्रूषया पार्थिव पादयोस्ते॥

८१—त्रिलोकीनाथ के पुत्र कुशको, प्रभाव में वैरियों के अंकुश को, अभिषेक किए हुये को, अस्त्रज्ञानी कुमुद ने मान के कारण उठेहुए शिर से प्रणामकरके कहा ॥

८२—"मैं तुमको कार्य्य निमित्त मनुष्यरूप (लेनेवाले) विष्णु का पुत्र नाम दूसरा शरीर जानताहूं, सो मैं तुम उपासनायोग्य की प्रीति के तोड़ने को कैसे आचरण करता" ॥

८३—"थाप लगने से उठी थी गेंद जिसकी ऐसी इस लड़की ने तुम्हारा जयशील गहना दहसे गिरता हुआ आकाश से गिरते हुए तारे की नाईं देखकर अतिकुतूहल से लेलिया" ॥

८४—"सो यह तुम्हारी जांघ तक लटकती हुई भुजा को प्रत्यंचा के चिह्न से आभूषित को, भूमि की रक्षा में अर्गला समान बलवान् को, फिर प्राप्त हो,, ॥

८५—"और हे राजा ! मेरी इस छोटीबहन कुमुदवती को, तुम्हारे चरणों की नित्यसेवा से अपना अपराध मिटाने की इच्छावती को, तुम लेने के लिये योग्य हो" ॥

---

८२ पुत्र भी आत्माही है ॥

८६—इत्यूचिवानुपहृताभरणः क्षितीशं।
श्लाघ्यो भवान् स्वजन इत्यनुभाषितारम्।
संयोजयां विधिवदास समेतबन्धुः।
कन्यामयेन कुमुदः कुलभूषणेन ॥

८७—तस्याः स्पृष्टे मनुजपतिना साहचर्य्याय हस्ते।
माङ्गल्योर्णावलयिनि पुरः पावकस्योच्छिखस्य।
दिव्यस्तूर्य्यध्वनिरुदचरद्व्यश्नुवानो दिगन्तान्।
गन्धोदग्रं तदनु ववृषुः पुष्पमाश्चर्य्यमेघाः ॥

८८—इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं।
लब्ध्वाबन्धुं तमपि च कुशः पञ्चमं तक्षकस्य।
एकः शङ्कां पितृवधरिपोरत्यजद्वैनतेयात्।
शान्तव्यालामवनिमपरः पौरकान्तः शशास ॥

इति श्रीरघुवंशे षोडशः सर्गः ॥

८६—इसप्रकार कहकर आभूषण फेरनेवाले कुमुद ने, बान्धवों सहित ने, "तुम बड़ाई के योग्य सम्बन्धी हो" ऐसा कहते हुए राजा को कन्यारूपी कुलभूषण विधिपूर्वक भेट किया॥

८७—धर्मआचरणनिमित्त उसका मंगलीक ऊनीकंकणवाला हाथ प्रज्वलित अग्नि के सामने राजा के पकड़ने पर दिशाओं में पूरी हुई दिव्य तुरहियों की ध्वनि हुई तिस पीछे अद्भुत बादलों ने अच्छे सुगन्धित फूल बरसाए॥

८८—इस भांति नाग ने त्रिभुवनगुरु के पुत्र को, जानकी के बेटे को, और कुशने भी तक्षकके उस पांचवें (बेटे) को सम्बन्धी बनाकर एकने बापके मारनेवाले गरुड नाम वैरीका डर छोड़ा दूसरे प्रजाकान्त ने शान्तसर्पोंवाली पृथ्वीपर राज्य किया॥

सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ

सप्तदशः सर्गः

अतिथिवृत्तान्तम्

१—अतिथिं नाम काकुत्स्थात् पुत्रमाप कुमुद्वती ।
पश्चिमाद्यामिनीयामात् प्रसादमिव चेतना ॥
२—स पितुः पितृमान् वंशं मातुश्चानुपमद्युतिः ।
अपुनात् सवितेवोभौ मार्गावुत्तरदक्षिणौ ॥

३—तमादौ कुलविद्यानाम् अर्थमर्थविदां वरः ।
पश्चात् पार्थिवकन्यानां पाणिमग्राहयत् पिता ॥

४—जात्यस्तेनाभिजातेन शूरः शौर्य्यवता कुशः ।
अमन्यतैकमात्मानम् अनेकं वशिना वशी ॥

५—स कुलोचितमिन्द्रस्य सहायकमुपेयिवान् ।
जघान समरे दैत्यं दुर्जयं तेन चावधि ॥

६—तं स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती ।
अन्वगात् कुमुदानन्दं शशाङ्कमिव कौमुदी ॥

सत्रहवां सर्ग ॥

अतिथि का वृत्तान्त

१—अतिथि नाम बेटा काकुत्स्थ (कुश) से कुमुद्वती ने पाया, जैसे बुद्धि ने रात के पिछले पहर से उजाला ॥

२—उस भलीभांति शिक्षा किये हुए, अनुपम द्युतिमान् ने माता और पिता दोनों के कुल पवित्र किए, जैसे सूरज ने उत्तर और दक्षिण दोनों मार्ग ॥

३—अर्थज्ञानियों के मुखिया पिता ने उसको पहले कुल विद्याओं का अर्थ ग्रहण कराया पीछे राजाओं की कन्याओं का हाथ ॥

४—उस कुलीन जितेन्द्रिय शूरवीर (पुत्र) से उस कुलीन जितेन्द्रिय शूरवीर कुश ने अपने एक शरीर को अनेक माना ॥

५—कुल की रीति अनुसार इन्द्र की सहायता को जाकर उसने संग्राम में दुर्जय दैत्य को मारा और उसके हाथ से आप मरा ॥

६—सर्पों के राजा कुमुदकी बहन कुमुद्वती उसके पीछे गई, जैसे कुमुदानन्द चन्द्रमा के पीछे चांदनी ॥

---

३ कुलविद्या = त्रयी वार्त्ता आन्वीक्षिकी दण्डनीति ॥

७—तयोर्दिवस्पतेरासीत् एकः सिंहासनार्द्धभाक्।
द्वितीयापि सखी शच्याः पारिजातांशभागिनी॥

८—तदात्मसम्भवं राज्ये मन्त्रिवृद्धाः समादधुः।
स्मरन्तः पश्चिमामाज्ञां भर्त्तुः संग्रामयायिनः॥
९—ते तस्य कल्पयामासुः अभिषेकाय शिल्पिभिः।
विमानं नवमुद्वेदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम्॥

१०—तत्रैनं हेमकुम्भेषु सम्भृतैस्तीर्थवारिभिः।
उपतस्थुः प्रकृतयः भद्रपीठोपवेशितम्॥

११—नदद्भिः स्निग्धगम्भीरं तूर्य्यैराहतपुष्करैः।
अन्वमीयत कल्याणं तस्याविच्छिन्नसन्तति॥
१२—दूर्वायवांकुरप्लक्ष-त्वगभिन्नपुटोत्तरान्।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान् स भेजे नीराजनाविधीन्॥
१३—पुरोहितपुरोगास्तं जिष्णुंजैत्रैरथर्वभिः।
उपचक्रमिरे पूर्व्वम् अभिषेक्तुं द्विजातयः॥

१४—तस्यौघमहती मूर्ध्नि निपतन्ती व्यरोचत।
सशब्दमाभिषेकश्रीः गङ्गेव त्रिपुरद्विषः॥

---

१२ अभिन्नपुटोत्तरान्=बालपल्लवाः प्रधानानि येषु तान्॥

७—उन में से एक इन्द्र के आधे सिंहासन का भोगनेवाला हुआ दूसरी भी पारिजात के अंश में भाग लेनेवाली इन्द्राणी की सखी हुई ॥

८—संग्रामको जातेहुए स्वामीकी पिछली आज्ञा सुन करके बूढ़े मन्त्रियों ने उसके पुत्र को राज्य पर बिठाया ॥

९—उन्हों ने उस के अभिषेकनिमित्त शिल्पकारों से चार खम्भों के बीच में वेदी सहित नया मण्डप बनवाया ॥

१०—वहां सोने के कलशों में भरे हुए तीर्थजल लेलेकर मन्त्री उस भद्रपीठ (सिंहासन) पर बैठे हुए के सन्मुख गए ॥

११—मधुर गम्भीर ध्वनि से बजती हुई तुरहियों और मृदङ्गों ने उसका अटल कल्याण अनुमान कराया ॥

१२—दूब और यवांकुर और बड़ की छाल और महुए की कलियों सहित आरती उसने जाति के बूढ़ों से पाई ॥

१३—पुरोहित को आगे लिए हुए ब्राह्मणों ने पहले उस जयशील को जीत के देनेवाले अथर्व (मन्त्रों) से अभिषेक कराना आरम्भ किया ॥

१४—उसके शिरपर शब्दसहित गिरती हुई बड़े प्रवाहवाली अभिषेक की श्री (धारा) शोभायमान हुई मानो त्रिपुरारि (महादेव) के ऊपर गङ्गा ॥

---

९ शिल्पकार = कारीगर ॥
१० भद्रपीठ = सिंहासन विशेष ॥

१५-स्तूयमानः क्षणे तस्मिन् अलक्ष्यत स वन्दिभिः।
प्रवृद्ध इव पर्ज्जन्यः सारङ्गैरभिनन्दितः॥

१६-तस्य सन्मन्त्रपूताभिः स्नानमद्भिः प्रतीच्छतः।
ववृधे वैद्युतस्याग्नेः वृष्टिसेकादिव द्युतिः॥

१७-स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु।
यावत्तैषां समाप्येरन् यज्ञाः पर्य्याप्तदक्षिणाः॥

१८-ते प्रीतमनसस्तस्मै यामाशिषमुदैरयन्।
सा तस्य कर्म्मनिर्वृत्तैः दूरं पश्चात्कृता फलैः॥

१९-बन्धच्छेदं स बद्धानां वधार्हाणामवध्यताम्।
धुर्य्याणाञ्च धुरोमोक्षम् अदोहञ्चादिशद्गवाम्॥

२०-क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः।
लब्धमोक्षास्तदादेशात् यथेष्टगतयोऽभवन्॥

२१-ततः कक्ष्यान्तरन्यस्तं गजदन्तासनं शुचि।
सोत्तरच्छदमध्यास्त नेपथ्यग्रहणाय सः॥

१५—उस समय बन्दीजनों का स्तुति किया हुआ वह चातकों के सराहे हुए मेघ के समान बढ़ताहुआ दिखाई दिया ॥

१६—उस मंत्रों के पवित्र जलों से न्हाते हुए की कान्ति बढ़ी जैसे मेह के भिगोने से बिजली की अग्नि ॥

१७—अभिषेक के अन्त पर उसने स्नातकों को इतना धन दिया जिससे उनके पूरी दक्षिणा वाले यज्ञ समाप्त हुए ॥

१८—उन प्रसन्न मनवालों ने जो असीस उसको दी सो उसके कर्मों से सिद्ध किए हुए फलों ने बहुत पीछे करदी ॥

१९—उसने बन्धुओं के बन्धन कटने को, बध योग्यों के अबध्य करने को, और बोझ उठानेवालों का बोझ छुड़ाने को, और गायों का दूध न दुहा जाने को, आज्ञा दी ॥

२०—पिंजरों के बासी तोते इत्यादि उसके खेल के पक्षी भी उसकी आज्ञा से छुटकारा पाकर मनमाना फिरने वाले हुए ॥

२१—तिस पीछे राजभवन के भीतर रक्खे हुए, अच्छा बिछोना बिछे हुए, हाथी दांत के उज्जल आसन पर वह वस्त्र आभूषण पहन्ने को बैठा ॥

---

१७ स्नातक=यज्ञ करानेवाला गृहस्थी ब्राह्मण ॥

१८ अर्थात् पहले कर्म्मों के फलों ने नई असीस पीछे डाल दी ॥

२२—तं धूपाश्यानकेशान्तं तोयनिर्णिक्तपाणयः।
आकल्पसाधनैस्तैस्तैः उपसेदुः प्रसाधकाः॥

२३—तेऽस्यमुक्तागुणोन्नद्धं मौलिमन्तर्गतस्रजम्।
प्रत्यूपुः पद्मरागेण प्रभामण्डलशोभिना॥

२४—चन्दनेनाङ्गरागं च मृगनाभिसुगन्धिना।
समापय्य ततश्चक्रुः पत्रं विन्यस्तरोचनम्॥

२५—आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान्।
आसीदतिशयप्रेक्ष्यः स राज्यश्रीवधूवरः॥

२६—नेपथ्यदर्शिनश्छाया तस्यादर्शे हिरण्मये।
विरराजोदिते सूर्य्ये मेरौकल्पतरोरिव॥

२७—सराजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्त्तिभिः।
ययावुदीरितालोकः सुधर्म्मानवमां सभाम्॥

२८—वितानसहितं तत्र भेजे पैतृकमासनम्।
चूडामणिभिरुद्घृष्टपादपीठं महीक्षिताम्॥

२२—उस धूप से सोंधाए हुए केशों वाले को भांति भांति के सिंगारों से सिंगार के आचारजों ने, जल से हाथ धोए हुओं ने, सजाया ॥

२३—उन्हों ने मोतियों की माला से खिंचे हुए, फूल की माला से गुथे उसके जूड़े पर प्रभामंडल को शोभित करनेवाली पद्मराग मणि बांधी ॥

२४—और कस्तूरी की सुगन्धि मिले हुए चन्दन से अंगराग करा कर पीछे गोरोचन सहित पत्ररचना की ॥

२५—मोती का आभूषण पहने हुए, फूलमाला धारण किए हुए, हंस चिन्ह वस्त्र ओढ़े हुए वह राज श्री रूपी दुलहिन का दूल्हा अत्यन्त दिखनोट हुआ ॥

२६—उस सिंगार देखनेवाले की छाया सोने के दर्पन में (ऐसी) दीखी मानो सूरज उदय के समय सुमेरु में कल्पवृक्ष की ॥

२७—हाथों में राज चिह्न (चमर छत्र इत्यादि) लिएहुए सेवकों से जय जय होता हुआ वह देवताओं कीसी सभा में गया ॥

२८—वहां बाप दादे के सिंहासन पर, चंदोवा तने हुए पर, राजाओं के शिर की मणियों से घिसी हुई पीढ़ी वाले पर, बैठा ॥

---

२२ सिंगार के आचारज अर्थात् सिंगार करानेवाले ॥

२४ पत्ररचना अर्थात् शरीर में तिलक छाप लगाना ॥

२५ हंसचिह्न एक प्रकार का कपड़ाहै ॥

२८ पीढ़ी=जिसपर पांव रख कर सिंहासन पर चढ़ते हैं ॥

२९—शुशुभे तेन चाक्रान्तं मंगलायतनं महत्।
श्रीवत्सलक्षणं वक्षः कौस्तुभेनेव केशवम्॥

३०—बभौ भूयः कुमारत्वादधिराज्यमवाप्य सः।
रेखाभावादुपारूढः सामग्र्यमिव चन्द्रमाः॥

३१—प्रसन्नमुखरागं तं स्मितपूर्व्वाभिभाषिणम्।
मूर्त्तिमन्तममन्यन्त विश्वासमनुजीविनः॥

३२—स पुरं पुरुहूतश्रीः कल्पद्रुमनिभध्वजाम्।
क्रममाणश्चकार द्यां नागेनैरावतौजसा॥

३३—तस्यैकस्योच्छ्रितं छत्रं मूर्ध्नि तेनामलत्विषा।
पूर्व्वराजवियोगौष्म्यं कृत्स्नस्य जगतो हृतम्॥

३४—धूमादग्नेः शिखाः पश्चात् उदयादंशवो रवेः।
सोऽतीत्य तेजसां वृत्तिं सममेवोत्थितो गुणैः॥

३५—तं प्रीतिविशदैर्नेत्रैः अन्वयुः पौरयोषितः।
शरत्प्रसन्नैर्ज्योतिर्भिः विभावर्य्य इव ध्रुवम्॥

२९—और उससे भरा हुआ बड़ा मंगलस्थान शोभायमान हुआ, जैसे कौस्तुभ मणि से (भराहुआ) विष्णु का श्रीवत्स चिह्नवाला वक्षस्थल ॥

३०—कुमारपन से अनन्तर अधिराजपन पाकर वह अधिक कान्तिमान हुआ, जैसे रेखापन से पूर्णता को पहुंचा हुआ चन्द्रमा ॥

३१—उस उज्जल कान्ति मुखवाले को, मुस्कान सहित बोलने वाले को, सेवकों ने मूर्तिमान विश्वास (ही) माना ॥

३२—उस इन्द्र समान श्रीमान ने ऐरावत समान बलवान हाथी पर चलकर कल्पद्रुम समान ध्वजावाली नगरी (अयोध्या) को स्वर्ग बना दिया ॥

३३—उस अकेले के शिरपर उज्जल छत्र ने उठ कर अगले राजा के वियोग का सन्ताप सब जगत् के लिए मिटा दिया ॥

३४—धुएं से पीछे आग की लोय और उदय से पीछे सूरज की किरण उठती हैं, वह तेजस्वियों की वृत्ति उल्लंघन करके गुणों के साथही उठा ॥

३५—प्यार की उज्जल दृष्टियों से पुर की स्त्रियां उस के पीछे गईं (अर्थात् दूरतक उसको चाव से देखती रहीं) जैसे ध्रुव के पीछे शरद के निर्मल तारों सहित रात्री ॥

---

२९ श्रीवत्स एक प्रकार का चिह्न मंदिर में होताहै और विष्णु की छाती पर एक चिह्न है उसका नाम भी श्रीवत्स है ॥

३६—अयोध्यादेवताश्चैनं प्रशस्तायतनार्च्चिताः।
अनुदध्युरनुध्येयं सान्निध्यैः प्रतिमागतैः ॥

३७—यावन्नाश्यायते वेदिः अभिषेकजलाप्लुता।
तावदेवास्य वेलान्तं प्रतापः प्राप दुःसहः ॥

३८—वशिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सायकास्तस्य धन्विनः।
किन्तत् साध्यं यदुभये साधयेयुर्न संगताः ॥

३९—स धर्म्मस्थसखः शश्वत् अर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयम्।
ददर्श संशयच्छेद्यान् व्यवहारानतन्द्रितः ॥
४०—ततःपरमभिव्यक्त सौमनस्यनिवेदितैः।
युयोज पाकाभिमुखैः भृत्यान् विज्ञापनाफलैः ॥

४१—प्रजास्तद्गुरुणा नद्यः नभसेव विवर्द्धिताः।
तस्मिंस्तु भूयसीं वृद्धिं नभस्येता इवाययुः ॥

४२—यदुवाच न तन्मिथ्या यद्ददौ न जहार तत्।
सोऽभूद्भग्नवतः शत्रून् उद्धृत्य प्रतिरोपयन् ॥

३६—और अयोध्या के देवताओं ने, पवित्र मन्दिरों में पूजन होते हुओं ने, प्रतिमागत होकर समीपता से उस अनुग्रह योग्य पर अनुग्रह किया॥

३७—जब तक अभिषेक के जल से भीगी हुई वेदी न सूखी थी तब तक उसका कठिन प्रताप समुद्र के तट तक पहुंच गया॥

३८—वशिष्ठ गुरू के मन्त्र और उस धनुषधारी के बाण इन दोनों के इकट्ठे होने पर कौनसी साध्य वस्तु थी जो सिद्ध न हुई॥

३९—उस धर्मज्ञों के सखा ने, आलस रहित ने, अर्थी प्रत्यर्थी के निर्णय योग्य व्यवहार नित्य आप देखे॥

४०—तिस पीछे विनती के फलों से, स्पष्ट प्रसन्नता के जताए हुओं से, पकने के निकट पहुंचे हुए बांछित फलों से सेवकों को मिलाया॥

४१—सावन की नाईं उसके पिता की बढ़ाई हुई प्रजा उस में तो अधिक ही वृद्धि को पहुंची, जैसे वे (नदियां) भादों में॥

४२—जो कहा सो मिथ्या न हुआ जो दे दिया सो फिर न लिया; नियम तोड़नेवाला वह (केवल) वैरियों को उखाड़कर फिर जमाने में हुआ॥

---

४० सेवकों ने जो प्रार्थना की उसका फल उनको दिया॥
४१ उस में अर्थात् उसके राजा होते हुए॥

४३—वयोरूपविभूतीनाम् एकैकं मदकारणम्।
तानि तस्मिन् समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः॥

४४—इत्थं जनितरागासु प्रकृतिष्वनुवासरम्।
अक्षोभ्यः स नवोऽप्यासीत् दृढमूल इव द्रुमः॥

४५—अनित्याः शत्रवो बाह्याः विप्रकृष्टाश्च ते यतः।
अतः सोऽभ्यन्तरान् नित्यान् षट् पूर्वमजयद्रिपून्॥

४६—प्रसादाभिमुखे तस्मिन् चपलापि स्वभावतः।
निकषे हेमरेखेव श्रीरासीदनपायिनी॥

४७—कातर्य्यं केवला नीतिः शौर्य्यं श्वापदचेष्टितम्।
अतः सिद्धिं समेताभ्याम् उभाभ्यामन्वियेष सः॥

४८—न तस्य मण्डले राज्ञः न्यस्तप्रणिधिदीधितेः।
अदृष्टमभवत् किञ्चित् व्यभ्रस्येव विवस्वतः॥

४९—रात्रिन्दिवविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम्।
तत् सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः॥

५०—मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः।
स जातु सेव्यमानोऽपि गुप्तद्वारो न सूच्यते॥

४३—यौवन और रूप और प्रभुता ये एक एक मद करानेवाले हैं; उसमें इन सबने (इकट्ठा होकर भी) उसके मनको गर्वित न किया ॥

४४—इस प्रकार दिन पर दिन प्यार करती हुई प्रजा में वह नया भी स्थिर हुआ, जैसे नीमन जड़वाला वृक्ष ॥

४५—इसलिए कि बाहर के वैरी दूर और अनित्य थे उसने पहले नित्य अन्तर घटबासी (काम क्रोधादि) छः वैरी जीते ॥

४६—उस हंसमुख में स्वभाव की चपला भी लक्ष्मी अचल हुई, जैसे कसौटी में सोने की लकीर ॥

४७—निरी नीति कायरता है और (निरी) सूरता सिंघ इत्यादि पशुओं का स्वभाव है; इसलिये उसने इन दोनों के संयोग से सिद्धि चाही ॥

४८—चारों ओर दूत रूपी किरण छोड़नेवाले उस राजा को मण्डल में कुछ गुप्त न रहा, जैसे बिना बादलोंवाले सूरज को ॥

४९—रात दिन के विभागों (पहर घड़ी इत्यादि) में जो काम राजाओं को कहे हैं उस संशय मिटे हुए ने नियम से किए ॥

५०—उसका मता प्रति दिन मन्त्रियों के साथ होता था (परन्तु) नित्य सेवा होने पर भी वह गुप्तद्वार (मन्त्र) कभी प्रकट न हुआ ॥

---

४४ नया अर्थात् थोड़ी अवस्थावाला ॥
५० गुप्त द्वार = चिह्नों से प्रकट न होनेवाला ॥

५१—परेषु स्वेषु च क्षिप्तैः अविज्ञातपरस्परैः।
सोऽपसर्पैर्जजागार यथाकालं स्वपन्नपि ॥

५२—दुर्गाणिदुर्ग्रहाण्यासन् तस्य रोद्धुरपि द्विषाम्।
न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद्गिरिगुहाशयः ॥

५३—भव्यमुख्याःसमारम्भाः प्रत्यवेक्षा निरत्ययाः।
गर्भशालिसधर्म्माणः तस्य गूढं विपेचिरे ॥

५४—अपथेन प्रववृते न जातूपचितोऽपिसः।
वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानंलवणाम्भसः ॥
५५—कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः।
यस्य कार्य्यः प्रतीकारः स तन्नैवोदपादयत् ॥

५६—शक्येष्वेवाभवद् यात्रा तस्य शक्तिमतः सतः।
समीरणसहायोऽपि नाम्भःप्रार्थी दवानलः ॥

५७—न धर्म्ममर्थकामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ।
नार्थं कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ॥

५८—हीनान्यनुपकर्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्व्वते।
तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितान्यतः ॥

५१—अपनों और परायों में भेजे हुए दूतोंसे, आपस में एक दूसरे के न जाने हुओं से, वह उचित समय पर सोता हुआ भी जगता था ॥

५२—उस बैरियों पर चढ़ने वाले के भी अटूट गढ़ थे; हाथी का मारनेवाला सिंह पहाड़ की गुफा में सोता है सो भय से नहीं (किन्तु स्वभाव से है)

५३—उसके कल्याण सहित और बाधा रहित उद्योग विचार कर किए हुए, गर्भ में पकनेवाले धान के स्वभावी, गुप्त पकते थे ॥

५४—वैभव पाकर भी वह कुमार्ग में न गया बढ़ाव में समुद्र का निकलना नदी मुख से ही होताहै ॥

५५—यद्यपि प्रजा की अरुचि तुरन्त मिटाने को समर्थ भी था, तौ भी जिस कार्य्य का मिटाना अवश्य है वह उसने उत्पन्नही न होने दिया ॥

५६—सामर्थमान होते हुए भी उसकी चढ़ाई निबलों ही पर हुई, पवन सहाई होते हुए भी दावानल पानी को नहीं ढूंढ़ती ॥

५७—तीनों के उस समान देखनेवाले ने अर्थ और काम से धर्म को बाधा न पहुंचाई और न उस (धर्म) से उन दोनों को और न कामसे अर्थको न अर्थ से काम को ॥

५८—हीन निरोपकारी होते हैं और बलवान् उपद्रव करते हैं, इस लिये उसने मध्यम शक्तिवाले मित्र बनाए ॥

---

५६ अग्नि कितनीही बलवान् हो पानी को जलाने नहीं जाती काठ और ईंधनही को जलाती है ॥

५९—परात्मनोः परिच्छिद्यशक्त्यादीनांबलाबलम्।
ययावेभिर्बलिष्ठश्चेत् परस्मादास्त सोऽन्यथा॥

६०—कोशेना श्रयणीयत्वम् इति तस्यार्थ संग्रहः।
अम्बुगर्भोहि जीमूतः चात्रकै रभिनन्द्यते॥

६१—परकर्म्मापहः सोऽभूत् उद्यतः स्वेषु कर्म्मसु।
आवृणोदात्मनो रन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून्॥

६२—पित्रा संवर्द्धितो नित्यं कृतास्त्रः साम्परायिकः।
तस्य दण्डवतो दण्डःस्वदेहान्न व्यशिष्यत॥

६३—सर्पस्येव शिरोरत्नं नास्य शक्तित्रयं परः।
स चकर्ष परस्मात् तत् अयस्कान्त इवायसम्॥

६४—वापीष्विव स्रवन्तीषु वनेषूपवनेष्विव।
सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चेरुर्वेश्मास्विवाद्रिषु॥

६५—तपो रक्षन् सविघ्नेभ्यः तस्करेभ्यश्च सम्पदः।
यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंशभाक्॥

५९—अपनी और बैरी की शक्ति इत्यादि का बल अबल बिचार कर जो उसने अपने को इन बातों में बैरी से बली पाया तौ चढ़ाई की नहीं तौ बैठ रहा ॥

६०—"कोश से आश्रय होता है" यह उसके धन इकट्ठा करने का हेतु था; जल भरे बादलही को पपीहा सराहता है ॥

६१—बैरी के उद्योगों का नाश करता हुआ वह अपने उद्योगों में प्रवृत्तथा बैरियों पर छिद्र द्वारा प्रहार करता हुआ अपने छिद्रों को छुपाए था ॥

६२—पिता की नित्य पुष्ट की हुई, अस्त्र सीखी हुई, युद्ध में समर्थ, सेना उस दण्डधारी की देहसे भिन्न न थी (अर्थात् वह सेना को अपनी देहके समान रखताथा) ॥

६३—सांप के शिर की मणि समान उस की तीन शक्तियों को बैरी न खैंच सका, (परन्तु) बैरी से उसने वे खैंच लीं जैसे चुम्बक पत्थर ने लोहा ॥

६४—बावड़ियों की नाईं नदियों में, उपवनों की नाईं वनों में, अपने घरों की नाईं पहाड़ों में बणिक लोग मन माना फिरे ॥

६५—तप को विघ्नों से और धन को चोरों से रक्षा करते हुए उसको आश्रमोंने और वर्णों ने भी वित्तके अनुसार छठा भाग पानेवाला किया ॥

---

६० जिसके पास धन हो उसके आसरे तो बहुत होते हैं ॥

६१ छिद्र = निबल बात ॥

६५ तप की रक्षा की इससे चार आश्रमवालों ने तपमें भागदिया और धन की रक्षा इससे चार बर्णवालों ने धन में भाग दिया ॥

६६—खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः शस्यं वनैर्गजान् ।
दिदेश वेतनं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः ॥

६७—स गुणानां बलानाञ्च षण्णां षण्मुखविक्रमः ।
बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु वस्तुषु ॥

६८—इति क्रमात् प्रयुञ्जानः राजनीतिं चतुर्विधाम् ।
आतीर्थादप्रतीघातं स तस्याः फलमानशे ॥

६९—कुटयुद्धविधिज्ञेऽपि तस्मिन् सन्मार्गयोधिनि ।
भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी ॥

७०—प्रायः प्रतापभग्नत्वात् अरीणां तस्य दुर्लभः ।
रणो गन्धद्विपस्येव गन्धभिन्नान्यदन्तिनः ॥

७१—प्रवृद्धो हीयतेचन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः ।
स तु तत्समवृद्धिश्च न चाभूत् ताविव क्षयी ॥

७२—सन्तस्तस्याभिगमनात् अत्यर्थं महतः कृशाः ।
उदधेरि व जीमूताः प्रापुर्दा तृत्वमर्थिनः ॥

---

६८ आतीर्थात्=मन्त्र्या द्यष्टा दशात्मक तीर्थपर्य्यन्तम् ॥

६६—खानों से रत्न खेतों से धान बनों से हाथी उत्पन्न करके भूमि ने उसको रक्षा के सदृश ही पलटा दिया॥

६७—वह स्वामिकार्त्तिक समान पराक्रमी सिद्ध होने योग्य बातों में छः गुणों और बलों का उचित बर्त्ताव जानने वाला हुआ॥

६८—इस भांति मन्त्री इत्यादि में चार प्रकार की राजनीति को क्रम से बर्त्तते हुए उसने उसका फल बिना विघ्न पाया॥

६९—कपट युद्ध की रीति जानतेहुए भी उस धर्मयुद्ध करने वाले में बीरगामिनी जयश्री ने अभिसारिका की रीति बर्त्ती॥

७०—प्रतापही से बैरियों के नष्ट होजाने के कारण उसको संग्राम बहुधा दुर्लभ होगया; जैसे मदकी गन्ध से दूसरे हाथियों के भगानेवाले मद गन्धी हाथी को॥

७१—बहुत बढ़ने पर चन्द्रमा क्षीण होता है, और ऐसे ही समुद्र भी, परन्तु वह उनके समान बढ़ती को पहुंचा हुआ उनकी नाईं क्षीण न हुआ॥

७२—अति दरिद्री याचक सन्त उस ऐश्वर्य्यवान् के समीप जाने से दाता होगए, जैसे समुद्र के (पास जाने) से बादल॥

---

६६ पृथ्वीने रक्षा के पलटे में रत्न इत्यादि उसको दिए॥

६७ छःगुणः सन्धि विग्रह इत्यादि और बल मूल भृत्यादि॥

६९ अभिसारिका = जो स्त्री अपने पति से मिलने को आप जाय॥

७३–स्तूयमानः स जिह्राय स्तुत्यमेव समाचरन्।
तथापि ववृधे तस्य तत्कारिद्वेषिणो यशः॥

७४–दुरितं दर्शनेन घ्नन् तत्त्वार्थेन नुदंस्तमः।
प्रजाः स्वतन्त्रयाञ्चक्रे शश्वत् सूर्य्य इवोदितः॥

७५–इन्दोरगतयः पद्मे सूर्य्यस्य कुमुदेंऽशवः।
गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम्॥

७६–पराभिसन्धानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितम्।
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्यमेव बभूव तत्॥

७७–एवमुद्यन् प्रभावेण शास्त्रनिर्द्दिष्टवर्त्मना।
वृषेव देवो देवानां राज्ञां राजा बभूव सः॥

७८–पञ्चमं लोकपालानाम् ऊचुः साधर्म्म्ययोगतः।
भूतानां महतां षष्ठम् अष्टमं कुलभूभृताम्॥

७३—होने पर वह प्रशंसा ही योग्य काम करता हुआ लजाया, तौ भी प्रशंसा करनेवालों के उस द्वेषी का यश बढ़ा ॥

७४—उदित सूरज की नाईं दर्शन से पाप को तत्व ज्ञान से अज्ञान को मिटाते हुए ने प्रजाको अत्यन्त स्वाधीन किया ॥

७५—चन्द्रमा की किरण कमल में जानेवाली नहीं होतीहैं न कमोदिनी में सूरज की; उस गुणी के गुणों ने बैरी पक्ष में भी जगह पाई ॥

७६—उस अश्वमेध निमित्त विजय चाहनेवाले के काम में यद्यपि बैरी का छलना मुख्य था (तौभी) वह (काम) धर्म सहित ही हुआ ॥

७७—इस प्रकार शास्त्र के दिखलाए हुए मार्ग के प्रभाव से बढ़ता हुआ वह राजाओं का राजा हुआ, जैसे देवताओं का देवता इन्द्र ॥

७८—समान धर्मा होने के कारण उसको लोकपालों का पांचवां, महाभूतों का छठा, कुल पहाड़ों का आठवां कहते हैं ॥

---

७६ बैरी को छल से भी जीतना नीति है परन्तु इस राजाने धर्म ही से जीते छल से नहीं ॥

७८ मुख्य लोकपाल चार हैं इन्द्र यम वरुण कुबेर ॥ कुल पहाड़ सात हैं महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमत् ऋक्ष विन्ध्य पारियात्र ॥

७९—दूरापवर्जि त च्छत्रैः तस्याज्ञां शासनार्पिताम्।
दधुः शिरोभिर्भूपालाः देवाः पौरन्दरीमिव ॥

८०—ऋत्विजः स तथानर्च्च दक्षिणाभिर्महाक्रतौ।
यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च ॥

८१—इन्द्राद् वृष्टिर्नियमितगदोद्रेकवृत्तिर्यमोऽभूत्।
यादोनाथः शिवजलपथःकर्म्मणे नौचराणाम्।
पूर्व्वापेक्षी तदनु विदधे कोषवृद्धिं कुवेरः।
तस्मिन् दण्डोपनतचरितंभेजिरेलोकपालाः ॥

इतिसप्तदशः सर्गः

७९—राजाओं ने उसकी मर्यादा निमित्त दीहुई आज्ञा दूर किए हुए छत्रवाले सिरों से मानी, जैसे देवताओं ने इन्द्र की॥

८०—ऋत्विजों को उसने अश्वमेध में दक्षिनाओं से ऐसा सत्कार किया कि उसका और धनद (कुबेर) का नाम एक होगया॥

८१—इन्द्र से वर्षा हुई, रोग की बढ़ती का रोकने वाला यम हुआ, नाव चलाने वालों के कार्य्य निमित्त जल मार्ग का सुगम करनेवाला बरुण हुआ, तिस पीछे पुरखों की महिमा जाननेवाले कुबेर ने कोष बढ़ाया; (मानों) लोकपालों ने उस में दण्ड से वशी भूत किए हुओं की रीति वर्ती॥

—❀—

सत्रहवां सर्ग समाप्त हुआ

---

७९ दूर किए हुए छत्रवाले सिर अर्थात् जिन सिरों का छत्र उतर गया था=कोष अर्थात् खजाना॥

अष्टादशः सर्गः ।

अयोध्याधिपानांवंशावली ॥

१--स नैषधस्यार्थपतेः सुतायाम् ।
उत्पादयामास निषिद्धशत्रुः ।
अनूनसारं निषधान्नगेन्द्रात् ।
पुत्रं यमाहुर्निषधाख्यमेव ॥

२--तेनोरुवीर्य्येण पिता प्रजायै ।
कल्पिष्यमाणेन ननन्द यूना ।
सुवृष्टियोगादिव जीवलोकः ।
शस्येन सम्पत्तिफलोन्मुखेन ॥

३--शब्दादि निर्विश्य सुखं चिराय ।
तस्मिन् प्रतिष्ठापितराजशब्दः ।
कौमुद्वतेयः कुमुदावदातैः ।
द्यामर्ज्जितां कर्म्मभिरारुरोह ॥

४--पौत्रः कुशस्यापि कुशेशयाक्षः ।
ससागरां सागरधीरचेताः ।
एकातपत्त्रां भुवमेकवीरः ।
पुरार्गलादीर्घभुजो बुभोज ॥

अठारहवां सर्ग।

अजुध्या के राजाओं की वंशावली॥

१—नैषधराज की बेटी में उस निषिद्धशत्रु ने निषध पर्वत के समान बलवान बेटा उत्पन्न किया, जिसका नाम निषधही कहते हैं॥

२—उस महापराक्रमी युवान से, प्रजा निमित्त युवराज किये हुए से पिता हर्षवान हुआ, जैसे अच्छी बरसा के योग में पकावट को पहुंचे हुए धान से प्रजा॥

३—शब्द स्पर्श इत्यादि सुख बहुत काल भोग कर कुमुद्वती का पुत्र उस (बेटे में) राज शब्द स्थापित करके कुमुद समान निर्मल कर्म्मों से पाए हुए स्वर्ग को गया॥

४—कुश के पोते ने भी, कुशेशय समान नेत्रवाले ने, समुद्र समान गम्भीर बुद्धी ने, पुर की अर्गला समान बड़ी भुजावाले ने, सागरों सहित पृथ्वी एक छत भोगी॥

---

१ निषिद्ध=शत्रु वैरियों का जीतने वाला॥

३ कुमुद=कमल॥

४ कुशेशय=कमल॥

५—तस्यानलौजास्तनयस्तदन्ते।
वंशश्रियं प्राप नलाभिधानः।
यो नड्वलानीव गजः परेषां।
बलान्यमृद्नान्नलिनाभवक्त्रः॥
६—नभश्चरैर्गीतयशाः स लेभे।
नभस्तलश्यामतनुं तनूजम्।
ख्यातं नभःशब्दमयेन नाम्ना।
कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम्॥
७-तस्मै विसृज्योत्तरकोशलानां।
धर्मोत्तरस्तत् प्रभवेप्रभुत्वम्।
मृगैरजर्य्यं जरसोपदिष्टम्।
अदेह बन्धाय पुनर्बबन्ध॥
८—तेन द्विपानामिव पुण्डरीकः।
राज्ञामजय्योऽजनिपुण्डरीकः।
शान्ते पितर्य्याहृतपुण्डरीका।
यं पुण्डरीकाक्षमिव श्रिता श्रीः॥

५—उसके अनल समान तेजस्वी नल नाम बेटे ने उससे पीछे वंश की श्री पाई, जिस नलिन कान्ति मुखवाले ने बैरियों की सेना तोड़ी, मानों हाथी ने नरसल ॥

६—उस नभचरों के गाए हुए यशवाले ने नभस्तल समान श्याम शरीर नभ नाम बेटा नभस् महीने की नाईं प्रजाओं का प्यारा पाया ॥

७—उत्तर कोशल देशों का वह राज्य उस सामर्थवान को देकर उस धर्मोत्तर ने फिर देह बन्धन न होने के लिये बुढ़ापे की दिखलाई हुई सङ्गति मृगों से बांधी ॥

८—उसने हाथियों में पुण्डरीक के समान, राजाओं में अजित, पुण्डरीक नाम बेटा पाया जिस को पिता के शान्त होने पर हाथ में पुण्डरीक लेनेवाली लक्ष्मी ने पुण्डरीकाक्ष के समान सेवन किया ॥

---

५ अनल=अग्नि ॥ नलिनकान्त=कमल की शोभा ॥

६ नभस्तल आकाश को कहते हैं और नभससामन महीने का नामहै ॥ नभचर गन्धर्व इत्यादि आकाशमें चलनेवालों को कहते हैं ॥

७ धर्मोत्तर=धर्म को उत्तम मान्नेवाला ॥

८ पुण्डरीक नाम एक दिग्गज काहै और कमल को भी पुण्डरीक कहते हैं और पुण्डरीकाक्ष नाम विष्णु काहै ॥

९ स क्षेमधन्वानममोघधन्वा।
पुत्रं प्रजाक्षेमविधानदक्षम्।
क्ष्मां लम्भयित्वा क्षमयोपपन्नं।
वने तपः क्षान्ततरश्चचार॥
१०–अनीकिनीनां समरेऽग्रयायी।
तस्यापि देवप्रतिमः सुतोऽभूत्।
व्यश्रूयतानीकपदावसानं।
देवादि नाम त्रिदिवेऽपि यस्य॥
११–पिता समाराधनतत्परेण।
पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन।
पुत्रस्तथैवात्मजवत्सलेन।
स तेन पित्रा पितृमान् बभूव॥
१२–पूर्वस्तयोरात्मसमे चिरोढाम्।
आत्मोद्भवे वर्णचतुष्टयस्य।
धुरं निधायैकनिधिर्गुणानां।
जगाम यज्वा यजमानलोकम्॥
१३–वशीसुतस्तस्य वशंवदत्वात्।
स्वेषामिवासीत् द्विषतामपीष्टः।
सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं।
माधुर्य्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम्॥

९—उस अमोघ धनुषधारी ने क्षेमधन्वा नाम पुत्र को प्रजा की रक्षा विधिमें समर्थ को, शान्तिमान को, पृथ्वी प्राप्त कराकर (और) अधिक शान्त होकर बन में तप आचरण किया॥

१०—रण में सेनाओं के आगे चलनेवाला, देवताओं के समान, उसका भी पुत्र हुआ जिसका नाम आदि में देव अन्त में अनीक पद लगा हुआ (अर्थात् देवानीक) स्वर्ग में भी सुनागया है॥

११—जैसे उस शुश्रूषावान पुत्र से वह पिता पुत्रवान हुआ ऐसेही वह पुत्र उस पुत्रवत्सल पिता से पितावान हुआ॥

१२—उन में से पहला, गुणों की उत्तम खानि, यज्ञ का करनेवाला, बहुत काल का सहारा हुआ चातुरवर्ण का बोझ अपने तुल्य पुत्र पर रख कर यज्ञ करनेवालों के लोक को गया॥

१३—उसका जितेन्द्री पुत्र मिठबोलेपन के कारण वैरियों को भी अपनों की नाईं प्यारा लगा क्योंकि मीठा बचन एक बार डरे हुए हरिणों के भी पकड़ने को समर्थ होता है॥

१४–अहीनगुर्नाम स गां समग्राम्।
अहीनबाहुद्रविणः शशास।
यो हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वात्।
युवाप्यनर्थैर्व्यसनैर्विहीनः॥
१५–गुरोः स चानन्तरमन्तरज्ञः।
पुंसां पुमानाद्य इवावतीर्णः।
उपक्रमैरस्खलितैश्चतुर्भिः।
चतुर्दिगीशश्चतुरो बभूव॥
१६–तस्मिन् प्रयाते परलोकयात्रां।
जेतर्य्यरीणांतनयंतदीयम्।
उच्चैः शिरस्त्वाज्जितपारियात्रं।
लक्ष्मीः सिषेवे किल पारियात्रम्॥
१७–तस्याभवत् सूनुरुदारशीलः।
शिलः शिलापट्टविशालवक्षाः।
जितारिपक्षोऽपि शिलीमुखैर्यः।
शालीनतामव्रजदीड्यमानः॥
१८–तमात्मसम्पन्नमनिन्दितात्मा।
कृत्वा युवानं युवराजमेव।
सुखानि सोऽभुङ्क्त सुखोपरोधि।
वृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम्॥

१४—उस अहीनगु नाम ने, अहीनबाहु पराक्रमी ने, जो हीन लोगों की संगति से विमुख होने के कारण युवा अवस्था में भी अनर्थ व्यसनों से विहीन था, समस्त पृथ्वी पाली ॥

१५—और पिता से पीछे मनुष्यों के अन्तर की जाननेवाला वह चतुर, आदिपुरुष (विष्णु) की नाईं औतार लिया हुआ, चारों सफल उपायों से चारों दिशा का स्वामी हुआ ॥

१६—कहते हैं कि उस बैरियों के जीतनेवाले के परलोक जाने पर उसके पारियात्र नाम बेटे को, सिर के ऊंचे पन से पारियात्र (नामपर्वत) का तिरस्कार करनेवाले को, लक्ष्मी ने सेवन किया ॥

१७—उसका उदारशील बेटा, शिलापट्ट समान विशाल छातीवाला, शिल नाम हुआ, जिस स्तुतिमान ने शिलीमुखों (बाणों) से बैरी पक्ष का जीतनेवाला होकर भी नम्रता ली ॥

१८—उस बुद्धिसम्पन्न युवान को युवराज करके ही उस अनिन्दित स्वभाववाले ने सुख भोगे कि राजाओं का कर्म बन्धुओं की नाईं सुख उपरोधी (सुख का रोकने वाला) होताही है ॥

---

१४ हीन = छोटा ॥ अहीन = बड़ा ॥ विहीन = सूना ॥
१५ सफल उपाय अर्थात् साम दान दंड भेद ॥
१७ शिलापट्ट = पत्थर की पटिया ॥

१९—तं रागबन्धिष्ववितृप्तमेव।
भोगेषु सौभाग्यविशेषभोग्यम्।
विलासिनीनामरतिक्षमापि।
जरा वृथा मत्सरिणी जहार॥

२०—उन्नाभ इत्युद्गतनामधेयः।
तस्यायथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः।
सुतोऽभवत् पङ्कजनाभकल्पः।
कृत्स्नस्य नाभिर्नृपमण्डलस्य॥

२१—ततः परं वज्रधरप्रभावः।
तदात्मजः संयति वज्रघोषः।
बभूव वज्राकरभूषणायाः।
पतिः पृथिव्याः किल वज्रणाभः॥

२२—तस्मिन् गते द्यां सुकृतोपलब्धां।
तत्सम्भवं शङ्खणमर्णवान्ता।
उत्खातशत्रुं वसुधोपतस्थे।
रत्नोपहारैरुदितैः खनिभ्यः॥

२३—तस्यावसाने हरिदश्वधामा।
पित्र्यं प्रपेदे पदमश्विरूपः।
वेलातटेषूषितसैनिकाश्वं।
पुराविदो यं व्युषिताश्वमाहुः॥

१६—विषय के भोगों में तृप्त हुए विनाही उस (राजा) को, सुघड़ाई के कारण विलासिनियों के भोगने योग्य को, वृथा ईर्षा करनेवाली जरा ने स्त्री व्यवहार में असमर्थ होकर भी जीत लिया ॥

२०—उसका बेटा उन्नाभ नाम करके प्रसिद्ध, उन्नत से विरुद्ध (अर्थात् गम्भीर) नाभिवाला, कमलनाभ की नाईं समस्त राजाओं के मण्डल की नाभि हुआ ॥

२१—कहते हैं कि उस्से पीछे उसका बज्रनाभ बेटा, बज्रधारी (इन्द्र) के समान तेजस्वी, संग्राम में बज्र समान शब्द करनेवाला, बज्रखानिरूपी आभूषनोंवाली पृथ्वी का स्वामी बना ॥

२२—उसके सुकर्मों से पाए हुए स्वर्ग में जाने पर समुद्र की सीमावाली पृथ्वी ने उसके शङ्खन नाम बेटे को, बैरियों के उखाड़नेवाले को, खानों से निकले हुए रत्नों की भेटों से सेवन किया ॥

२३—उस्से पीछे पिता की पदवी सूर्य्य समान तेजस्वी अश्विनीकुमार समान रूपवान ने पाई, जिस समुद्र तटपर बसते हुए योद्धाओं और घोड़ोंवाले को बड़ों ने व्युषिताश्व नाम कहा है ॥

---

१६ जरा = बुढ़ापा ॥
२१ बज्रखानि हीरे की खानि ॥

२४—आराध्य विश्वेश्वरमीश्वरेण।
तेन क्षितेर्विश्वसहो विजज्ञे।
पातुं सहो विश्वसखः समग्रां।
विश्वम्भरामात्मजमूर्तिरात्मा॥
२५—अंशे हिरण्याक्षरिपोः स जाते।
हिरण्यनाभे तनये न यज्ञः।
द्विषामसह्यः सुतरां तरूणां।
हिरण्यरेता इव सानिलोऽभूत॥
२६—पिता पितॄणामनृणस्तमन्ते।
यावस्यनन्तानि सुखानि लिप्सुः।
राजानमाजानुविलम्बिबाहुं।
कृत्वा कृती वल्कलवान् बभूव॥
२७—कौशल्य इत्युत्तरकोशलानां।
पत्युः पतङ्गान्वयभूषणस्य।
तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभूत।
नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः॥
२८—यशोभिराब्रह्मसभं प्रकाशः।
सब्रह्मभूयं गतिमाजगाम।
ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे।
ब्रह्मिष्ठमेव स्व तनुप्रसूतम्॥

२४—उस पृथ्वीपति ने विश्वेश्वर का आराधन करके विश्व के प्यारे समस्त विश्वम्भरा की रक्षा के योग्य विश्वसह नाम पुत्र के रूप में आप जन्म लिया ॥

२५—हिरण्याक्ष के वैरी (विष्णु) का अंश हिरण्यनाभ नाम बेटा उत्पन्न होने पर वह नीति का ज्ञानी वैरियों को अधिक असह्य हुआ, जैसे पवन का साथ पाकर हिरण्यरेता (अग्नि) वृक्षों को ॥

२६—पितृयों का अग्रणी अनन्त सुखों का अभिलाषी कृतकृत्य पिता बुढ़ापे में उस अजानबाहु को राजा करके वृक्षों की छाल ओढ़नेवाला बना (अर्थात् बनबासी हुआ) ॥

२७—उस उत्तर कोशलों के स्वामीका, सूर्य वंशके भूषण का, यज्ञ करनेवाले का दूसरे चन्द्रमा की नाईं नेत्रों को सुख देनेवाला कौशल्य नाम औरस पुत्र हुआ ॥

२८—यशों से ब्रह्मलोक तक प्रकाशमान वह (राजा) अपने ब्रह्मिष्ठ नाम ब्रह्मज्ञानी बेटे को निज अधिकार में स्थापित करके ब्रह्मगति को गया (अर्थात् मुक्तहुआ) ॥

---

२४ पुत्र के रूप में जन्म लिया अर्थात् पुत्र जना ॥
२७ औरस पुत्र अर्थात् अपने वर्ण की स्त्री में अपने वीर्य से उत्पन्न होनेवाला पुत्र ॥

२९—तस्मिन् कुलापीडनिभे विपीडं।
सम्यग्महीं शासति शासनाङ्काम्।
प्रजाश्चिरं सुप्रजसि प्रजेशे।
ननन्दुरानन्दजलाविलाक्ष्यः॥

३०—पात्रीकृतात्मा गुरुसेवनेन।
स्पष्टाकृतिः पत्ररथेन्द्रकेतोः।
तं पुत्रिणां पुष्करपत्रनेत्रः।
पुत्रः समारोपयदग्रसंख्याम्॥

३१—वंशस्थितिं वंशकरेण तेन।
सम्भाव्य भावी स सखा मघोनः।
उपस्पृशन् स्पर्शनिवृत्तलौल्यः।
त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप॥

३२—तस्यप्रभानिर्जितपुष्परागं।
पौष्यान्तिथौ पुष्पमसूत पत्नी।
तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां।
पुष्टिं जनाः पुष्य इव द्वितीये॥

३३—महीं महेच्छः परिकीर्य्य सूनौ।
मनीषिणे जैमिनयेऽर्पितात्मा।
तस्मात् सयोगादधिगम्य योगम्।
अजन्मनेऽकल्पत जन्मभीरुः॥

---

३० पत्ररथेन्द्रकेतुः=पक्षिराजो (गरुडो) ध्वजायां यस्य सः विष्णुः इत्यर्थः॥

२९—उस कुलशिरोमणि सपुत्रवान् प्रजानाथ से शासन-चिह्ना पृथ्वी की रक्षा निर्विघ्न और यथोचित होने में आनन्द के आंसू भरी हुई आंखोंवाली प्रजा बहुत काल सुखी रही ॥

३०—बड़ों की सेवा से योग्यता पाए हुए पुत्र (नाम बेटे) ने, साक्षात् गरुड़ध्वजरूप ने, कमलदल नेत्रवाले ने, उसको पुत्रवानों की गिन्ती में मुखिया किया ॥

३१—उस वंश चलानेवाले से वंश की स्थिति मानकर वह विषयों से हटीहुई तृष्णावाला, इन्द्र का सखा होने वाला, त्रिपुष्कर (नामतीर्थ) में स्नान करके देवता-पन को पहुंचा ॥

३२—उसकी पत्नी ने कान्ति से पद्मरागमणि को जीतने वाला पुष्यनाम (बेटा) पूसकी पूर्णमासी के दिन जना उस दूसरे पुष्य (नक्षत्र) समान के उदय में प्रजा ने सब भांति बढ़ती पाई ॥

३३—बेटे को पृथ्वी देकर वह बड़ी इच्छावाला जन्म (लेने) से डराहुआ, ब्रह्मज्ञानी जैमिनी का चेला, उस योगी से योग सीखकर मोक्ष को गया ॥

---

२९ शासनचिह्ना = राज के चिह्न दानखम्भ इत्यादि वाली ॥
३१ इन्द्र का सखा होनेवाला = स्वर्ग जाने का इच्छावान् ॥
३४ सन्धि = मिलाप ॥

३४–ततः परं तत्प्रभवः प्रपेदे।
ध्रुवोपमेयो ध्रुवसन्धिरुर्वीम्।
यस्मिन्नभूज्ज्यायसि सत्यसन्धे।
सन्धिर्ध्रुवः सन्नमतामरीणाम्॥
३५–सुते शिशावेव सुदर्शनाख्ये।
दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने सः।
मृगायताक्षो मृगयाविहारी।
सिंहादवापद्विपदं नृसिंहः॥
३६–स्वर्गामिनस्तस्य तमैकमत्यात्।
अमात्यवर्गः कुलतन्तुमेकम्।
अनाथदीनाः प्रकृतीरवेक्ष्य।
साकेतनाथं विधिवच्चकार॥
३७–नवेन्दुना तन्नभसोपमेयं।
शावैकसिंहेन च काननेन।
रघोः कुलं कुड्मलपुष्करेण।
तोयेन चाप्रौढनरेन्द्रमासीत्॥
३८–लोकेन भावी पितुरेव तुल्यः।
सम्भावितो मौलिपरिग्रहात् सः।
दृष्टो हि वृण्वन् कलभप्रमाणो-।
ऽप्याशाः पुरोवातमवाप्य मेघः॥

३४—उससे पीछे उसके ध्रुवसमान ध्रुवसन्धिनाम बेटे ने पृथ्वी पाई, जिस श्रेष्ठ सत्यवादी में दबे हुए वैरियों की सन्धि स्थिर हुई ॥

३५—दूज के चन्द्रमासरीखे प्रियदर्शन सुदर्शननाम बेटे के बालकपनहीं में उस मृग समान बड़ी आंखोंवाले मृगया-विहारी नरसिंह ने सिंह से मृत्यु पाई ॥

३६—उस स्वर्गगामी के मन्त्रीसमूह ने प्रजा को अनाथ (और) दीन देखकर कुल के उस इकलोते डोरे को एकमति होकर विधिपूर्वक अयोध्या का नाथ किया ॥

३७—नए चन्द्रमावाले आकाश के साथ और अकेले सिंह शावकवाले वन के साथ और कमलकलीवाले ताल के साथ वह बाल्यअवस्थाके राजावाला रघुकुल उपमा के योग्य हुआ ॥

३८—किरीट धारण करने से प्रजा ने उसको पिता के तुल्य ही होनेवाला माना, क्योंकि हाथी के बच्चे समान भी बादल पूर्व की पवन लगने से दिशाओं को घेरता हुआ देखागया है ॥

३६ कुल का डोरा अर्थात् वंश रखनेवाला ॥

३९—तं राजवीथ्यामधिहस्ति यान्तम्।
आधोरणालम्बितमग्र्यवेशम्।
षड्वर्षदेशीयमपि प्रभुत्वात्।
प्रैक्षन्त पौराः पितृगौरवेण॥

४०—कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य।
सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय।
तेजोमहिम्ना पुनरावृतात्मा।
तद् व्याप चामीकरपिञ्जरेण॥

४१—तस्मादधः किञ्चिदिवावतीर्णौ।
असंस्पृशन्तौ तपनीयपीठम्।
सालक्तकौ भूपतयः प्रसिद्धैः।
ववन्दिरे मौलिभिरस्य पादौ॥

४२—मणौ महानील इति प्रभावात्।
अल्पप्रमाणेऽपि यथा न मिथ्या।
शब्दो महाराज इति प्रतीतः।
तथैव तस्मिन् युयुजेऽर्भकेऽपि॥

४३—पर्य्यन्तसञ्चारितचामरस्य।
कपोललोलोभयकाकपक्षात्।
तस्याननादुच्चरितोविवादः।
चस्खाल वेलास्वपि नार्णवानाम्॥

३९—राजमार्ग में हाथी पर जाते हुए उस सुन्दर भेस-वाले को, महावत के थामे हुए को छः बरस काही था पुरवासियों ने प्रभुपन के कारण पिता की गौरवता से देखा ॥

४०—निश्चय वह पिता के सिंहासन को भरने योग्य न था तौ भी कनक समान उज्ज्वल तेज के प्रभाव से बढ़ी हुई देहवाले ने वह भरदिया ॥

४१—उस सिंहासन से कुछ नीचे लटकते हुए, सोने की पीढ़ी को न छूते हुए, महावर लगे हुए, उसके पैर राजाओं ने ऊंचे मुकुटों से पूजे ॥

४२—जैसे छोटे प्रमाण की मणि में भी "महानील" यह नाम प्रभाव के कारण मिथ्या नहीं है ऐसेही "महाराज" यह प्रसिद्धशब्द उस बालक में भी योग्य था ॥

४३—उस के दोनों ओर चमर डुलते हुए मुख से कपोलों पर दो चञ्चल कुल्लियोंवाले से उच्चारण किया हुआ वचन समुद्रों के तटों पर भी वृथा न गया (अर्थात् उसकी आज्ञा समुद्रों तक मानी गई) ॥

४४—निर्वृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे।
न्यस्तं ललाटे तिलकं दधानः।
तेनैव शून्यान्यरिसुन्दरीणां।
मुखानि स स्मेरमुखश्चकार॥

४५—शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्य्यः।
खेदं स यायादपि भूषणेन।
नितान्तगुर्व्वीमपि सोऽनुभावात्।
धुरं धरित्र्या बिभराम्बभूव॥

४६—न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां।
कात्स्न्येंन गृह्णाति लिपिं न यावत्।
सर्व्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात्।
फलान्यपायुङ्क्त स दण्डनीतेः॥

४७—उरस्यपर्य्याप्तनिवेशभागा।
प्रौढीभविष्यन्तमुदीक्षमाणा।
सञ्जातलज्जेव तमातपत्र-।
च्छायाच्छलेनोपजुगूह लक्ष्मीः॥

४८—अनश्नुवानेन युगोपमानम्।
अबद्धमौर्व्वी किणलाञ्छनेन।
अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि चासीत्।
रक्षावती तस्य भुजेन भूमिः॥

४४—सोने का पटका बँधे हुए ललाट में तिलक धारण करते हुए उस हँसमुख ने वैरियों की स्त्रियों के मुख उस से (अर्थात् तिलक से) रहित करदिए॥

४५—सिरस के फूलसे अधिककोमल अंगवाला वह गहने से भी खेद पाता था उसी ने समर्थता के कारण पृथ्वी का अतिभारी बोझ भी उठाया॥

४६—पट्टी पर लिखे हुए अक्षरों के लेख को जब तक पूरा ग्रहण करे तब तक विद्यावृद्धों की संगति के कारण वह दण्डनीति के सब फलों से युक्त होगया॥

४७—छाती पर निवासस्थान न पाई हुई लक्ष्मी ने, युवान होनेवाले की आशावती ने, लज्जावती की नाईं उसको छत्र छाया के मिस से आलिंगन किया॥

४८—उसकी जुए की उपमा को न पहुंची हुई भुजा से प्रत्यंचा की रगड़ का चिह्न धारण न करती हुई से, और खड्ग की मूठि न छुई से भी, पृथ्वी रक्षावती हुई॥

---

४४ स्त्री के मुखको तिलक रहित करना उस को रांड़ करना है॥
विद्यावृद्ध =पण्डित॥

४७ छत्र की छाया लक्ष्मी का रूप होता है यह प्रसिद्ध है छोटे दूलहको छाती लगाने से बड़ी दुलहन को लज्जा आती है॥

४९—न केवलं गच्छति तस्य काले।
ययुः शरीरावयवा विवृद्धिम्।
वंश्या गुणाः खल्वपि लोककान्ताः।
प्रारम्भसूक्ष्माः प्रथिमानमापुः॥

५०—स पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः।
स्मरन्निवाक्लेशकरो गुरूणाम्।
तिस्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं।
जग्राह विद्याः प्रकृतीश्च पित्र्याः॥

५१—व्यूह्य स्थितः किञ्चिदिवोत्तरार्द्धम्।
उन्नद्धचूडोऽञ्चितसव्यजानुः।
आकर्णमाकृष्टसबाणधन्वा।
व्यरोचतास्त्रेषु विनीयमानः॥

५२—अथ मधु वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं।
मनसिजतरुपुष्पं रागबन्धप्रवालम्।
अकृतकविधिसर्वाङ्गीणमाकल्पजातं।
विलसितपदमाद्यं यौवनं स प्रपेदे॥

४९—समय जानेपर केवल उसके शरीर के अंश ही वृद्धि को न पहुंचे किन्तु वंशके गुण भी, प्रजा के प्यारे, आदि में सूक्ष्म, परिपूर्ण हुए ॥

५०—पूर्व जन्मान्तर में पार देखीहुई सी सुध करके उस गुरुओं को क्लेश न देनेवालेने तीनों विद्या, त्रिवर्ग की प्राप्ति का मूल, ग्रहण कीं और बाप दादे की प्रजा भी ॥

५१—अगले आधे शरीर को कुछ बढ़ाकर खड़ा होताहुआ, ऊंचे जूड़ेवाला, न झुकी हुई बाईं जांघवाला, अस्त्रों में शिक्षा पाया हुआ, वह बाण चढ़े हुए धनुष को कान तक खैंचता हुआ शोभायमान दीखा ॥

५२—फिर उसने स्त्रियों के नेत्रों को प्यारा मधु, कामदेव रूपी वृक्ष का अनुरागरूपी पत्तोंवाला फूल, विना बनाया समस्त अंगों का गहना, विलास का उत्तम साधन यौवन पाया ॥

---

४९ वंश के गुण = शूरता उदारता इत्यादि ॥

५० तीन विद्या अर्थात् त्रयी और वार्त्ता और दंडनीति ॥ त्रयी तीन वेदका जानना, वार्त्ता खेती बनज इत्यादिकी रक्षा करना, दंडनीति न्याय करना ॥ त्रिवर्ग अर्थात् धर्म अर्थ काम ॥

५२ यौवन कैसा है कि स्त्रियों के नेत्रों को प्यारा मधु है, कामदेवरूपी वृक्ष का फूल है, सब अंगों को अकृत्रिम गहना है विलास का श्रेष्ठस्थान है ॥

५३—प्रतिकृतिरचनाभ्यो दूतिसन्दर्शिताभ्यः।
समधिकतररूपाः शुद्धसन्तानकामैः।
अधिविविदुरमात्यैराहृतास्तस्य यूनः।
प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ राजकन्याः॥

इति अष्टादशः सर्गः

५३—दूतियों की लिखी हुई चित्ररचनाओं से अधिक रूपवती राजकन्याओं ने, शुद्धवंश चाहनेवाले मंत्रियों की लाई हुइयों ने, उस युवानकी पहले पाणिग्रहण कीहुई लक्ष्मी और पृथ्वी बड़ी सौत बनाईं॥

अठारहवां सर्ग समाप्त हुआ

---

५३ बड़ी सौत बनाने से तात्पर्य्य यह है कि राजकन्या उसको ब्याही गई॥

ऊनविंशः सर्गः ।

अग्निवर्णाख्यानम् ।

१—अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः ।
स्वे पदे तनयमग्नितेजसम् ।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः ।
पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी ॥
२—तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकाः ।
तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः ।
सौधवासमुटजेन विस्मृतः ॥
सञ्चिकाय फलनिःस्पृहस्तपः ॥
३—लब्धपालनविधौ न तत्सुतः ।
खेदमाप गुरुणा हि मेदिनी ।
भोक्तुमेव भुजनिर्जितद्विषा ।
न प्रसाधयितुमस्य कल्पिता ॥
४—सोऽधिकारमभिकः कुलोचितम् ।
काश्चन स्वयमवर्त्तयत् समाः ।
सन्निवेश्य सचिवेष्वतः परं ।
स्त्रीविधेय-नव-यौवनोऽभवत् ॥

उन्नीसवां सर्ग।

अग्नि वर्ण का वृत्तान्त

१—अग्निवर्णनाम अग्निसमान तेजस्वी बेटे को अपनी पदवीपर अभिषेक कराकर शास्त्रज्ञानियों के मुखिया जितेन्द्रिय रघुवंशी ने बुढ़ापे में नैमिषारण्य सेवनकिया॥

२—वहां तीर्थ के जलसे विहारकुण्डों को, धरती में बिछी हुई दाभ से सेजों को, पत्तोंकी कुटीसे राजभवनोंको भुलाकर फल के निस्पृहीने तप कमाया॥

३—पाए हुए (राज्य) की रक्षाविधि में उसके पुत्रने खेद न पाया क्योंकि पिताने, भुजा से वैरियोंके जीतने वाले ने, पृथ्वी उसके भोगनेहीको पाली थी कंटक मिटानेको नहीं॥

४—वह नए यौवनवाला कामी अपने कुलोचितधर्म (प्रजा पालन) को कुछ वर्षतक आप बर्ततारहा फिर मंत्रियोंपर डालकर स्त्रियों के वशहुआ॥

५—कामिनीसहचरस्य कामिनः ।
तस्य वेश्मसु मृदङ्गनादिषु ।
ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तरः ।
पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सवः ॥

६—इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षमः ।
सोढुमेकमपि सक्षणान्तरम् ।
अन्तरेव विहरन् दिवानिशं ।
न व्यपैक्षत समुत्सुकाः प्रजाः ॥

७—गौरवाद् यदपि जातु मन्त्रिणां ।
दर्शनं प्रकृतिकाङ्क्षितं ददौ ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना ।
केवलेन चरणेन कल्पितम् ॥

८—तं कृतप्रणतयोऽनुजीविनः ।
कोमलात्म-नखराग-रूषितम् ।
भेजिरे नवदिवाकरातपः ।
स्पृष्टपङ्कजतुलाधिरोहणम् ॥

९—यौवनोन्नतविलासिनीस्तन- ।
क्षोभलोलकमलाश्च दीर्घिकाः ।
गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः ।
स व्यगाहत विगाढमन्मथः ॥

५—उस कामिनीसखा कामी के मृदंगध्वनिवाले मन्दिरों में पहले ऋद्धिमन्त उत्सव को पिछले अधिकऋद्धिमन्त उत्सव ने तिरस्कारकिया ॥

६—इन्द्रियों के विषय विना एक क्षणका भी अन्तर सहने को असमर्थ वह रात दिन रनवासही में विहार करताहुआ दर्शनचाहती हुई प्रजा को भूला ॥

७—जो मन्त्रियों के दबाउ से प्रजाका चाहाहुआ दर्शन कभी दिया भी तो झरोखेमें लटकतेहुए केवल एक पैरसे ॥

८—नमस्कार करतेहुए सेवकोंने उस (पैर) को, अपनेही कोमलनखकी लालीसे आभूषित को, सबेरे के सूरजकी घाम लगेहुए कमलकी तुलापर चढ़ेहुए को, सेवन किया ॥

९—और स्त्रियोंने यौवन उन्नत स्तनों के झकोरों से हिलते हुए कमलवाले जलभवनों में, उन्हीं के जलों से ढके हुए केलिमन्दिरवालों में, उस प्रबल कामीने विहार किया ॥

---

५ एकसे एक अधिक सामग्री का उत्सव हुआ ॥

८ तुला पर चढ़ा हुआ = बराबरी को पहुंचा हुआ ॥

१०—तत्र सेकहृतलोचनाञ्जनैः ॥
धौतरागपरिपाटलाधरैः।
अङ्गनास्तमधिकं व्यलोभयन्।
अर्पितप्रकृतकान्तिभिर्मुखैः ॥
११—घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः।
पानभूमिरचनाः प्रियासखः।
अभ्यपद्यत स वासितासखः।
पुष्पिता कमलिनीरिवद्विपः ॥
१२—सातिरेकमदकारणं रहः।
तेन दत्तमभिलेषुरङ्गनाः।
ताभिरप्युपहृतं मुखासवं।
सोऽपिबद् बकुलतुल्यदोहदः ॥
१३—अङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिते।
तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे।
वल्लकी च हृदयंगमस्वना।
वल्गुवागपि च वामलोचना ॥
१४—स स्वयं प्रहतपुष्करः कृती।
लोलमाल्यवलयो हरन्मनः।
नर्तकीरभिनयातिलङ्घिनीः।
पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयत् ॥

१०—वहां न्हाने में अंजन मिटे हुए नेत्रवाले मुखों से, लखौटे की लाली धुले हुए होठवालों से, स्वाभाविक कान्ति पाए हुओं से, उस को स्त्रियों ने अधिक लुभाया ॥

११—नाक की प्यारी मधु गन्धि से (मनकी) खैंचनेवाली पानभूमियों में वह कामिनियों का सखा प्रवृत्त हुआ, जैसे फूली हुई कमलिनियों में हथिनियों का सखा हाथी ॥

१२—अत्यन्त मादकता करनेवाला उसका दिया हुआ मुख आसव अंगनाओं ने एकान्त में अभिलाषा से लिया; उनका दिया हुआ (मुख आसव) उस वकुल समान आकांक्षी ने भी पिया ॥

१३—अंक में बैठने योग्य दो ने उसका अंक अशून्यता को पहुंचाया (अर्थात् भर दिया) मनोहर धुनिवाली बीना ने और मीठी वाणीवाली कामिनी ने ॥

१४—आप बाजा बजाते हुए उस चतुर ने, माला और कंकन हिलते हुए ने, मन हरते हुए ने, गति भूली हुई नर्तकियों को (उनके) गुरुओं के सामने लज्जित किया ॥

---

११ पानभूमि=मदिरा पीनेका स्थान ॥

१२ मुख आसव अर्थात् मुख का रस ॥ वकुल के वृक्षका स्वभाव है कि जबतक स्त्री उसको न चूमें अथवा उस पर मुख का कुल्ला न डाले तब तक फूलता नहीं है इसलिए वकुल को स्त्री के मुख आसव का अभिलाषी कहते हैं ॥

१५—चारु नृत्यविगमे च तन्मुखं।
स्वेदभिन्नतिलकं परिश्रमात्।
प्रेमदत्तवदनानिलः पिवन्।
अत्यजीवदमरालकेश्वरौ॥

१६—तस्य सावरणदृष्टसन्धयः।
काम्यवस्तुषु नवेषु संगिनः।
वल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे।
सामिभुक्तविषयाः समागमाः॥

१७—अंगुलीकिसलयाग्रतर्ज्जनं।
भ्रूविभंगकुटिलञ्च वीक्षितम्।
मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं।
वञ्चयन् प्रणयिनीरवाप सः॥

१८—तेन दूतिविदितं निषेदुषा।
पृष्ठतः सुरतवाररात्रिषु।
शुश्रुवे प्रियजनस्य कातरं।
विप्रलम्भपरिशंकिनो वचः॥

१९—लौल्यमेत्य गृहिणीपरिग्रहात्।
नर्त्तकीष्वसुलभासु तद्वपुः।
वर्त्तते स्म स कथञ्चिदालिखन्।
अंगुलीक्षरणसन्नवर्तिकः॥

१५—और नाच के अन्त में उनके सुन्दर मुख को, परिश्रम के पसीने से तिलक मिटे हुए को, प्यार की फूंक देते हुए ने चूमकर अपना जीतत्व इन्द्र और कुबेर के जीतत्व से श्रेष्ठ माना ॥

१६—दूसरी ठौर जाकर नई नई वस्तुओं में आसक्त होनेवाले उस (राजा) के समागमों को, प्रगट और अप्रगट उपायों से हाथ आए हुओं को, विलासिनियों ने अधभोगा रक्खा ॥

१७—अंगुलियों के पोरों की तर्जनी और टेढ़ी भवों की तिरछी चितवन और नीवी से बार बार बन्धना उस प्यारियों को छलते हुए ने पाया ॥

१८—सुरतकाल की रात्रियों में दूतियों के जान मान पीठ पीछे बैठ कर उसने बिरह की शंका करती हुई प्यारियों के दीन बचन सुने ॥

१९—अपनी स्त्रियों के घिराव के कारण दुर्लभ वेश्याओं के चाव में आकर वह अंगुली पसीजने से खिसलती हुई लेखनीवाला जैसे तैसे उनका चित्र बनाता रहा ॥

---

१६ भावार्थ यह है कि जो यह मन माना भोग करके जायगा तो फिर आने की चाह इसे न रहेगी ॥

१८ हे दूती प्यारे से मिला कर मेरे प्रान रख इस प्रकार के दीन बचन सुने ॥

२०—प्रेमगर्व्वितविपक्षमत्सरात्।
आयताच्च मदनान्महीक्षितम्।
निन्युरुत्सवविधिच्छलेन तं।
देव्य उज्झितरुषः कृतार्थताम्॥
२१—प्रातरेत्य परिभोगशोभिना।
दर्शनेन कृतखण्डनव्यथाः।
प्राञ्जलिः प्रणयिनीः प्रसादयन्।
सोऽदुनोत् प्रणयमन्थरः पुनः॥
२२—स्वप्नकीर्तितविपक्षमंगनाः।
प्रेत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम्।
प्रच्छदान्तगलिताश्रुविन्दुभिः।
क्रोधभिन्नवलयैर्विवर्त्तनैः॥
२३—क्लृप्तपुष्पशयनान् लतागृहान्।
एत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः।
अन्वभूत् परिजनांगनारतं।
सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम्॥
२४—नामवल्लभजनस्य ते मया।
प्राप्य भाग्यमपि तस्यकाङ्क्ष्यते।
लोलुपं ननु मनो ममेति तं।
गोत्रविस्खलितमूचुरंगनाः॥

२०—प्रेमगर्विता सौतों में ईर्षा के कारण और बढ़े हुए कामदेव के कारण रिस छोड़ी हुई रानियों ने उस राजा को महोत्सव के मिस से मनोरथ पूरा करनेवाला बनाया ॥

२१—सबेरे जाकर सुरत चिह्नवाले दर्शन से हुई है खण्डितापन की बिथा जिन प्यारियों को उनको उस हाथ जोड़ते हुए ने प्रसन्न करके प्रेम से अलसा कर फिर दुखी किया ॥

२२—स्वप्नमें सौत की बड़ाई करनेवाले उस (राजा) को स्त्रियों ने बिना बोलेही उलटी करोंटों से, बिछोने में आँसू गिराती हुइयों से, क्रोध में कंगने टूटती हुइयों से, अनादर किया ॥

२३—फूलों से सजी हुई सेजों वाली लता कुंजों में जाकर दूतियों के मार्ग दिखलाए हुए ने रानियों के डर से दासियों के साथ कम्पसहित बिहार किया ॥

२४—"तेरी मनभावती का नाम जानकर उसके भाग्य की भी मैं आकांक्षा करती हूं क्योंकि मेरा मन लालची है" इसप्रकार स्त्रियों ने उस नाम लेते में बहकते हुए को कहा ॥

---

२१ मन दूसरी में लगा था इस से अलसाया हुआ देखकर सौत रिसानी ॥

२५—चूर्णबभ्रु लुलितस्रगाकुलं।
छिन्नमेखलमलक्तकाङ्कितम्।
उत्थितस्य शयनं विलासिनः।
तस्य विभ्रमरतान्यपावृणोत्॥

२६—स स्वयं चरणरागमादधे।
योषितां न च तथा समाहितः।
लोभ्यमाननयनः श्लथांशुकैः।
मेखलागुणपदैर्नितम्बिभिः॥

२७—चुम्बनेविपरिवर्त्तिताधरं।
हस्तरोधि रशनाविघट्टने।
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्व्वतः।
मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम्॥

२८—दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीः।
नर्म्मपूर्व्वमनुपृष्टसंस्थितः।
छायया स्मितमनोज्ञया वधूः।
ह्रीनिमीलितमुखीश्चकार सः॥

२९—कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनं।
न्यस्तपादतलमग्रपादयोः।
प्रार्थयन्त शयनोत्थितं प्रियाः।
तं निशात्ययविसर्गचुम्बनम्॥

२५—कुमकुम के सुनहरी रंगवाली सेज ने, मिड़ी हुई माला से भरी हुई ने, टूटी तागड़ीवाली ने महावर के चिह्नवाली ने, उस उठे हुए के अनोखे विलास प्रगट किए॥

२६—योषिताओं के चरनों में उसने आप महावर लगाया परन्तु ढीले वस्त्र पड़ी हुई नितम्ब सहित जांघों के लुभाए हुए नेत्रोंवाले ने यथोचित मन देकर नहीं (लगाया)॥

२७—चुम्बन समय हटाए हुए होठों वाला, नीवी खोलते में रोकेहुए हाथों वाला, सब ठौर इच्छा भंग किया हुआ, भामिनी विलास भी उसको कामोद्दीपन हुआ॥

२८—दर्पन में सुरत के चिह्न निहारती हुई अंगनाओं को उस ने हँसी के लिये उन के पीछे बैठकर मुसकान मनोहर छाया से लज्जित किया॥

२९—कण्ठ में कोमल बांह की माला डाले हुए से, पैरों पर पैर तलवे रक्खे हुए से उस सेज से उठते हुए से, प्यारियों ने प्रभात के बिछुड़ने का चुम्बन मांगा॥

---

२६ महावर तौ लगाया परन्तु दृष्टि जांघों पर गई इससे सावधान न रहा॥

३०–प्रेक्ष्य दर्पणतलस्थमात्मनः।
राजवेशमतिशक्रशोभिनम्।
पिप्रिये न स तथा यथा युवा।
व्यक्तलक्ष्म परिभोगमण्डनम्॥

३१–मित्रकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः।
प्रस्थितं तमनवस्थितं प्रियाः।
विद्महे शठ? पलायनच्छला।
न्यञ्जसेति रुरुधुः कचग्रहैः॥

३२–तस्य निर्दयरतिश्रमालसाः।
कण्ठसूत्रमपदिश्य योषितः।
अध्यशेरत बृहद्भुजान्तरं।
पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम्॥

३३–संगमाय निशि गूढचारिणं।
चारदूतिकथितं पुरोगताः।
वञ्चयिष्यसि कुतस्तमोवृतः।
कामुकेति च कृषुस्तमंगनाः॥

३४–योषितामुडुपतेरिवार्च्चिषां।
स्पर्शनिर्वृतिमसाववाप्नुवन्।
आरुरोह कुमुदाकरोपमां।
रात्रिजागरपरो दिवाशयः॥

३०—दर्पण में पड़े हुए अपने राज भेस को, इन्द्र से अधिक शोभायमान को, देखकर वह युवान ऐसा प्रसन्न न हुआ जैसा प्रगट चिह्नवाली परिभोग की शोभा को (देखकर) ॥

३१—मित्र के कार्य का मिस करके पाससे उस अकुलाकर जाते हुए को प्रियाओं ने "हे शठ! भागने के छल हम भलीभांति जानती हैं" ऐसा कह केश पकड़कर रोका ॥

३२—निर्दयपन की रति के श्रम से अलसाई हुई युवतियां उसकी चौड़ी छाती पर, बड़े स्तनों से चन्दन मिटी हुई पर, कण्ठसूत्र नाम आलिंगन के मिस से सो गईं ॥

३३—सम्भोग के लिये रात में छुपकर जाते हुए को, अप्रकट दूतियों के दिखाए हुए को, आगे गई हुई अंगना "हे कामी! लुककर किधर, धोखा देताहै" यह कहकर खैंचलाईं ॥

३४—जैसे चन्द्रमा किरणों के स्पर्श का ऐसे वह योषिताओं के स्पर्श का सुख लेताहुआ, रात में जगने दिन में सोनेवाला, कुमुद वन की उपमा को पहुंचा ॥

---

३४ कुमुदवन=कुमोदिनियों का कुंड-कुमोदिनी दिनमें सोती रात में खिलती है ॥

३५—वेणुना दशनपीडिताधराः।
वीणया नखपदाङ्कितोरवः।
शिल्पकार्य्य उभयेन वेजिताः।
तं विजिह्मनयना व्यलोभयन्॥
३६—अङ्गसत्त्ववचनाश्रयं मिथः।
स्त्रीषु नृत्यमुपधाय दर्शयन्॥
स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः।
सञ्जघर्ष सह मित्रसन्निधौ॥
३७—अंसलम्बिकुटजार्ज्जुनस्रजः।
तस्य नीपरजसाङ्गरागिणः।
प्रावृषि प्रमदबर्हिणेष्वभूत्॥
कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः॥
३८—विग्रहाच्च शयने पराङ्मुखीः।
नानुनेतुमबलाः स तत्वरे।
आचकाङ्क्ष घनशब्दविक्लवाः।
ता विवृत्य विशतीर्भुजान्तरम्॥
३९—कार्त्तिकीषु सवितानहर्म्यभाक्।
यामिनीषु ललिताङ्गनासखः।
अन्वभुङ्क्त सुरतश्रमापहां।
मेघमुक्तविशदां स चन्द्रिकाम्॥

३५—दांतों से कटे हुए होठवालियों ने, नखच्छद से चिह्नित जांघवालियों ने, वेणु और बीना दोनों से पीड़ित गायनों ने, टेढ़ी चितवन करके उसको रिझाया ॥

३६—अंग से मन से और वाणी से बनाया हुआ नाच एकान्त में स्त्रियों को सिखाकर मित्रों के सामने दिखलाते हुए उस (राजा) ने चतुर नाट्याचारों के जीतने की इच्छा की ॥

३७—उस कन्धे पर कुटज और अर्जुन की माला पड़े हुए का, कदम की रज से अंगराग किए हुए का, विहार वर्षा ऋतु में उन्मत्त मोरोंवाले कृत्रिम पहाड़ों में हुआ ॥

३८—और मान से सेजपर पीठ फेरी हुई अबलाओं के मनाने में उसने उतावली न की उनको बादल की गरज से अकुलाकर सीधी करोट लेकर छाती से लगती हुई देखना चाहा ॥

३६—कातिक की रातों में उस चन्दोवा तनेहुए मंदिरों के वासी ने, सुन्दर अंगनाओं के सखा ने सुरत का श्रम हरनेवाली बादल की छोड़ीहुई उज्ज्वल चांदनी भोगी ॥

---

३५ तात्पर्य यहहै कि कटे होठ से बेणु बजाने में कष्ट होताहै और जांघ में घाव होनेसे वीणा बजाने में कष्ट होताहै इसलिये इन बाजों को बजाते हुए उन गानेवालियों ने टेढ़ी आंख करके उसे रिझाया ॥

३६ नाट्याचार = नृत्य सिखानेवाले ॥

३७ कृत्रिम अर्थात् बनाया हुआ पहाड़ ॥

४०–सैकतञ्च सरयूं विवृण्वतीं।
श्रोणिबिम्बमिव हंसमेखलम्।
स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं।
सौधजालविवरैर्व्यलोकयत्॥

४१–मर्म्मरैरगुरुधूपगन्धिभिः।
व्यक्तहेमरशनैस्तमेकतः।
जह्रुराग्रथनमोक्षलोलुपं।
हैमनैर्निवसनैः सुमध्यमाः॥

४२–अर्पितास्तिमितदीपदृष्टयः।
गर्भवेश्मसु निवातकुक्षिषु।
तस्य सर्व्वसुरतान्तरक्षमाः।
साक्षितां शिशिररात्रयो ययुः॥

४३–दक्षिणेन पवनेन सम्भृतं।
प्रेक्ष्य चूतकुसुमं सपल्लवम्।
अन्वनैषुरवधूतविग्रहाः।
तं दुरुत्सहवियोगमङ्गनाः॥

४४–ताः स्वमङ्कमधिरोप्य दोलया।
प्रेङ्खयन् परिजनापविद्धया।
मुक्तरज्जु निविडं भयच्छलात्।
कण्ठबन्धनमवाप बाहुभिः॥

४०—और हंसरूपी तागड़ीवाला तट नितम्ब की नाईं दिखाती हुई सरयू को, अपनी प्यारी के विलास की होड़ करती हुई को, मंदिर के झरोखों से देखा ॥

४१—मर्मरशब्द करते हुए जाड़े के वस्त्रों से, अगर धूप की गन्धवालों से सोने की मेखला दिखाते हुओं से, अच्छी कटिवालियों ने उस (राजा) को, खोलने बांधने में एक ठौर मन लगाए हुए को, लुभाया ॥

४२—जाड़े की रात्रियों ने, निश्चल लोयके दीपकोंरूपी दृष्टि लगाई हुइयों ने, सब भांति विहार के योग्यों ने, पवन रहित कोठोंवाले अन्तर्भवनों में उसका साक्षीपन पाया ॥

४३—दक्षिण पवन की उत्पन्न की हुई आम की सपल्लव मंजरियों को देखकर मान त्यागी हुई अबलाओं ने उस (राजा) को जिसका विरह सहना कठिन था मनाया ॥

४४—उनको अंक में लेकर दासियों के चलाए हुए झूले में झूलते हुए ने रस्सी छूटने की भय के मिसवाला बाहों का कड़ा आलिंगन पाया ॥

---

४१ एक ठौर अर्थात् नितम्बों में ॥

४२ दीपकरूपी आंखवाली रातों ने जो विलास के योग्य सब भांति अच्छी थीं उस के विलास देखे और किसी ने न देखे ॥

४५—तं पयोधरनिषिक्तचन्दनैः।
मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः।
ग्रीष्मवेषविधिभिः सिषेविरे।
श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः प्रियाः॥
४६—यत् स लग्नसहकारमासवं।
रक्तपाटलसमागमं पपौ।
तेन तस्य मधुनिर्गमात् कृशः।
चित्रयोनिरभवत् पुनर्नवः॥
४७—एवमिन्द्रियसुखानि निर्विशन्।
अन्यकार्य्यविमुखः स पार्थिवः।
आत्मलक्षणनिवेदितानृतून्।
अत्यवाहयदनङ्गवाहितः॥
४८—तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः।
शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः।
आमयस्तु रतिरागसम्भवः।
दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत्॥
४९—दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्।
सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः।
स्वादुभिस्तुविषयैर्हृतस्ततो।
दुःखमिन्द्रियगणो निवार्य्यते॥

४५—प्रियाओं ने उसको ग्रीष्म के शृंगारों से, पयोधरों में चन्दन लगे हुओं से, मोती गुथे हुए सुन्दर आभूषण वालों से, कटि पर लटकती हुई मणिजटित मेखला-वालों से, सेवन किया ॥

४६—आम की मंजरी लगा हुआ, लाल पाटल रक्खा हुआ, आसव जो उसने पिया इससे उसका कामदेव वसन्त बीतने से क्षीणता को गया हुआ भी फिर नया हुआ ॥

४७—इस प्रकार इन्द्रियों का सुख भोगते हुए, दूसरे काम बिसराए हुए, कामदेव के प्रेरे हुए उस राजा ने अपने अपने चिह्न दिखानेवाली प्रत्येक ऋतु भोगी ॥

४८—प्रभाव के कारण उस प्रमत्त को भी दूसरे राजा लोग जीतने को समर्थ न हुए, परन्तु रतिराग से उपजे हुए रोग ने क्षीण करदिया, जैसे दक्ष के शापने चन्द्र-मा को ॥

४९—वैद्यों की बात अनसुनी करनेवाले उस (राजा) ने काम उद्दीपन वस्तुओं को दोष देख करभी न त्यागा ॥ स्वादवान् विषयोंके हरे हुए इन्द्रियगणका उन (विषयों) से हटाना कठिन है ॥

---

४६ आसव अर्थात् मदिरा ॥

५०—तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा ।
सावलम्बगमना मृदुस्वना ।
राजयक्ष्मपरिहानिराययौ ।
कामयानसमवस्थया तुलाम् ॥
५१—व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा ।
पङ्कशेषमिव घर्मपल्वलम् ।
राज्ञि तत्कुलमभूत् क्षयातुरे ।
वामनार्च्चिरिव दीपभाजनम् ॥
५२—वाढमेषु दिवसेषु पार्थिवः ।
कर्म्म साधयति पुत्रजन्मने ।
इत्यदर्शितरुजोऽस्य मन्त्रिणः ।
शश्वदूचुरघशङ्किनीः प्रजाः ॥
५३—स त्वनेकवनितासखोऽपि सन् ।
पावनीमनवलोक्य सन्ततिम् ।
वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं ।
न प्रदीप इव वायुमत्यगात् ॥
५४—तं गृहोपवन एव सङ्गताः ।
पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा ।
रोगशान्तिमपदिश्य मन्त्रिणः ।
सम्भृते शिखिनि गूढमादधुः ॥

५०—पीले मुखवाली, थोड़े आभूषणों वाली, पराए सहारे से चलनेवाली, हीनस्वरवाली, उसके छईरोग की क्षीणता कामियों की दशा के समान हुई ॥

५१—उस राजा के छईग्रसित होने पर उसका कुल पिछली कला में गये हुए चन्द्रमावाले आकाशसमान, कीच बचे हुए ग्रीष्म के कुंड समान, छोटी लोय के दीपक समान, हुआ ॥

५२—"सत्य है इनदिनों राजा पुत्रजन्म के उपायों में लगा रहता है" इस प्रकार उसके रोग छुपाते हुए मंत्रियों ने उपद्रव की शंकावती प्रजा से नित्य कहा ॥

५३—अनेक स्त्रियों का पति होकर भी पवित्रसन्तान देखे विनाही वह वैद्यों के उपायों के तिरस्कार करनेवाले रोग को जीत न सका, जैसे पवन को दीपक ॥

५४—मृतककर्म जाननेवाले पुरोहित समेत इकट्ठे होकर मंत्रियों ने उसको रोग शान्तिके मिस से राजभवन के उपवन ही में चुप चाप प्रज्वलित अग्नि में रक्खा।

---

५१ पिछली कला में बैठाहुआ चन्द्रमा अर्थात् बदी चौदस का चन्द्रमा ॥
५३ रोग को न जीत सका अर्थात् मरगया ॥

५५—तैः कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैः।
आशु तस्य सहधर्मचारिणी।
साधु दृष्टशुभगर्भलक्षणा।
प्रत्यपद्यत नराधिपश्रियम्॥
५६—तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोकात्।
उष्णैर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः।
निर्वापितः कनककुम्भमुखोज्झितेन।
वंशाभिषेकविधिना शिशिरेण गर्भः।
५७—तं भावार्थं प्रसवसमयाकाङ्क्षिणीनां प्रजानाम्।
अन्तर्गूढं क्षितिरिव नभोबीजमुष्टिं दधाना।
मौलैः सार्द्धं स्थविरसचिवैर्हैमसिंहासनस्था।
राज्ञी राज्यं विधिवदाशिषद्भर्तुरव्याहताज्ञा॥

इतिश्री एकोनविंशः सर्गः

५५—तब प्रजा के मुखियों सहित उन (मंत्रियों) की भली भांति शुभ गर्भलक्षण देखी हुई उसकी धर्मपत्नी ने तुरन्त राजलक्ष्मी पाई ॥

५६—इस प्रकार राजा की विपत्ति के आंसुओं से प्रथम तपा हुआ उसका गर्भ कनक कलसों के मुख से छूटते हुए ठंढे जल ने, वंश के अभिषेक की विधिवाले ने, ठंढा किया ॥

५७—जन्म समय की आकांक्षावती प्रजा के वैभव निमित्त, जैसे सामन के बीजांकुर को पृथ्वी गर्भ में धारण करती है ऐसे, उस गर्भ को कुक्षा में धारण करती हुई, सोने के सिंहासन पर बैठी हुई, बिना रुकी हुई आज्ञावाली, रानी पुराने मंत्रियों और बूढ़े अधिकारियों सहित पति का राज विधिपूर्वक पालती रही ॥

उन्नीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

मुंशी नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में छपी।
अगस्त सन् १६०६ ई०

Jai Dat Tiwari

J D Tiwari

J D Tiwari